अपभ्रंश काव्य सौरभ

डॉ. कमलचन्द सोगाणी

प्रकाशक
अपभ्रंश साहित्य अकादमी
जैनविद्या संस्थान
दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी
राजस्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपभ्रंश काव्य सौरभ

(काव्य-संकलन, हिन्दी अनुवाद, व्याकरणिक विश्लेषण एवं शब्दार्थ सहित)

डॉ. कमलचन्द सोगाणी
(सेवानिवृत्त प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र)
संयोजक
अपभ्रंश साहित्य अकादमी, जयपुर
जैनविद्या संस्थान, श्रीमहावीरजी

प्रकाशक
अपभ्रंश साहित्य अकादमी
जैनविद्या संस्थान
दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी
राजस्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

☐ प्रकाशक

अपभ्रंश साहित्य अकादमी,
जैनविद्या संस्थान,
दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी
श्रीमहावीरजी–322220 (राजस्थान)

☐ प्राप्तिस्थान

1. जैनविद्या संस्थान, श्रीमहावीरजी
2. अपभ्रंश साहित्य अकादमी
दिगम्बर जैन नसियां भट्टारकजी
सवाई रामसिंह रोड, जयपुर–302004

☐ प्रथमबार, 1992

☐ मूल्य

पुस्तकालय संस्करण (सजिल्द)	**125.00**
पेपरबैक	**75.00**

☐ मुद्रक

मदरलैण्ड प्रिन्टिंग प्रैस
6–7, गीता भवन, आदर्श नगर
जयपुर–302004

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रमणिका

पाठ संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
	प्रकाशकीय	
	प्रस्तावना	
	काव्य-अनुवाद	
पाठ-1	पउमचरिउ	2-7
पाठ-2	पउमचरिउ	8-13
पाठ-3	पउमचरिउ	14-19
पाठ-4	पउमचरिउ	20-27
पाठ-5	पउमचरिउ	28-33
पाठ-6	महापुराण	34-39
पाठ-7	महापुराण	40-45
पाठ-8	महापुराण	46-49
पाठ-9	जंबूसामिचरिउ	50-55
पाठ-10	सुदंसणचरिउ	56-63
पाठ-11	सुदंसणचरिउ	64-69
पाठ-12	करकण्डचरिउ	70-73
पाठ-13	धण्णकुमारचरिउ	74-81
पाठ-14	हेमचन्द्र के दोहे	82-87
पाठ-15	परमात्मप्रकाश	88-93
पाठ-16	पाहुडदोहा	94-99
पाठ-17	सावयधम्मदोहा	100-103
	व्याकरणिक विश्लेषण एवं शब्दार्थ	
	संकेत सूची	3-4
पाठ-1	पउमचरिउ	5-18
पाठ-2	पउमचरिउ	19-30
पाठ-3	पउमचरिउ	31-41
पाठ-4	पउमचरिउ	42-54
पाठ-5	पउमचरिउ	55-65
पाठ-6	महापुराण	66-77
पाठ-7	महापुराण	78-90
पाठ-8	महापुराण	91-98
पाठ-9	जंबूसामिचरिउ	99-111

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
पाठ-10	सुदंसणचरिउ	112-127
पाठ-11	सुदंसणचरिउ	128-138
पाठ-12	करकंडचरिउ	139-146
पाठ-13	धण्णकुमारचरिउ	147-164
पाठ-14	हेमचन्द्र के दोहे	165-173
पाठ-15	परमात्मप्रकाश	174-182
पाठ-16	पाहुडदोहा	183-192
पाठ-17	सावयधम्मदोहा	193-199
परिशिष्ट-1	कवि-परिचय	1-20
परिशिष्ट-2	काव्य-प्रसंग	21-40
शुद्धि पत्र		41-42
सहायक पुस्तकें एवं कोश		43-44

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

हमारे देश में प्राचीनकाल से ही लोकभाषाओं में साहित्य-रचना होती रही है । 'अपभ्रंश' भी एक ऐसी ही लोकभाषा/जनभाषा थी जिसमें जीवन की सभी विधाओं में पुष्कल-मात्रा में साहित्य रचा गया । 8वीं से 13वीं शताब्दी तक यह सारे उत्तर भारत की साहित्यिक भाषा रही । अपभ्रंश साहित्य की विशालता, लोकप्रियता और महत्ता के कारण ही आचार्य हेमचन्द्र ने अपने 'प्राकृत-व्याकरण' के चतुर्थ पाद में सूत्र संख्या 329 से 446 तक स्वतन्त्ररूप से अपभ्रंश भाषा की व्याकरण-रचना की ।

अपभ्रंश भारतीय आर्यभाषाओं (उत्तर-भारतीय भाषाओं) की जननी है, उनके विकास की एक अवस्था है । अतः हिन्दी एवं अन्य सभी उत्तर-भारतीय भाषाओं के विकास के इतिहास के अध्ययन के लिए अपभ्रंश भाषा का अध्ययन आवश्यक है ।

अनेक कारणों से अपभ्रंश का साहित्य प्रकाशित न होने से इसकी रुचि पाठकों में न पनप सकी और इसके समुचित ज्ञान का अभाव बना रहा । धीरे-धीरे यह अपरिचय की ओट में छिप गई, इसके अध्ययन-अध्यापन की भी उचित व्यवस्था न हो सकी, परिणामतः अपभ्रंश का अध्ययन अत्यन्त दुष्कर हो गया ।

अपभ्रंश साहित्य के अध्ययन-अध्यापन एवं प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी द्वारा संचालित जैनविद्या संस्थान के अन्तर्गत 'अपभ्रंश साहित्य अकादमी' की स्थापना की गई । अकादमी का प्रयास है—अपभ्रंश के अध्ययन-अध्यापन को सशक्त करके उसके सही रूप को सामने रखना जिससे प्राचीन साहित्यिक-निधि के साथ साथ आधुनिक आर्य भाषाओं के स्वभाव और उनकी संभावनाएं भी स्पष्ट हो सकें ।

इसके लिए अकादमी में अपभ्रंश भाषा के अध्यापन की समुचित व्यवस्था है । अकादमी में अपभ्रंश सर्टिफिकेट कोर्स और अपभ्रंश डिप्लोमा कोर्स विधिवत् निःशुल्क चलाये जाते हैं ।

अपभ्रंश भाषा सरल रूप में सीखी जा सके, इस क्रम में 'अपभ्रंश रचना सौरभ' प्रकाशित की गई । उसी क्रम में 'अपभ्रंश काव्य सौरभ' प्रकाशित है । इसमें अपभ्रंश काव्यों से चयनित अंश, उनके हिन्दी अनुवाद, व्याकरणिक विश्लेषण एवं शब्दार्थ दिये गये हैं । मेरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विश्वास है कि विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभागों के लिए यह कृति उपयोगी होगी और विद्यार्थी अपभ्रंश भाषा के काव्यों का रसास्वाद कर सकेंगे।

इस पुस्तक के प्रकाशन में अकादमी के विद्वान एवं मुद्रण के लिए मदरलैण्ड प्रिन्टिग प्रेस, जयपुर धन्यवादार्ह हैं।

6 अक्टूबर, 1992
भट्टारकजी की नसियां,
सवाई रामसिंह रोड,
जयपुर-302 004

डॉ. कमलचन्द सोगाणी
संयोजक
जैनविद्या संस्थान समिति

Jain Education International · For Private & Personal Use Only · www.jainelibrary.org

प्रस्तावना

अपभ्रंश भारतीय आर्य-परिवार की एक सुसमृद्ध लोक भाषा रही है। इसका प्रकाशित-अप्रकाशित विपुल साहित्य इसके विकास की गौरवमयी गाथा कहने में समर्थ है। स्वयंभू, पुष्पदन्त, धनपाल, वीर, नयनन्दि, कनकामर, जोइन्दु, रामसिंह, हेमचन्द्र, रइधू आदि अपभ्रंश भाषा के अमर साहित्यकार हैं। कोई भी देश व संस्कृति इनके आधार से अपना मस्तक ऊंचा रख सकती है। विद्वानों का मत है 'अपभ्रंश ही वह आर्य भाषा है जो ईसा की लगभग सातवीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी तक सम्पूर्ण उत्तर-भारत की सामान्य लोक-जीवन के परस्पर भाव-विनिमय और व्यवहार की बोली रही है।'[1] यह निर्विवाद तथ्य है कि अपभ्रंश की कोख से ही सिन्धी, पंजाबी, मराठी, गुजराती, राजस्थानी, बिहारी, उड़िया, बंगला, असमी, पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी आदि आधुनिक भारतीय भाषाओं का जन्म हुआ है। इस तरह से राष्ट्र भाषा का मूल स्रोत होने का गौरव अपभ्रंश भाषा को प्राप्त है। यह कहना युक्तिसंगत है—"अपभ्रंश और हिन्दी का सम्बन्ध अत्यन्त गहरा और सुदृढ़ है, वे एक दूसरे की पूरक हैं। हिन्दी को ठीक से समझने के लिए अपभ्रंश की जानकारी आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है।"[2] डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार—"हिन्दी साहित्य में (अपभ्रंश की) प्रायः पूरी परम्पराएं ज्यों की त्यों सुरक्षित हैं।" अतः राष्ट्रभाषा हिन्दीसहित आधुनिक भारतीय भाषाओं के सन्दर्भ में यह कहना कि अपभ्रंश का अध्ययन राष्ट्रीय चेतना और एकता का पोषक है, उचित प्रतीत होता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अपभ्रंश भाषा को सीखना-समझना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसी बात को ध्यान में रखकर **'अपभ्रंश रचना सौरभ'** प्रकाशित की गई थी। उसी क्रम में **'अपभ्रंश काव्य सौरभ'** तैयार की गई है। इसमें अपभ्रंश के विभिन्न ग्रन्थों से काव्यांशों का चयन किया गया है। उनके हिन्दी अनुवाद, व्याकरणिक विश्लेषण एवं शब्दार्थ प्रस्तुत किये गये हैं। परिशिष्ट–1 में कवि-परिचय लिखा गया है तथा परिशिष्ट–2 में काव्यांशों के प्रसंग दे दिये गए हैं। इस तरह से अपभ्रंश भाषा सीखने के साथ-साथ काव्यों का रसास्वादन किया जा सकेगा।

---

1. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, डॉ. नामवरसिंह, पृ. 287।
2, अपभ्रंश और अवहट्ट : एक अन्तर्यात्रा, डॉ. शम्भूनाथ पाण्डेय, 1979, पृ. 9।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आभार—

काव्यांशों एवं उनके व्याकरणिक विश्लेषण से सम्बन्धित पुस्तकों का प्रूफ-संशोधन का कार्य अत्यन्त कठिन होता है। किन्तु मुझे हर्ष है कि अपभ्रंश के मेरे विद्यार्थियों—सुश्री प्रीति जैन, सुश्री सीमा बत्रा एवं सुश्री माया शर्मा ने, जिन्होंने अकादमी की 'अपभ्रंश डिप्लोमा परीक्षा' उत्तीर्ण की है और जो अकादमी के प्रकाशन विभाग में कार्यरत हैं, इस कठिन कार्य को सहर्ष और रुचिपूर्वक सम्पन्न किया है। अतः मैं उनका आभारी हूँ। मैं सुश्री प्रीति जैन का विशेषरूप से आभारी हूँ जिन्होंने काव्यों के अनुवाद एवं व्याकरणिक विश्लेषण में महत्वपूर्ण सुझाव सुझाए।

मेरी धर्मपत्नी श्रीमती कमलादेवी सोगाणी ने इस पुस्तक को तैयार करने में जो सहयोग दिया है उसके लिए आभार व्यक्त करता हूँ।

इस पुस्तक को प्रकाशित करने के लिए जैनविद्या संस्थान समिति एवं समिति के पूर्व संयोजक श्री ज्ञानचन्द्र खिन्दूका ने जो व्यवस्था की उसके लिए मैं उनके प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

(सेवानिवृत्त प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र)
संयोजक
अपभ्रंश साहित्य अकादमी, जयपुर
जैनविद्या संस्थान, श्रीमहावीरजी।

कमलचन्द सोगाणी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपभ्रंश काव्य सौरभ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ—1

पउमचरिउ

सन्धि–22

कोसलणन्दणेंण स-कलत्तें णिय-घरु आएं ।
आसाढट्ठमिहिँ किउ ण्हवणु जिणिन्दहों राएं ।।

22.1

सुर-समर-सहासेंहिँ दुम्महेण किउ ण्हवणु जिणिन्दहों दसरहेण ।। 1
पट्ठवियइँ जिण-तणु-धोवयाइँ देविहिँ दिव्वइँ गन्धोदयाइँ ।। 2
सुप्पहहें णवर कञ्चुइ ण पत्तु पहु पभणइ रहसुच्छलिय-गत्तु ।। 3
'कहें काइँ णियम्विणि मणें विसण्ण चिर-चित्तिय भित्ति व थिय विवण्ण'।। 4
पणवेप्पिणु वुच्चइ सुप्पहाएँ 'किर काइँ महु त्तणियएँ कहाएँ ।। 5
जइ हउँ जें पाणवल्लहिय देव तो गन्ध-सलिलु पावइ ण केम' ।। 6
तहिँ अवसरें कञ्चुइ ढुक्कु पासु छण-ससि व णिरन्तर-धवलियासु ।। 7
गय-दन्तु अयंगमु (?) दण्ड-पाणि अणियच्छिय-पहु पक्खलिय-वाणि ।। 8

घत्ता—गरहिउ दसरहेंण 'पइँ कञ्चुइ काइँ चिराविउ ।
जलु जिण-वयणु जिह सुप्पहहें दवत्ति ण पाविउ' ।।

22.2

पणवेप्पिणु तेण वि वुत्तु एम 'गय दियहा जोव्वणु ल्हसिउ देव ।। 1
पढमाउसु जर धवलन्ति आय पुणु असइ व सीस-वलग्ग जाय ।। 2
गइ तुट्टिय विहडिय सन्धि-वन्ध ण सुणन्ति कण्ण लोयण णिरन्ध ।। 3
सिरु कम्पइ मुहें पक्खलइ वाय गय दन्त सरीरहों णट्ठ छाय ।। 4
परिगलिउ रुहिरु थिउ णवर चम्मु महु एत्थु जें हुउ णं अवरु जम्मु ।। 5

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ–1

पउमचरिउ

सन्धि–22

अपने घर पहुँचे हुए कोशलनगर (अयोध्या) के (राज–) पुत्र, राजा (राम) के द्वारा पत्नि-सहित अषाढ़ की अष्टमी के दिन जिनेन्द्र का अभिषेक किया गया।

22.1

[1] देवताओं के साथ हजारों युद्धों में कठिनाई से मारे जानेवाले दशरथ के द्वारा (भी) जिनेन्द्र का अभिषेक किया गया। [2] (अभिषेक के पश्चात्) जिनेश्वर के तन को धोनेवाला दिव्य गन्धोदक (सुगन्धित जल) देवियों (राज-पत्नियों) के लिए (कञ्चुकी के साथ) भेजा गया। [3] कञ्चुकी केवल (रानी) सुप्रभा के (पास) नहीं पहुँचा। हर्ष से पुलकित शरीरवाला स्वामी (राजा) कहता है–[4] "हे (सुडोल) स्त्री ! कहो (तुम) मन में दुःखी क्यों (हो) ? (और) पुरानी चित्रित भीत की तरह स्थिर (और) निस्तेज (क्यों हो)? [5] (राजा को) प्रणाम करके सुप्रभा के द्वारा कहा जाता है—हे प्रभु ! मेरे सम्बन्ध में चर्चा से क्या (लाभ)? [6] हे देव ! यदि मैं (सुप्रभा) भी इस प्रकार (आपके लिए) प्राणों से प्यारी (होती), तो (सुप्रभा) गन्धोदक क्यों नहीं पाती ? [7] उसी समय पर कञ्चुकी (जिसका) मुख शरद (ऋतु) की पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह (वृद्धावस्था के द्वारा) निरन्तर सफेद किया गया (था)। [8] (जिसका) दन्त (-समूह) टूट गया (था), (जो) जड़ (था), (जिसके) हाथ में लकड़ी (थी), (जिसके द्वारा) पथ नहीं देखा गया, (जिसकी) वाणी लड़खड़ाती हुई (थी) (सुप्रभा के) पास पहुँचा।

घत्ता—दशरथ के द्वारा (कञ्चुकी) निन्दा किया गया (और कहा गया कि) हे कञ्चुकी ! तुम्हारे द्वारा देर क्यों की गई ? (जिससे) सुप्रभा के द्वारा जिन-वचन के सदृश गन्धोदक शीघ्र नहीं पाया गया।

22.2

[1] (राजा को) प्रणाम करके, उसके द्वारा भी इस प्रकार कहा गया—हे देव ! (मेरे) दिन चले गये, यौवन खिसक गया, [2] बुढ़ापा प्रारम्भिक आयु (युवावस्था) को सफेद करता हुआ आ गया, और कुलटा (स्त्री) की तरह सिर पर चढ़ा हुआ विद्यमान है। [3] गति टूट गई (है), हड्डियों के जोड़ों के बन्धन खुल गये (हैं), कान सुनते नहीं (हैं), आंखें बिल्कुल अन्धी (हैं)। [4] सिर हिलता है, मुख में वाणी लड़खड़ाती है। दाँत टूट गये (हैं), शरीर की कान्ति नष्ट हो चुकी (है)। [5] खून क्षीण हो चुका (है), केवल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गिरि-णइ-पवाह ण वहन्ति पाय गन्धोवउ पावउ केम राय' ॥ 6
वयणेण तेण किउ पहु-वियप्पु गउ परम-विसायहों राम-वप्पु ॥ 7
'सच्चउ चलु जीविउ कवणु सोक्खु तं किज्जइ सिज्झइ जेण मोक्खु ॥ 8

घत्ता—सुहु महु-विन्दु-समु दुहु मेरु-सरिसु पवियम्भइ ।
वरि तं कम्मु किउ जं पउ अजरामरु लब्भइ ॥

22.3

कं दिवसु वि होसइ आरिसाहुँ कञ्चुइ-अवत्थ अम्हारिसाहुँ ॥ 1
को हउँ का महि कहों तणउ दव्वु सिंहासणु छत्तइँ अथिरु सव्वु ॥ 2
जोव्वणु सरीरु जीविउ धिगत्थु संसारु असारु अणत्थु अत्थु ॥ 3
विसु विसय वन्धु दिढ-वन्धणाइँ घर दारइँ परिहव-कारणाइँ ॥ 4
सुय सत्तु विढत्तउ अवहरन्ति जर-मरणहँ किङ्कर किं करन्ति ॥ 5
जीवाउ वाउ हय हय वराय सन्दण सन्दण गय गय जें णाय ॥ 6
तणु तणु जें खणद्धें खयहों जाइ धणु धणु जि गुणेण वि वङ्कु थाइ ॥ 7
दुहिया वि दुहिय माया वि माय सम-भाउ लेन्ति किर तेण भाय ॥ 8

घत्ता—आयइँ अवरइ मि सव्वइँ राहवहों समप्पेंवि ।
अप्पुणु तउ करमि' थिउ दसरहु एम वियप्पेंवि ॥

22.7

घत्ता—दसरहु अण्ण-दिणें किर रामहों रज्जु समप्पइ ।
केक्कय ताव मणें उण्हालएँ धरणि व तप्पइ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चमड़ी रह गई (है), मानो मेरा यहाँ दूसरा ही जन्म हुआ (है)। [6] (इसलिए) पैर पर्वतीय नदी के (समान) प्रवाह को धारण नहीं करते हैं, (तो) हे राजा (वह रानी) (उस) गन्धोदक को किस प्रकार पावे। [7] (कञ्चुकी के) उस कथन से राजा (दशरथ) के द्वारा (मन में) विचार किया गया (और वे) राम के पिता (दशरथ) अत्यन्त दुःख को प्राप्त हुए। [8] (उन्होंने सोचा) (यह) सत्य (है) (कि) जीवन चंचल (है), (तो फिर) वह कौनसा सुख (है), (जो) अनुभव किया जाता है, जिससे मोक्ष (शाश्वत पद) सिद्ध होता है।

घत्ता—(इन्द्रिय-) सुख मधु की बिन्दु के समान (होता है), दुःख मेरु-पर्वत के समान लगता (दिखता) है। किया हुआ वह (ही) कर्म अच्छा (होता है), जिससे अजर-अमर पद प्राप्त किया जाता है।

22.3

[1] किसी दिन हम जैसों की (अवस्था) ऐसे (लोगों) के (समान) ही होगी, (जैसी) कञ्चुकी की अवस्था (है)। [2] (इस पर राजा के द्वारा विचार किया गया कि) मैं कौन (हूँ)? किसकी पृथ्वी (है)? किसका धन (है)? सिंहासन (और) छत्र सभी अस्थिर (हैं)। [3] यौवन, शरीर, धन (और) (चल रहे) जीवन को धिक्कार (है)। संसार असार (है), धन हानिकारक (होता है)। [4] (इन्द्रिय-) विषय विष (हैं), बन्धु कठोर बन्धन (हैं), घर और पत्नी दुःख देने के कारण (बन जाते हैं)। [5] सुत (पुत्र) शत्रु (हो जाते हैं), (वे) उपार्जित (धन) को छीन लेते हैं। बुढ़ापे और मरण के अवसर पर नौकर-चाकर क्या करते हैं? [6] जीव की आयु हवा (की तरह) (चंचल) (होती है), (देखो) बेचारे घोड़े (युद्ध में) मारे गये (हैं)। रथ टूटनेवाले (होते हैं), मरे हुए (व्यक्ति) (सदा के लिए) ही गये, (वे) (कभी) नहीं लौटे। [7] शरीर तृण (के समान) ही (होता है), (वह) आधे क्षण में क्षय को प्राप्त होता है। धन धनुष (के समान) (होता है), (जो) प्रत्यञ्चा (रूपी दुर्गुण) से बांका रहता है। [8] पुत्री दुःखी करनेवाली (होती) है, माता मोह-जाल (होती है), चूंकि (भाई) (सम्पत्ति में) समान हिस्सा लेते हैं, इसलिए (ही) (वे) भाई (हैं)।

घत्ता–इनको (और) दूसरे सब को भी राम को देकर (मैं) स्वयं तप करूँगा। इस प्रकार विचार करके दशरथ स्थिर हुए।

22.7

घत्ता—दशरथ दूसरे दिन (जब) राम को राज्य दे देते हैं, तब केकय देश के राजा की कन्या (कैकयी) मन में, (तपती है, दुःखी होती है), जैसे ग्रीष्म-काल में धरती तपती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

22.8

णरिन्दस्स सोऊण पव्वज्ज–यज्जं स-रामाहिरामस्स रामस्स रज्जं ॥ 1
ससा दोणरायस्स भग्गाणुराया तुलाकोडि-कन्ती-लयालिद्ध-पाया ॥ 2
गया केक्कया जत्थ अत्थाण-मग्गो णरिन्दो सुरिन्दो व पीढं वलग्गो ॥ 6
वरो मग्गिओ 'णाह सो एस कालो महं णन्दणो ठाउ रज्जाणुपालो' ॥ 7
'पिए होउ एवं' तओ सावलेवो समायारिओ लक्खणो रामएवो ॥ 8

घत्ता—'जइ तुहुँ पुत्तु महु तो एत्तिउ पेसणु किज्जइ ।
छत्तइँ वइसणउ वसुमइ भरहहों अप्पिज्जइ' ॥

23.3

चिन्तावण्णु णराहिउ जावेंहिँ वलु णिय-णिलउ पराइउ तावेंहिँ ॥ 1
दुम्मणु एन्तु णिहालिउ मायएँ पुणु विहसेवि वुत्तु पिय-वायएँ ॥ 2
'दिवें दिवें चडहि तुरङ्गम-णाएँहिँ अज्जु काइँ अणुवाहणु पाएँहिँ ॥ 3
दिवें दिवें वन्दिण-विन्देंहिँ थुव्वहि अज्जु काइँ थुव्वन्तु ण सुव्वहि ॥ 4
दिवें दिवें धुव्वहि चमर-सहासेंहिँ अज्जु काइँ तउ को वि ण पासेंहिँ ॥ 5
दिवें दिवें लोयहिँ वुच्चहि राणउ अज्जु काइँ दीसहि विद्दाणउ' ॥ 6
तं णिसुणेवि वलेण पजम्पिउ 'भरहहों सयलु वि रज्जु समप्पिउ ॥ 7
जामि माएँ दिढ हियवएँ होज्जहि जं दुम्मिय तं सव्वु खमेज्जहि' ॥ 8

घत्ता—जं आउच्छिय माय 'हा हा पुत्त' भणन्ती ।
अपराइय महएवि महियलें पडिय रुयन्ती ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

22.8

[1] राजा दशरथ के संन्यास-विधान को और पत्नीसहित आकर्षक (लगने-वाले) राम के लिए राज्य (देने) को सुनकर, [2] द्रोण राजा की बहिन (कैकयी), (जिसका) (राम के प्रति) स्नेह टूट गया (था), (जिसके) पैर लता-रूपी नूपुरों से लिपटे हुए और कान्तिसहित (थे), [6] (वह) (उस ओर) गई, जहां (राज) सभास्थान का पथ (था) (और) (सभास्थान में) इन्द्र की तरह राजा (दशरथ) आसन पर स्थित (थे)। [7] (वहाँ पहुँचने पर उसने कहा-) हे नाथ ! यह वह समय (है) (जब) मांगा हुआ वर (पूरा किया जाना चाहिए) (उसने कहा) मेरा पुत्र (भरत) राज्य का पालन-कर्त्ता रहे। [8] हे प्रिये ! इसी प्रकार होवे। तब गर्वसहित राम और लक्ष्मण बुलाए गए।

घत्ता—यदि तुम मेरे पुत्र (हो), तो इतनी आज्ञा पालन की जाए (कि) छत्र, आसन (सिंहासन) और पृथ्वी भरत के लिए दे दी जाए।

23.3

[1] जब नराधिप (दशरथ) चिन्ता में डूबे हुए (थे), तब (ही) बलदेव (राम) निज भवन को गए। [2] माता के द्वारा आता हुआ उदास मनवाला (राम) देखा गया। फिर भी (माता के द्वारा) हँसकर प्रियवाणी से कहा गया— [3] प्रतिदिन (तुम) घोड़े और हाथी पर चढ़ते थे, आज बिना जूतों के (नंगे) पैरों से कैसे ? [4] प्रतिदिन (तुम) स्तुति-गायकों के समूहों द्वारा स्तुति किए जाते थे, आज स्तुति किए जाते हुए कैसे नहीं सुने जाते हो ? [5] प्रतिदिन (तुम) हजारों चँवरों से पंखा किए जाते थे, आज तुम्हारे आस-पास में कोई भी क्यों नहीं है ? [6] प्रतिदिन तुम लोगों के द्वारा राणा (छोटे राजा) कहे जाते थे, आज (तुम) निस्तेज क्यों दिखाई देते हो ? [7] उसको सुनकर बलदेव (राम) के द्वारा कहा गया-भरत को सम्पूर्ण राज्य ही दे दिया गया है। [8 हे मां ! (मैं) जाता हूँ, (तुम) मन की अवस्था में दृढ़ रहना, जो (मेरे द्वारा) कष्ट पहुँचाया गया (है), उस सबको (तुम) क्षमा करना।

घत्ता—जिस तरह से माता पूछी गई (उसके परिणामस्वरूप) हाय पुत्र ! कहती हुई (वह) महादेवी अपराजिता धरती पर रोती हुई गिर पड़ी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ—2

पउमचरिउ

सन्धि–24

गएँ वरण-वासहों रामें उज्झ रण चित्तहों भावइ ।
थिय रगीसास मुअन्ति महि उण्हालएँ रणावइ ।।

24.1

सयलु वि जणु उम्माहिज्जन्तउ खणु वि रण थक्कइ णामु लयन्तउ ।। 1
उव्वेल्लिज्जइ गिज्जइ लक्खणु मुरव-वज्जें वाइज्जइ लक्खणु ।। 2
सुइ-सिद्धन्त-पुराणेंहिँ लक्खणु ओङ्कारेण पढिज्जइ लक्खणु ।। 3
अण्णु वि जं जं किं पि स-लक्खणु लक्खण-णामें वुच्चइ लक्खणु ।। 4
का वि रणारि सारङ्गि व वुण्णी वड्डी धाह मुएवि परुण्णी ।। 5
का वि रणारि जं लेइ पसाहणु तं उल्हावइ जारणइ लक्खणु ।। 6
का वि रणारि जं परिहइ कङ्कणु धरइ सु-गाढउ जारणइ लक्खणु ।। 7
का वि रणारि जं जोयइ दप्पणु अण्णु रण पेक्खइ मेल्लेंवि लक्खणु ।। 8
तो एत्थन्तरें पारिणय-हारिउ पुरें वोल्लन्ति परोप्परु रणारिउ ।। 9
'सो पल्लङ्कु तं जे उवहारणउ सेज्ज वि स ज्जें तं जें पच्छाणउ ।। 10

घत्ता—तं घरु रयणइँ ताइँ तं चित्तयम्मु स-लक्खणु ।
णवर रण दीसइ माएँ रामु ससीय-सलक्खणु' ।।

24.3

जं रणीसरिउ राउ आणन्दें वुत्तु रणवेप्पिणु भरह–णरिन्दें ।। 1
'हउ मि देव पइँ सहुँ पव्वज्जमि दुग्गइ-गामिउ रज्जु रण भुञ्जमि ।। 2
रज्जु असारु वारु संसारहों रज्जु खणेण रणेइ तम्वारहों ।। 3
रज्जु भयङ्करु इह-पर-लोयहों रज्जें गम्मइ णिच्च-णिगोयहों ।। 4
रज्जें होउ होउ महु सरियउ सुन्दरु तो किं पइँ परिहरियउ ।। 5
रज्जु अकज्जु कहिउ मुणि-छेयहिँ दुट्ठ-कलत्तु व भुत्तु अणेयहिँ ।। 6

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ-2

पउमचरिउ

सन्धि-24

राम के वनवास (चले) जाने पर अयोध्या चित्त को अच्छी नहीं लगती है जैसे ग्रीष्म-काल में स्थित पृथ्वी (गर्म) श्वांस छोड़ती हुई (चित्त को अच्छी नहीं लगती है)।

24.1

[1] समस्त जन (-समूह) वियोग में व्याकुल किया जाता हुआ भी नाम लेता हुआ (एक) क्षण भी नहीं थकता है। [2] लक्ष्मण (का नाम) उछाला जाता है, गाया जाता है, लक्ष्मण मृदंगवाद्य में बजाया जाता है। [3] श्रुति सिद्धान्त और पुराणोंद्वारा लक्षण (समझा जाता है), ओंकार से लक्षण (व्याकरण शास्त्र) पढ़ा जाता है। [4] अन्य जो-जो कुछ भी लक्षण-सहित है, (वह) लक्ष्मण नाम से लक्षण कहा जाता है। [5] कोई नारी हरिणी के समान दुःखी हुई (और) बड़ी चिल्लाहट निकालकर रोई। [6] कोई नारी जिस आभूषण को पहनती है, (वह) उसको लक्ष्मण समझती है (जो) (उसे) शान्ति देता है। [7] कोई नारी जिस (भी) कंगन को पहनती है, (वह) (उसको) खूब गाढ़ा धारण करती है, (वह) (उसको) लक्ष्मण समझती है। [8] कोई नारी जिस (भी) दर्पण को देखती है, उसमें लक्ष्मण को छोड़कर अन्य को नहीं देखती है। [9] तब इसी बीच में पनिहारिनें नगर में नारियों को आपस में कहती हैं—[10] वह ही पलंग, वह ही तकिया, शय्या भी वह ही (और) वह ही ढकनेवाली (चादर) है।

घत्ता—वह (ही) घर, वे (ही) रत्न, लक्ष्मण-सहित वह (ही) चित्र (छवि) (किन्तु) हे मां! केवल सीतासहित और लक्ष्मणसहित राम नहीं देखे जाते हैं।

24.3

[1] जब राजा हर्ष से निकला (तो) भरत राजा के द्वारा प्रणाम करके कहा गया—[2] हे देव! मैं भी तुम्हारे साथ संन्यास लूँगा। दुर्गति देनेवाले राज्य को नहीं भोगूंगा। [3] राज्य असार (है), संसार का द्वार (है), राज्य क्षण भर में विनाश को पहुँचा देता है। [4] राज्य इस (लोक में) और परलोक में दुःख-जनक (होता है)। (मनुष्य के द्वारा) राज्य से नित्य-निगोद के लिए जाया जाता है। [5] राज्य के द्वारा मधु के समान रुचिकर हुआ गया (है) तो (यह ऐसा) होवे। (किन्तु) (फिर) तुम्हारे द्वारा (राज्य) क्यों छोड़ दिया गया? [6] निर्मल मुनियों द्वारा राज्य नहीं करने योग्य कहा गया (है) (वह) अनेक के

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

दीसवन्तु मयलञ्छण-विम्वु व बहु-दुक्खाउरु दुग्ग-कुडुम्वु व ॥ 7
तो वि जीउ पुणु रज्जहों कङ्खइ अणुदिणु आउ गलन्तु ण लक्खइ ॥ 8

घत्ता – जिह महुविन्दुहुँ कज्जें करहु ण पेक्खइ कक्करु ।
तिह जिउ विसयासत्तु रज्जें गउ सय–सक्करु ॥ 9

24.4

भरहु चवन्तु णिवारिउ राएं 'अज्ज वि तुज्झु काइँ तव-वाएं ॥ 1
अज्ज वि रज्जु करहि सुहु भुञ्जहि अज्ज वि विसय-सुक्खु अणुहुञ्जहि ॥ 2
अज्ज वि तुहुँ तम्वोलु समाणहि अज्ज वि वर-उज्जाणइँ माणहि ॥ 3
अज्जु वि अंगु स-इच्छएँ मण्डहि अज्ज वि वर-विलयउ अवरुण्डहि ॥ 4
अज्ज वि जोग्गउ सव्वाहरणहों अज्ज वि कवणु कालु तव-चरणहों ॥ 5
जिण-पव्वज्ज होइ अइ–दुसहिय कें वावीस परीसह विसहिय ॥ 6
कें जिय चउ-कसाय-रिउ दुज्जय कें आयामिय पञ्च महव्वय ॥ 7
कें किउ पञ्चहुँ विसयहुँ णिग्गहु कें परिसेसिउ सयलु परिग्गहु ॥ 8
को दुम-मूलें वसिउ वरिसालएँ को एक्कंगें थिउ सीयालएँ ॥ 9
कें उण्हालएँ किउ अत्तावणु एँउ तव-चरणु होइ भीसावणु ॥ 10

घत्ता – भरह म वड्ढिउ वोल्लि तुहुँ सो अज्ज वि वालु ।
भुञ्जहि विसय-सुहाइँ को पव्वज्जहें कालु' ॥ 11

24.5

तं णिसुणेवि भरहु आरुट्ठउ मत्त-गइन्दु व चित्तें दुट्ठउ ॥ 1
'विरुयउ ताव वयणु पइँ वुत्तउ किं वालहों तव-चरणु ण जुत्तउ ॥ 2
किं वालत्तणु सुहेँहिँ ण मुच्चइ किं वालहों दय-धम्मु ण रुच्चइ ॥ 3
किं वालहों पव्वज्ज म होओ किं वालहों दूसिउ पर-लोओ ॥ 4

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वारा अनुभव किया गया (है) जैसे दुष्ट स्त्री (अनेक) (पुरुषों द्वारा)। [7] (वह राज्य) दोषवाला (होता है) जैसे चन्द्रमा का बिम्ब, (वह) बहुत दुःखों से पीड़ित (होता है) जैसे दरिद्र कुटुम्ब। [8] (आश्चर्य है कि) तो भी जीव राज्य की/के लिए इच्छा करता है। प्रतिदिन गलती हुई आयु को नहीं देखता है।

घत्ता—जिस प्रकार जल की बूंद के प्रयोजन से ऊँट कंकर को नहीं देखता है, उसी प्रकार विषय में आसक्त जीव ने राज्य से अत्यधिक आदर-सत्कार पाया है (इसलिए) (वह) (उससे प्राप्त दुःखों को नहीं देखता है)।

24.4

[1] राजा के द्वारा बोलता हुआ भरत रोका गया। (राजा ने कहा) आज ही तेरे लिए तप की बात से क्या (लाभ)? [2] आज ही राज्य कर (और उसके) सुख का अनुभव कर। आज ही विषय-सुख को भोग। [3] आज ही तू पान का उपभोग कर। आज ही (तू) श्रेष्ठ उद्यानों को मान। [4] आज ही (तू) शरीर को स्व-इच्छा से सजा (और) आज ही श्रेष्ठ स्त्रियों का आलिंगन कर। [5] आज भी (तू) सभी अलंकार के योग्य (है)। आज ही तप के आचरण का कौनसा समय (है)? [6] जिन-प्रव्रज्या बहुत असह्य होती है। किसके द्वारा बाईस परीषह सहन किए गए (हैं)? [7] किसके द्वारा दुर्जेय चारों कषायोंरूपी शत्रु जीते गये (हैं), किसके द्वारा पंच महाव्रत ग्रहण किए गए (हैं)? [8] किसके द्वारा पाँचों विषयों का निग्रह किया गया (है)? किसके द्वारा सकल परिग्रह समाप्त किया गया (है)? [9] कौन वर्षाकाल में वृक्ष के नीचे बसा (है)? कौन शीतकाल में केवलमात्र शरीर से रहा (है)? [10] किसके द्वारा ग्रीष्मकाल में शरीर का तपन किया गया (है)? यह तप का आचरण भीषण होता है।

घत्ता—हे भरत! तू बढ़कर मत बोल। (तू) आज भी वह (ही) बालक (है)। विषय-सुखों को भोग। (यह) प्रव्रज्या का कौनसा काल (है)?

24.5

[1] उसको सुनकर भरत क्रुद्ध (रुष्ट) हुआ। मस्त हाथी की तरह चित्त में दुःखी हुआ। [2] (भरत ने कहा कि हे पिता) तब आपके द्वारा प्रतिकूल (विरोधी) वचन कहे गए। क्या बालक के लिए तप का आचरण उचित (युक्त) नहीं है? [3] क्या बालपन सुखों के द्वारा नहीं ठगा जाता है? क्या बालक के लिए दया एवं धर्म रुचिकर नहीं होता है? [4] क्या बालक के लिए प्रव्रज्या नहीं हुई? क्या बालक का परलोक दूषित (नहीं)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किं वालहों सम्मत्तु म होम्रो   किं वालहों गाउ इट्ठ-विम्रोम्रो ।। 5
किं वालहों जर-मरणु ण ढुक्कइ   किं वालहों जमु दिवसु वि चुक्कइ' ।। 6
तं णिसुणेवि भरहु णिब्भच्छिउ   'तो किं पहिलउ पट्टु पडिच्छिउ ।। 7
एवहिँ सयलु वि रज्जु करेवउ   पच्छलें पुणु तव-चरणु चरेवउ' ।। 8

घत्ता—एम भणेप्पिणु राउ सच्चु समप्पेंवि भज्जहें ।
भरहहों वन्धेंवि पट्टु दसरहु गउ पव्वज्जहें ।। 9

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(होता) ? [5] क्या बालक के लिए सम्यक्त्व नहीं हुआ ? क्या बालक के लिए इष्ट-वियोग नहीं (हुआ) ? [6] क्या बालक के लिए जरा-मरण नहीं आता है ? क्या बालक के लिए यमराज दिन भूल जाता है ? [7] उसको सुनकर (राजा के द्वारा) भरत झिड़का गया (कि) तब (तुम्हारे द्वारा) पहले राजपट्ट (सिंहासन) क्यों स्वीकार किया गया ? [8] इस समय (तो) (तुम्हारे द्वारा) सम्पूर्ण राज ही किया जाना चाहिए (और) (जीवन के) पिछले भाग में फिर तप का आचरण किया जाना चाहिए ।

घत्ता—इस प्रकार कहकर पत्नी के वचन को पूरा करके (और) भरत को पट्ट बाँधकर (राजा) दशरथ प्रव्रज्या के लिए चले गए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ 3

पउमचरिउ

सन्धि–27

27.14

घत्ता—वरि पहरिउ वरि किउ तवचरणु वरि विसु हालाहलु वरि मरणु ।
वरि अच्छिउ गम्पिणु गुहिल-वणेँ णवि णिविसु वि णिवसिउ अवुहयणेँ ॥ 9

27.15

तो तिण्णि वि एम चवन्ताइँ उम्माहउ जणहोँ जणन्ताइँ ॥ 1
दिण-पच्छिम-पहरेँ विणिग्गयाइँ कुञ्जर इव विउल-वणहो गयाइँ ॥ 2
वित्थिण्णु रण्णु पइसन्ति जाव णग्गोहु महादुमु दिट्ठु ताव ॥ 3
गुरु वेसु करेँवि सुन्दर-सराइँ णं विहय पढावइ अक्खराइँ ॥ 4
वुक्कण-किसलय क-क्का रवन्ति वाउलि-विहङ्ग कि-क्की भणन्ति ॥ 5
वण-कुक्कुड कु-क्कू आयरन्ति अण्णु वि कलावि के-क्कइ चवन्ति ॥ 6
पियमाहवियउ को-क्कउ लवन्ति कंका वप्पीह समुल्लवन्ति ॥ 7
सो तरुवरु गुरु-गणहर-समाणु फल-पत्त-वन्तु अक्खर-णिहाणु ॥ 8

घत्ता—पइसन्तेँहिँ असुर-विमद्दणेँहिँ सिरु णामेँवि राम-जणद्दणेँहिँ ।
परिअञ्चेँवि दुमु दसरह-सुएँहिँ अहिणन्दिउ मुणि व सइं भु एँहिँ ॥ 9

सन्धि–28

सीय स-लक्खणु दासरहि तरुवर-मूलेँ परिट्ठिय जावेँहिँ ।
पसरइ सु-कइहेँ कव्वु जिह मेह-जालु गयणङ्गणेँ तावेँहिँ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ—3

पउमचरिउ

सन्धि—27

27.14

घत्ता—(व्यक्तियों के द्वारा) (यदि) प्रहार किया गया (है), (तो) अधिक अच्छा (है), (यदि) तप का आचरण किया गया (है), (तो) (भी) अधिक अच्छा (है), (यदि) हालाहल विष (पिया गया है), (तो) (भी) अधिक अच्छा (है), मरना (भी) अधिक अच्छा (है),गहन वन में जाकर टिके हुए (होना)(भी) अधिक अच्छा(है), किन्तु पल भर (भी) मूर्ख-जन में ठहरे हुए (रहना) (अच्छा) नहीं (है)।

27.15

[1] तब तीनों ही (राम, लक्ष्मण व सीता) (उस) जन (-समूह) में अतिपीड़ा को उत्पन्न करते हुए (और) इस (उपर्युक्त) प्रकार से कहते हुए [2] दिन के अन्तिम प्रहर में बाहर निकल गए (और) हाथी की तरह (वे) घने वन को चले गये। [3] ज्यों ही विशाल वन में प्रवेश करते हुए (वे) (आगे बढ़े), त्यों ही (उनके द्वारा) बरगद-महावृक्ष देखा गया। [4] (वह वृक्ष ऐसा था) मानो शिक्षक के रूप को धारण करके पक्षियों को सुन्दर स्वर व अक्षर पढ़ाता हो। [5] कौए नए कोमल पत्तों (वाली टहनी) पर (बैठे हुए) क–क्का, क–क्का बोलते थे (और) बाउलि पक्षी कि–क्की, कि–क्की कहते थे। [6] जलमुर्गे कु–क्कू, कु–क्कू कहते थे, और भी मोर के–क्कई, के–क्कई बोलते थे। [7] कोयलें को–क्कऊ, को-क्कऊ बोलती थीं (तथा) पपीहे कंका, कंका बोलते थे। [8] (इस तरह से) वह श्रेष्ठ वृक्ष फल-पत्तों वाला था (और) गुरु गणधर के समान अक्षरों का भण्डार (था)।

घत्ता—असुरों का नाश करनेवाले दशरथ के पुत्र, राम–लक्ष्मण द्वारा (वन में) प्रवेश करते ही सिर को नमाकर (बरगद का) वृक्ष मुनि की तरह (नमन किया गया) और (उसकी) परिक्रमा करके (उनके द्वारा) अपनी भुजाओं से (भी) अभिनन्दन किया गया।

सन्धि—28

ज्यों ही (दशरथ-पुत्र) राम सीता (और) लक्ष्मण के साथ (उस) श्रेष्ठ वृक्ष के नीचे के भाग में बैठे, त्योंही सुकवि के काव्य की भाँति बादलों के सघन-समूह आकाश के आँगन में (चारों ओर) फैल गए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

28.1

पसरइ मेह-विन्दु गयणङ्गणें पसरइ जेम सेण्णु समरङ्गणें ॥ 1
पसरइ जेम तिमिरु अण्णाणहों पसरइ जेम बुद्धि वहु-जाणहों ॥ 2
पसरइ जेम पाउ पाविट्ठहों पसरइ जेम धम्मु धम्मिट्ठहों ॥ 3
पसरइ जेम जोण्ह मयवाहहों पसरइ जेम कित्ति जगणाहहों ॥ 4
पसरइ जेम चिन्त धण-हीणहों पसरइ जेम कित्ति सुकुलीणहों ॥ 5
पसरइ जेम सद्दु सुर-तूरहों पसरइ जेम रासि-णहें सूरहों ॥ 6
पसरइ जेम दवग्गि वणन्तरें पसरइ मेह-जालु तिह अम्वरें ॥ 7
तडि तडयडइ पडइ घणु गज्जइ जाणइ रामहों सरणु पवज्जइ ॥ 8

घत्ता—अमर-महाधणु-गहिय-करु मेह-गइन्दें चडेंवि जस-लुद्धउ ।
उप्परि गिम्भ-णराहिवहों पाउस-राउ णाइँ सण्णद्धउ ॥ 9

28.2

जं पाउस-णरिन्दु गलगज्जिउ धूली-रउ गिम्भेण विसज्जिउ ॥ 1
गम्पिणु मेह-विन्दें आलग्गउ तडि-करवाल-पहारेंहिँ भग्गउ ॥ 2
जं विवरम्मुहु चलिउ विसालउ उट्ठिउ 'हणु' भणन्तु उण्हालउ ॥ 3
धगधगधगधगन्तु उद्धाइउ हसहसहसहसन्तु संपाइउ ॥ 4
जलजलजलजलजल पचलन्तउ जालावलि-फुलिङ्ग मेल्लन्तउ ॥ 5
धूमावलि-धयदण्डुब्भेंप्पिणु वर-वाउल्लि-खग्गु कड्ढेप्पिणु ॥ 6
झडझडझडझडन्तु पहरन्तउ तरुवर-रिउ-भड-थड भज्जन्तउ ॥ 7
मेह-महागय-घड विहडन्तउ जं उण्हालउ दिट्ठु भिडन्तउ ॥ 8

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

28.1

[1] जिस प्रकार युद्ध के क्षेत्र में सेना फैलती है (और) आकाश के क्षेत्र में जल-कणों का समूह फैलता है। [2] जिस प्रकार अज्ञान (-रूपी अँधेरी रात) का अन्धकार फैलता है, जिस प्रकार बहुत प्रकार का ज्ञान रखनेवाले की बुद्धि फैलती है (मजबूत होती है)। [3] जिस प्रकार अत्यन्त पापी का पाप फैलता है, जिस प्रकार अत्यन्त धार्मिक का धर्म फैलता है। [4] जिस प्रकार मृग को धारण करनेवाले (चन्द्रमा) का प्रकाश फैलता है, जिस प्रकार जिनदेव की महिमा फैलती है। [5] जिस प्रकार धन से रहित (व्यक्ति) की चिन्ता उभरती है, जिस प्रकार अत्यधिक शालीन का यश फैलता है। [6] जिस प्रकार देवों की तुरही का शब्द फैलता है, जिस प्रकार सूर्य की किरणें आकाश में फैलती हैं। [7] जिस प्रकार दावाग्नि (जंगल की आग) जंगल के अन्दर फैलती है, उसी प्रकार बादलों का समूह आकाश में फैला है। [8] बादल (समूह) गरजा (और) बिजली ने तड-तड किया (और) (पृथ्वी पर) पड़ी, (मानो) (वह) जानकी (और) राम की शरण में गई हो।

घत्ता—(सारा दृश्य ऐसा प्रतीत हो रहा था) मानो पावस (वर्षा ऋतु का) राजा (जो) यश का इच्छुक (है), (जिसका) हाथ इन्द्रधनुष को पकड़े हुए (है), (वह) मेघ-रूपी हाथी पर चढ़कर ग्रीष्म-राजा के ऊपर आक्रमण के लिए तैयार (हो)।

28.2

[1] जब पावस (वर्षा ऋतु का) राजा गरजा, (तो) ग्रीष्म द्वारा धूल-वेग (आंधी) भेजा गया। [2] (वह) (धूल) मेघ-समूह से जाकर चिपक गई, (फिर) बिजलीरूपी तलवार के प्रहारों से (वह) (धूल) छिन्न-भिन्न कर दी गई। [3] (इसके परिणामस्वरूप) जब (धूल) विमुख चली (तो) भयंकर ग्रीष्म ऋतु (पावस राजा को) 'मारो' कहती हुई उठी। [4] (और) खूब जलती हुई ऊँची दौड़ी (तथा) उत्तेजित होती हुई (पावस राजा की ओर) प्रवृत्त हुई। [5] और (उस ओर) कूच करती हुई तेजी से जली, (तब) (ऊष्ण) लपट की शृंखला से चिनगारियों को छोड़ते हुए (आगे चली)। [6] (और) जब ऊष्ण ऋतु धूम की शृंखला के ध्वजदण्डों को ऊँचा करके, तूफानरूपी श्रेष्ठ तलवार को खींचकर, [7] झपट मारते हुए (और) प्रहार करते हुए, श्रेष्ठ वृक्षोंरूपी शत्रु के योद्धा-समूह को नष्ट करते हुए, [8] मेघरूपी महा-हाथियों की टोली को खण्डित करते हुए (पावस राजा से) भिड़ती हुई दिखाई दी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घत्ता – धणु अप्फालिउ पाउसेँण तडि-टङ्कार-फार दरिसन्तें।
चोएँवि जलहर-हत्थि-हड णीर-सरासणि मुक्क तुरन्तें ।। 9

28.3

जल-वाणासणि-घायहिँ घाइउ गिम्भ-णराहिउ रणेँ विणिवाइउ ।। 1
दद्दुर रडेँवि लग्ग णं सज्जण णं णच्चन्ति मोर खल दुज्जण ।। 2
णं पूरन्ति सरिउ अक्कन्दें णं कइ किलिकिलन्ति आणन्दें ।। 3
णं परहुय विमुक्क उग्घोसें णं वरहिण लवन्ति परिओसें ।। 4
णं सरवर वहु-अंसु-जलोल्लिय णं गिरिवर हरिसें गञ्जोल्लिय ।। 5
णं उण्हविअ दवग्गि विओएं णं णच्चिय महि विविह-विणोएं ।। 6
णं अत्थमिउ दिवायरु दुक्खें णं पइसरइ रयणि सइँ सुक्खें ।। 7
रत्त-पत्त तरु पवणाकम्पिय 'केण वि वहिउ गिम्भु' णं जम्पिय ।। 8

घत्ता—तेहएँ कालेँ भयाउरएँ वेण्णि मि वासुएव-वलएव ।
तरुवर-मूलेँ स-सीय थिय जोगु लएविणु मुणिवर जेम ।। 9

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घत्ता—बिजली की टंकार और चमक दिखाते हुए पावस के द्वारा धनुष ताना गया (और) बादलरूपी हाथीघटा को प्रेरित करके (उसके द्वारा) जलरूपी तीर तुरन्त छोड़े गए।

28.3

[1] जलरूपी तीरों के प्रहारों से चोट पहुँचाया हुआ ग्रीष्म राजा युद्ध में (मारकर) (नीचे) गिरा दिया गया। [2] इसलिए मेंढक सज्जनों की तरह रोने लगे (और) शरारती मोर दुष्टों की तरह नाचे। [3] (ऐसा प्रतीत हो रहा था) मानो रोने के कारण नदियों ने (अपने को) (आँसूरूपी जल से) भरा हो (और) मानो (वर्षा से प्राप्त) आनन्द से कवि प्रसन्न हुए हों। [4] मानो कोयलें ऊँची आवाज में (बोलने के लिए) स्वतन्त्र की गई (हों) और मानो मोर संतोष से बोले हों। [5] मानो बड़े तालाब विपुल आँसूरूपी जल से भरे हुए (हों और) मानो बड़े पर्वत हर्ष से पुलकित (हों)। [6] मानो तप्त दावाग्नि के वियोग से धरती विविध विनोद के कारण नाची (हो)। [7] मानो दुःख के कारण सूर्य अस्त हुआ हो (और) मानो सुख के कारण रात स्वयं व्याप्त हो गई हो। [8] वृक्ष के पत्ते सुहावने हुए (और) पवन से हिले-डुले, मानो (उनके द्वारा) (यह) बोला गया (है) (कि) ग्रीष्म किसके द्वारा मारा गया।

घत्ता—उस जैसे भयातुर समय में दोनों ही राम और लक्ष्मण सीता-सहित (उस) (बड़े) वृक्ष के नीचे के भाग में योग-ग्रहण करके महामुनि की भाँति बैठ गये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ 4

पउमचरिउ

सन्धि–76

76.3

रुअइ विहीसणु सोयक्कमियउ 'तुहुँ णत्थमिउ वंसु अत्थमियउ ॥ 1
तुहुँ ण जिओऽसि सयलु जिउ तिहुअणु तुहुँ ण मुओऽसि मुअउ वन्दिय-जणु ॥ 2
तुहुँ पडिओऽसि ण पडिउ पुरन्दरु मउडु ण भग्गु भग्गु गिरि-मन्दरु ॥ 3
दिट्ठि ण णट्ठ णट्ठ लङ्काउरि वाय ण णट्ठ णट्ठ मन्दोयरि ॥ 4
हारु ण तुट्टु तुट्टु तारायणु हियउ ण भिण्णु भिण्णु गयणङ्गणु ॥ 5
चक्कु ण ढुक्कु ढुक्कु एक्कन्तरु आउ ण खुट्टु खुट्टु रयणायरु ॥ 6
जीउ ण गउ गउ आसा-पोट्टलु तुहुँ ण सुत्तु सुत्तउ महि-मण्डलु ॥ 7
सीय ण आणिय आणिय जमउरि हरि-वल कुद्ध ण कुद्धा केसरि ॥ 8

घत्ता—सुरवर-सण्ढ-वराइणा सयल-काल जे मिग सम्भूया ।
रावण पइँ सीहेण विणु ते वि अज्जु सच्छन्दीहूया' ॥ 9

76.7

दिट्ठु पुणो वि णाहु पिय-णारिहिँ सुत्तु मत्त-हत्थि व गणियारिहिँ ॥ 1
वाहिणिहिँ व सुक्कउ रयणायरु कमलिणिहिँ व अत्थवण-दिवायरु ॥ 2
कुमुइणिहि व्व जरढ-मयलञ्छणु विज्जुहि व्व छुडु छुडु वरिसिय-घणु ॥ 3

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ 4

पउमचरिउ

सन्धि–76

76.3

[1] शोक से युक्त विभीषण रोया (और) (बोला)—(हे भाई) तुम (ही) समाप्त नहीं हुए (हो), (किन्तु) (मानो) (सम्पूर्ण) वंश (ही) समाप्त हो गया (है)। [2] तुम (ही) नहीं जीते गए हो, (किन्तु) (मानो) सकल त्रिभुवन (ही) जीत लिया गया (हो)। तुम (ही) नहीं मरे हो, (किन्तु) (मानो) सम्मानित जन-समुदाय (ही) मर गया (हो)। [3] तुम (ही आहत होकर जमीन पर) नहीं पड़े हो, (किन्तु) (मानो) (वहाँ) इन्द्र (ही) पड़ा (है)। (तुम्हारा) मुकुट (ही) टुकड़े-टुकड़े नहीं किया गया है, (किन्तु) (मानो) सुमेरु पर्वत (ही) टुकड़े-टुकड़े कर दिया गया (हो)। [4] (तुम्हारी) विचार-पद्धति (ही) समाप्त नहीं हुई, (किन्तु) (मानो) लंकापुरी (ही) समाप्त हो गई। (तुम्हारी) वाणी (ही) नष्ट नहीं हुई, (किन्तु मानो) मन्दोदरी (ही) नष्ट हो गई। [5] (तुम्हारा) हार (ही) नहीं टूटा, (किन्तु) (मानो) तारागण (ही) टूट गए (हों), (तुम्हारा) (व्यापक) हृदय (ही) भंग नहीं किया गया (है) (किन्तु) (मानो) (व्यापक) आकाश-प्रदेश (ही) भंग कर दिया गया (है)। [6] (लक्ष्मण के पास तुम्हारा) चक्र (अस्त्रविशेष ही) नहीं आया (पहुँचा) (किन्तु) (तुम्हारे लिए) एक परिवर्तित दशा (मृत्यु) आ पहुँची। (तुम्हारी) (लंबी) आयु (ही) क्षीण नहीं हुई, (किन्तु) (विस्तृत) सागर (ही) क्षीण हो गया। [7] (तुम्हारा) जीवन (ही) विदा नहीं हुआ (किन्तु) (हमारी) आशाओं की पोटली (ही) विदा हो गई। तुम (ही) नहीं सोए, (किन्तु) (मानो) (सम्पूर्ण) पृथ्वी-मण्डल (जगत) सो गया। [8] (तुम्हारे द्वारा) सीता (ही) नहीं लाई गई, (किन्तु) (मानो) (तुम्हारे द्वारा) यमपुरी (ही) लाई गई (हो)। राम की सेना (ही) कुपित नहीं हुई, (किन्तु) (मानो) सिंह (ही) कुपित हुआ (हो)।

घत्ता—हे रावण ! बेचारे देवताओं के समूह द्वारा, जो सभी काल में (तुम्हारे समक्ष) हरिण (के समान) रहे, तेरे (जैसे) सिंह के बिना वे ही आज स्वच्छन्दी हुए।

76.7

[1] फिर प्रिय पत्नियों द्वारा पति देखा गया, जैसे हथिनियों के द्वारा सोया हुआ मतवाला हाथी (देखा गया) (हो)। [2] जैसे नदियों द्वारा सूखा हुआ समुद्र (देखा गया) (हो), जैसे कमलिनियों के द्वारा डूबने से (समाप्त हुआ) सूर्य (देखा गया हो)। [3] जैसे कुमुदिनियों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अमर-वहूहिँ व चवण-पुरन्दरु गिम्भ-दिसाहिँ व अञ्जण-महिहरु ॥ 4
भमरावलिहि म्व सूडिय-तरुवरु कलहंसीहि म्व अ-जलु महा-सरु ॥ 5
कलयण्ठीहि म्व माहव-णिग्गमु णाइणिहिँ व हय-गरुड-भुयङ्गमु ॥ 6
वहुल-पओसु व तारा-पन्तिहिँ तेम दसास-पासु ढुक्कन्तिहिँ ॥ 7
दस-सिरु दस-सेहरु दस-मउडउ गिरि व स-कन्दरु स-तरु स-कूडउ ॥ 8

घत्ता—एएँवि अवत्थ दसाणणहोँ 'हा हा सामि' भणन्तु स-वेयणु ।
अन्तेउरु मुच्छा-विहलु णिवडिउ महिहिँ झत्ति णिच्चेयणु ॥ 9

सन्धि–77

भाइ – विओएं जिह जिह करइ विहीसणु सोउ ।
तिह तिह दुक्खेंण रुवइ स-हरि-वल-वाणर-लोउ ॥

77.1

दुम्मणु दुम्मण-वयणउ अंसु-जलोल्लिय-णयणउ ।
ढुक्कु कइद्धय सत्थउ जहिँ रावणु पल्हत्थउ ॥ 1
तेण समाणु विणिग्गय-णामेंहिँ दिट्ठु दसाणणु लक्खण-रामेंहिँ ॥ 2
दिट्ठइँ स-मउड-सिरइँ पलोट्टइँ णाइँ स-केसराइँ कन्दोट्टइँ ॥ 3
दिट्ठइँ भालयलइँ पायडियइँ अद्धयन्द-विम्वाइँ व पडियइँ ॥ 4
दिट्ठइँ मणि-कुण्डलइँ स-तेयइँ णं खय-रवि-मण्डलइँ अणेयइँ ॥ 5
दिट्ठउ भउहउ भिउडि-करालउ णं पलयग्गि-सिहउ धूमालउ ॥ 6
दिट्ठइँ दीह-विसालइँ णेत्तइँ मिहुणा इव आमरणासत्तइँ ॥ 7
मुह-कुहरइँ दट्ठोट्ठइँ दिट्ठइँ जमकरणाइँ व जमहोँ अणिट्ठइँ ॥ 8
दिट्ठ महब्भुव भड-सन्दोहें णं पारोह मुक्क णग्गोहें ॥ 9

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के द्वारा क्षीण चन्द्रमा (देखा गया हो), जैसे बिजलियों द्वारा पुनः पुनः बरसा हुआ बादल (देखा गया हो)। [4] जैसे देवताओं की स्त्रियों द्वारा मरण को प्राप्त इन्द्र (देखा गया हो), जैसे ग्रीष्म में दिशाओं द्वारा (सूखे) वृक्षों से युक्त पर्वत (देखा गया हो)। [5] जैसे भँवरों की पंक्तियों द्वारा नाश को प्राप्त श्रेष्ठ वृक्ष (देखे गए) (हों), जैसे राज-हंसनियों द्वारा जलरहित बड़ा तालाब (देखा गया हो)। [6] जैसे कोकिलों द्वारा बसन्त ऋतु का (चला) जाना (देखा गया हो), जैसे नागिनियों द्वारा गरुड़ से मारा हुआ सर्प (देखा गया हो)। [7] जैसे तारों की पंक्तियों द्वारा दोषों से युक्त कृष्ण पक्ष (देखा गया हो), उसी प्रकार दसमुखवाले (रावण) के पास जाती हुई (रानियों) के द्वारा (दोषयुक्त) (पति) (देखा गया)। [8] (उसके) दस सिर, दस शिखा तथा दस मुकुट (थे) (मानो) पर्वत (ही) गुफा-सहित, वृक्ष–सहित (तथा) शिखर–सहित (हो)।

घत्ता – रावण की (ऐसी) अवस्था को देखकर पीड़ासहित हाय-हाय स्वामी कहते हुए अन्तःपुर (रानियों का समुदाय) मूर्च्छा से व्याकुल (हुआ) (और) शीघ्र (ही) पृथ्वी पर चेतना-रहित (होकर) गिरा।

सन्धि–77

भाई के वियोग से विभीषण जैसे-जैसे शोक करता, वैसे-वैसे राम–लक्ष्मण–सहित वानर जाति के लोग दुःख के कारण रोते।

77.1

[1] दुःखी मन और उदास मुखवाला (तथा) आँसू के जल से गीली हुई आँखोंवाला कपि (-चिह्न युक्त) ध्वज (लिये हुए) जन–समूह (वहाँ) पहुँचा जहाँ रावण मार गिराया गया (था)। (2) उस (समूह) के साथ (बाहर) फैले हुए नामवाले (विख्यात) राम और लक्ष्मण द्वारा (भी) (पड़ा हुआ) रावण देखा गया। [3] जमीन पर गिरे हुए (उसके) मुकुट–सहित सिर देखे गए, मानो पराग–सहित कमल (हों)। [4] (वहाँ) खुले हुए ललाट देखे गए, मानो पड़े हुए अर्द्धचन्द्र के प्रतिबिंब (हों)। [5] मणियों से (बने हुए) कान्तियुक्त–कुण्डल देखे गए, मानो गिरे हुए अनेक रवि–चक्र (हों)। [6] भौं के विकार से भयंकर (हुई) भौंहें देखी गईं, मानो (वे) धुएं के आश्रयवाली प्रलय की आग की ज्वालाएं (हों)। [7] (उसके) लंबे और चौड़े नेत्र देखे गए, मानो (वे) मृत्यु तक (आजीवन) आसक्त स्त्री-पुरुष के जोड़े (हों)। [8] (उसके) मुख–विवर (और) दाँतों से काटे गए होठ देखे गए, मानो (वे) यम के अप्रीतिकर मृत्यु के साधन (हों)। [9] योद्धाओं के समूह द्वारा (रावण की) महा–भुजाएँ देखी गईं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिट्ठ उर-त्थलु फाडिउ चक्कें दिण-मज्झु अ(?) मज्झत्थें अक्कें ।। 10
अवणियलु व विञ्झेण विहञ्जिउ णं विहिँ भाएँहिँ तिमिरु व पुञ्जिउ ।।11

घत्ता—पेक्खेंवि रामेँण समरङ्गणेँ रामण(हों) मुहाइँ ।
आलिङ्गेंप्पिणु धीरिउ 'रुवहि विहीसण काइँ ।। 12

77.2

सो मुउ जो मय-मत्तउ जीव-दया-परिचत्तउ ।
वय-चारित्त-विहूणउ दाण - रणङ्गणेँ दीणउ ।। 1
सरणाइय-वन्दिग्गहेँ गोग्गहेँ सामिहेँ अवसरेँ मित्त-परिग्गहेँ ।। 2
णिय-परिहवेँ पर-विहुरेँ ण जुज्जइ तेहउ पुरिसु विहीसण रुज्जइ ।। 3
अण्णु इ दुक्किय-कम्म-जणेरउ गरुअउ पाव-भारु जसु केरउ ।। 4
सव्वंसह वि सहेंवि ण सक्कइ अहों अण्णाउ मणन्ति ण थक्कइ ।। 5
वेवइ वाहिणि किं मइँ सोसहि धाहावइ खज्जन्ती ओसहि ।। 6
छिज्जमाण वणसइ उग्घोसइ कइयहुँ भरणु णिरासहों होसइ ।। 7
पवणु ण भिडइ भाणु कर खञ्चइ धणु राउल-चोरग्गिहुँ सञ्चइ ।। 8
विन्धइ कण्टेंहिँ व दुव्वयणेंहिँ विस-रुक्खु व मणिणज्जइ सयणेंहिँ ।। 9

घत्ता—धम्म-विहूणउ पाव-पिण्डु अणिहालिय-थामु ।
सो रोवेवउ जासु महिस-विस-मेसहिँ णामु ।। 10

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानो बड़ के पेड़ के द्वारा निकाली हुई (छोड़ी हुई) शाखाएँ (हों)। [10] चक्र के द्वारा फाड़ी हुई (दमकती) छाती देखी गई, मानो (आकाश के) मध्य में स्थित सूर्य के द्वारा दिन का बीच (दो बराबर के भाग) (हुए) 'हों)। [11] मानो विंध्य (पर्वत) के द्वारा पृथ्वी-तल विभक्त कर दिया गया (हो), मानो (पृथ्वी के) विविध भागों द्वारा अंधकार इकट्ठा किया गया (हो)।

घत्ता—युद्धस्थल में रावण के (पड़े हुए) मुखों को देखकर राम के द्वारा (विभीषण को) छाती से लगाकर धीरज बँधाया गया। (और) (कहा गया) (कि) हे विभीषण! (तुम) क्यों रोते हो?

77.2

[1] वह (ही) मरा हुआ (है), जो अहंकार के नशे में चूर (है) (तथा) (जिसके द्वारा) जीव-दया छोड़ दी गई (है)। (जो) व्रत और चारित्र से हीन है, (जो) दान और युद्ध-स्थल में भीरु (है)। [2] (जो) शरण में आए हुए के लिए, (दोषियों को) कैदी रूप में पकड़ने में, (गाय की चोरी होने पर) गाय के संरक्षण में, स्वामी के (कठिन) समय में, मित्र की सहायता में, निज का अपमान होने पर, (तथा) (जिसके द्वारा) दूसरे के दुःख में (काम में) नहीं लगा जाता है, हे विभीषण! वैसा पुरुष रोया जाता है। [4-7] अन्य भी (जो) पाप-कर्म का उत्पादक (है) (वह) (तथा) जिसके (जीवन में) पाप का बहुत भारी बोझ (है) (वह) (रोया जाता है) (जिसको) पृथ्वी भी सहने के लिए समर्थ नहीं है (वह भी) (जिस) अन्याय को कहती हुई नहीं थकती है, (जिसके कारण) नदी काँपती है, (और उसको कहती है) (कि) (तुम) (मेरा) (प्रयोग करके) मुझको क्यों सुखाते हो? (ऐसा व्यक्ति रोया जाता है) (जिसके कारण) खाई जाती हुई औषधि हाहाकार मचाती है, (अर्थात् दुःखी होती है), (जिसके कारण) काटी जाती हुई वनस्पति घोषणा करती है (ऊँची आवाज में कहती है) (कि) (ऐसे) दुष्ट चित्तवाले (व्यक्ति) का मरण कब होगा। [8] उस (पापी) के (साथ) (शीतल) पवन भी (बार-बार) भिड़ता है (और) सूर्य की (तप्त) किरणें (भी) (उसे) परास्त कर देती हैं। (वह) राजकुल के चोरों की स्तुति से धन इकट्ठा करता है। [9] (वह) (सभी को) दुर्वचनरूपी काँटों से बींध देता है। (वह) स्वजनों द्वारा विष-वृक्ष की तरह माना जाता है (ऐसा व्यक्ति रोया जाता है)।

घत्ता—(जो) धर्मरहित (है), (जो) पाप का पिण्ड (है), (जिसका) यहां निवास किया हुआ (अन्य) (कोई) स्थान नहीं है (जिसका कोई ठौर-ठिकाना नहीं है) जिसका नाम महिष, वृष और मेष (राशि) के द्वारा (कहा जाता है) वह रोया जाना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तं णिसुणेवि पहाणउ	भणइ विहीसण–राणउ।
'एत्तिउ रुग्रमि दसासहों	भरिउ भुवणु जं ग्रयसहों ॥ 1
एण सरीरें ग्रविणय–थाणें	दिट्ठ-णट्ठ–जल-विन्दु-समाणें ॥ 2
सुरचावेण व ग्रथिर–सहावें	तडि-फुरणेण व तक्खण-भावें ॥ 3
रम्भा–गब्भेण व णीसारें	पक्क-फलेण व सउणाहारें ॥ 4
तउ ण चिण्णु मण–तुरउ ण खञ्चिउ	मोक्खु ण साहिउ णाहु ण ग्रञ्चिउ ॥ 11
वउ ण धरिउ महु ण किउ णिवारिउ	ग्रप्पउ किउ तिण-समउ णिरारिउ' ॥ 12

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

77.4

[1] उसको सुनकर प्रधान राजा विभीषण ने कहा (कि) (चूंकि) दसमुखवाले (रावण) के द्वारा (यह) जगत अपयश से भर दिया गया है (इसलिए) (मैं) इतना रोता हूँ। [2] (प्राय:) देखा गया (है) (कि) जल-बिन्दु के समान (अस्थिर) तथा दोष के घर इस शरीर के द्वारा नाश को प्राप्त हुआ गया (है) (इतना तो मैं समझता हूँ)। [3] (और यह भी समझता हूँ) (कि) (शरीर) अस्थिर-स्वभाववाले इन्द्र-धनुष के समान है (और) शीघ्र (परिवर्तनशील) अवस्था होने से बिजली की चमक के समान है। [4] (तथा) (वह) केले के पेड़ के साररहित भीतर (के) (भाग) के समान है (तथा) पक्षियों के (प्रिय) भोजन पके फल के समान है। [11] (खेद है कि रावण के द्वारा) (इस शरीर से) तप नहीं किया गया, मनरूपी घोड़ा वश में नहीं किया गया, मोक्ष नहीं साधा गया (तथा) परमेश्वर नहीं पूजा गया। [12] (और भी) (मोक्ष प्राप्ति के लिए) व्रत धारण नहीं किया गया (तथा) (सबके द्वारा) रोका हुआ यह विनाश किया गया। (उसके द्वारा) निश्चय ही अपना (जीवन) तिनके के समान (तुच्छ) बनाया गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ-5

पउमचरिउ

सन्धि-83

83.2

घत्ता—'एत्तडउ दोसु पर रहुवइहेँ जं परमेसरि णाहिँ घरेँ।
म पमायहि लोयहुँ छन्देँण आणँवि का वि परिक्ख करेँ' ।। 9

83 3

तं णिसुणेवि चवइ रहुणन्दणु 'जाणमि सीयहेँ तणउ सइत्तणु ।। 1
जाणमि जिह हरि-वंसुप्पण्णी जाणमि जिह वय-गुण-संपण्णी ।। 2
जाणमि जिह जिण-सासणेँ भत्ती जाणमि जिह महु सोक्खुप्पत्ती ।। 3
जा अणु-गुण-सिक्खा-वय-धारी जा सम्मत्त-रयण-मणि-सारी ।। 4
जाणमि जिह सायर-गम्भीरी जाणमि जिह सुर-महिहर-धीरी ।। 5
जाणमि अंकुस-लवण-जणेरी जाणमि जिह सुय जणयहोँ केरी ।। 6
जाणमि सस भामण्डल-रायहोँ जाणमि सामिणि रज्जहोँ आयहोँ ।। 7
जाणमि जिह अन्तेउर-सारी जाणमि जिह महु पेसण-गारी ।। 8

घत्ता—मेल्लेप्पिणु णायर-लोएँण महु घरेँ उब्भा करेँवि कर।
जो दुज्जसु उप्परेँ घित्तउ एउ ण जाणहोँ एक्कु पर' ।। 9

83.4

तहिँ अवसरेँ रयणासव-जाएं कोक्किय तियड विहीसण-राएं ।। 1

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ-5

पउमचरिउ

सन्धि-83

83.2

घत्ता—किन्तु हे रघुपति ! इतना (ही) दोष है कि परमेश्वरी (सब ऐश्वर्य से सम्पन्न) (सीता) घर में नहीं है। आप लोगों के छल से न भटकें (गलत निर्णय न करें)। (आप) समझकर (जानकर) कोई भी परीक्षा करें।

83.3

[1] उसको सुनकर रघुनन्दन ने कहा—(मैं) सीता के सतीत्व को जानता हूँ। [2] जिस प्रकार (वह) हरिवंश में उत्पन्न हुई (है) (उसको) (मैं) जानता हूँ। जिस प्रकार व्रत और गुण से युक्त है (मैं) जानता हूँ। [3] जिस प्रकार (उसकी) जिन-शासन में भक्ति है (उसको) (मैं) जानता हूँ। जिस प्रकार (वह) मेरे लिए सुख की उत्पत्तिको (करती है, उसको) (मैं) जानता हूँ। [4] जो अणुव्रत, गुणव्रत व शिक्षाव्रतों को धारण करनेवाली है, जो सम्यक्त्वरूपी रत्नों और मणियों का सार है (उसको मैं जानता हूँ)। [5] जिस प्रकार (वह) सागर के समान गंभीर है, जानता हूँ। जिस प्रकार (वह) मेरुपर्वत के समान धैर्यवाली है (उसको) (मैं) जानता हूँ। [6] (मैं) लवण और अंकुश की माता को जानता हूँ। जानता हूँ, जिस प्रकार (वह) जनक की पुत्री है। [7] राजा भामण्डल की बहिन को जानता हूँ, (मैं) इस राज्य की स्वामिनी को जानता हूँ। [8] जिस प्रकार (वह) अन्तःपुर में श्रेष्ठ है, मैं जानता हूँ। जिस प्रकार (वह) मेरे लिए आज्ञा (पालन) करनेवाली है (मैं) जानता हूँ।

घत्ता – किन्तु नगर के लोगों द्वारा मिलकर मेरे लिए घर में हाथों को ऊँचे करके जो अपयश (मेरे) ऊपर डाला गया है, एक यह (ही) समझने (जानने) के लिए (मैं) (समर्थ) नहीं (हूँ)।

83.4

[1] उस अवसर पर रत्नाश्रव (से उत्पन्न) के पुत्र विभीषण राजा के द्वारा त्रिजटा

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

वोल्लाविय एत्तहेँ वि तुरन्तें   लङ्कासुन्दरि तो हणुवन्तें ।। 2
विण्णि वि विण्णवन्ति पणमन्तिउ   सीय-सइत्तण-गव्वु वहन्तिउ ।। 3
'देव देव जइ हुअवहु डज्झइ   जइ मारुउ पड-पोट्टलें वज्झइ ।। 4
जइ पायालें णहङ्गणु लोट्टइ   कालन्तरेंण कालु जइ तिट्ठइ ।। 5
जइ उप्पज्जइ मरणु कियन्तहोँ   जइ णासइ सासणु अरहन्तहोँ ।। 6
जइ अवरें उग्गमइ दिवायरु   मेरु-सिहरें जइ णिवसइ सायरु ।। 7
एउ असेसु वि सम्भाविज्जइ   सीयहेँ सीलु ण पुणु मइलिज्जइ ।। 8

घत्ता—जइ एव त्रि णउ पत्तिज्जहि तो परमेसर एउ करें ।
तुल-चाउल-विस-जल-जलणहँ पञ्चहँ एक्कु जि दिव्वु धरें' ।। 9

83.5

तं णिसुणेँवि रहुवइ परिओसिउ   'एव होउ' हक्कारउ पेसिउ ।। 1

घत्ता—'चडु पुप्फ-विमाणेँ भडारिएँ मिलु पुत्तहँ पइ-देवरहँ ।
सहुँ अच्छहिँ मज्झें परिट्ठिय पिहिमि जेम चउ-सायरहँ' ।। 9

83.6

तं णिसुणेँवि लवणंकुस-मायएँ   वुत्तु विहीसणु गग्गिर-वायएँ ।। 1
णिट्ठुर-हिययहोँ अ-लइय-णामहोँ   जाणमि तत्ति ण किज्जइ रामहोँ ।। 2
घल्लिय जेण रुवन्ति वणन्तरें   डाइणि-रक्खस-भूय-भयङ्करें ।। 3
जहिँ माणुसु जीवन्तु वि लुच्चइ   विहि कलि-कालु वि पाणहुँ मुच्चइ ।। 6
तहिँ वणेँ घल्लाविय अण्णाणेँ   एवहिँ किं तहोँ तणेण विमाणेँ ।। 7

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

बुलाई गई। [2] तब यहाँ पर हनुमान के द्वारा तुरन्त ही लङ्कासुन्दरी बुलवाई गई। [3] दोनों ही सीता के सतीत्व के गर्व को धारण करती हुई (और उसको) प्रणाम करती हुई कहती हैं। [4] हे देव ! हे देव ! यदि अग्नि जलाई जाती है, यदि कपड़े की पोटली में हवा बांधी जाती है। [5] यदि पाताल में आकाश लोटता है, यदि समय बीतने से काल नष्ट होता है। [6] यदि यमराज का मरण उत्पन्न होता है, यदि अरहन्त का शासन नष्ट होता है। [7] यदि सूर्य पश्चिम दिशा में उगता है, यदि पर्वत के शिखर पर सागर रहता है। [8] (तो) यह सब भी सोचा जा सकता है, (सम्भावना कराई जा सकती है) किन्तु सीता का शील (आचरण) मलिन नहीं किया जा सकता।

घत्ता—यदि इस प्रकार भी (तुमको) विश्वास नहीं होता तो हे परमेश्वर ! (आप) यह करें (कि) तिल–चावल–विष–जल–अग्नि इन पाँचों (परीक्षा) में से आरोप की शुद्धि के लिए की जानेवाली परीक्षा (के लिए) एक ही (वस्तु) को धारण करलें'।

83.5

[1] उस (बात) को सुनकर रघुपति सन्तुष्ट हुए। 'इसी प्रकार हो' (यह कहकर सीता को बुलाने के लिए) हरकारा भेजा गया।

घत्ता—'हे पूजनीया ! (आप) पुष्पक विमान पर (में) चढ़ें। (अपने) पुत्रों, पति और देवरों को मिलें। (आप) (उनके) साथ (इस प्रकार) रहें जिस प्रकार चारों सागरों के मध्य में पृथ्वी स्थित है'।

83.6

[1] उसको सुनकर लवण (और) अंकुश की माता के द्वारा भरी हुई वाणी से विभीषण (को) कहा गया। [2] 'निष्ठुरहृदय राम के नाम को मत लो, (उनको) (मैं) जानती हूँ, (उनके द्वारा) (मेरी) कोई तृप्ति नहीं की गई। [3] जिनके द्वारा डाकिनियों, राक्षसों और भूतोंवाले डरावने वन में (मैं) रोती हुई डालदी गई। [6] जहाँ पर जीता हुआ (जीवित) मनुष्य भी काट दिया जाता है, जहाँ विधाता और काल-रूपी शत्रु (मृत्यु) भी प्राणों से छुटकारा पा जाता है। [7] उस वन में (मैं) अज्ञान से (अज्ञान में) डलवा दी गई। अब उसके लिए विमान से क्या (लाभ है) ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घत्ता—जो तेण डाहु उप्पाइयउ पिसुणालाव–भरीसिएँण ।
सो दुक्करु उल्हाविज्जइ मेह–सएण वि वरिसिएँण ।। 8

83.8

ण भीय सइत्तण-गव्वें बलेंवि पवोल्लिय मच्छर-गव्वें ।। 7
'पुरिस णिहीण होन्ति गुणवन्त वि तियहँ ण पत्तिज्जन्ति मरन्त वि ।। 8

घत्ता—खडु लक्कडु सलिलु वहन्तियहँ पउराणियहँ कुलुग्गयहँ ।
रयणायरु खारइँ देन्तउ तो वि ण थक्कइ णम्मयहँ ।। 9

83.9

साणु ण केण वि जणेंण गणिज्जइ गङ्गा-णइहिँ तं जि ण्हाइज्जइ ।। 1
ससि स-कलंकु तहिँ जि पह णिम्मल कालउ मेहु तहिँ जें तडि उज्जल ।। 2
उवलु अपुज्जु ण केण वि छिप्पइ तहिँ जि पडिम चन्दणेंण विलिप्पइ ।। 3
धुज्जइ पाउ पंकु जइ लग्गइ कमल-माल पुणु जिणहों वलग्गइ ।। 4
दीवउ होइ सहावें कालउ वट्टि-सिहएँ मण्डिज्जइ आलउ ।। 5
णर-णारिहिँ एवड्डु अन्तरु मरणें वि वेल्लि ण मेल्लइ तरुवरु ।। 6
एँह पइँ कवण वोल्ल पारम्भिय सइ-वडाय मइँ अज्जु समुब्भिय ।। 7
तुहुँ पेक्खन्तु अच्छु वीसत्थउ डहउ जलणु जइ डहेंवि समत्थउ ।। 8

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घत्ता—ईर्ष्या से बोझिल (भरे हुए) चुगलखोरों के कथन (आलाप) से उसके द्वारा (राम के द्वारा) (मेरे मन में) जो संताप उत्पन्न किया गया है, वह सैकडों (बार) मेहों के बरसने से भी कठिनाई से शान्त किया जायगा।

83.8

[7] सतीत्व के गर्व के कारण सीता नहीं डरी, (सीता द्वारा) मुड़कर ईर्ष्या और गर्व से कहा गया (आक्रमण किया गया)। [8] 'पुरुष चाहे गुणवान हों अथवा तुच्छ किन्तु स्त्री के द्वारा चाहे (वह) मरती हुई (हो, तो भी) वे विश्वास किये जाते हैं।

घत्ता घास फूस (व) लकड़ी को बहाती हुई (ले जाती हुई) प्राचीन और पवित्र नर्मदा (नदी) का जल (समुद्र में गिरता है) तो भी समुद्र खार को देता हुआ नहीं थकता है।

83.9

[1] किसी (भी) जन के द्वारा कुत्ता आदर नहीं दिया जाता, (यदि) वह गंगा नदी में भी नहलाया जाय। [2] चन्द्रमा कलंकसहित (होता है) (किन्तु) उससे (उत्पन्न) प्रभा निर्मल (होती है)। मेघ काला (होता है) (पर) उससे (उत्पन्न) बिजली उज्ज्वल (होती है)। [3] पत्थर अपूज्य (होता है) (इसलिए) किसी के द्वारा भी छुआ नहीं जाता (तो भी) उससे ही (बनी हुई) प्रतिमा चन्दन से लीपी जाती है। [4] यदि कीचड़ लगता है, (तो) पाँव धोया जाता है, किन्तु (कीचड़ में उत्पन्न) कमल की माला जिनेन्द्र के (चरणों में) चढ़ती है। [5] दीपक स्वभाव से काला होता है, (तो भी) बत्ती की शिखा से घर सुशोभित किया जाता है। [6] नर और नारी में इतना (ही) अन्तर है कि मरने पर भी (नारी–रूपी) बेल (नर–रूपी) वृक्ष को नहीं छोड़ती है। [7] तुम्हारे द्वारा यह बोल किसलिए प्रारम्भ किया गया (है)। मेरे द्वारा आज भी सतीत्व की पताका भली प्रकार से ऊँची की गई है। [8] तुम देखते हुए (हो) (कि) मैं (आज भी) अत्यन्त विश्वास–युक्त (हूँ), यदि अग्नि जलाने के लिए समर्थ है (तो) जलावे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ – 6

महापुराण

सन्धि–16

16.3

घत्ता—थिउ चक्कु ण पुरवरि पइसरइ णावइ केण वि धरियउ ।।
ससिबिंबु व णहि तारायणहिं सुरवरेहिं परियरियउ ।। 13

16.4

ता भणियं णिराइणा रूढराइणा चंडवाउवेयं ।
किं थियमिह रहंगयं णिच्चलंगयं तरुणतरणितेयं ।। 1

तं णिसुणेप्पिणु भणइ पुरोहिउ जेणेयहु गइपसरु णिरोहिउ ।। 2
अक्खमि तं णिसुणहि परमेसर देवदेव दुज्जय भरहेसर ।। 3
भुयजुयबलपडिबलविद्दवणहं पयभरथिरमहियलकंपवणहं ।। 4
णेओहामियचंददिणेसहं जणणदिण्णमहिलच्छिविलासहं ।।5
कित्तिसत्तिजणमेत्तिसहायहं को पडिमल्लु एत्थु तुह भायहं ।। 6
सेव करंति ण णहभाईवइं णउ णवंति तुह पयराईवइं ।। 7
देंति ण करभरु केसरिकंधर पर भुंजंति वसुंधर ।। 8
अज्ज वि ते सिज्झंति ण जेण जि पइसइ पट्टणि चक्कु ण तेण जि ।। 9

16.7

ता विणया बहुयरा जणमणोहरा णिवकुमारवासं ।
दुमदलललियतोरणं रसियवारणं छिण्णभूमिवेसं ।। 1

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ–6

महापुराण

सन्धि–16

16.3

घत्ता—चक्र ठहर गया । श्रेष्ठ नगर में (उसने) प्रवेश नहीं किया, मानो (वह) किसी के द्वारा पकड़ लिया गया (हो) । श्रेष्ठ देवताओं के द्वारा घेरा गया (वह) (ऐसा लगता था) मानो आकाश में चन्द्रमण्डल तारागणों द्वारा (घेर लिया गया) (हो) ।

16.4

[1–2] तब निर्भय और प्रसिद्ध राजा (भरत) के द्वारा (यह) कहा गया (कि) प्रचण्ड वायु के वेगवाला, युवा सूर्य के तेजवाला (यह) दृढ़ अंगवाला चक्र यहाँ क्यों ठहरा (स्थिर हुआ) ? [3-4] उसको सुनकर (राज-) पुरोहित ने कहा (कि) जिस कारण से इस (चक्र) की गति का प्रवाह रोका गया (है) उसको (मैं) बताता हूँ—हे परमेश्वर ! हे देवों के देव ! हे दुर्जेय भरतेश्वर ! (आप) उसको सुनें । [5–6–7] (तुम्हारे भाइयों का) (जो) दोनों भुजाओं के बल से शत्रु की सेना का (विविध प्रकार से) दमन करनेवाले (हैं), (जो) स्थिर पृथ्वीतल को पैरों के भार से कँपानेवाले (हैं), (जिनके द्वारा) सूर्य और चन्द्रमा का तेज तिरस्कार किया गया (तिरस्कृत) (है), (जिनको) पृथ्वीरूपीलक्ष्मी पिता के द्वारा मनोविनोद के लिए दी गई (है), (तथा) कीर्ति, शक्ति और जनता से (उनकी) मित्रता (है) (और वे) (उनकी) सहायता के लिए (तत्पर हैं) । तुम्हारे (उन) भाइयों का यहाँ कौन जोड़वाला (प्रतिद्वन्द्वी) (है) । [8] (इसलिए) (वे) (तुम्हारी) सेवा नहीं करते हैं । तुम्हारे अत्यधिक कान्ति से (युक्त) नखवाले चरणरूपी कमलों को (वे) प्रणाम नहीं करते हैं । [9] (और भी) सिंह के समान गर्दनवाले (तुम्हारे) (भाई) कर की राशि भी नहीं देते हैं, किन्तु (वे) (इस प्रकार) बिना मूल्य के ही पृथ्वी को भोगते हैं । [10] जिस (उपर्युक्त) कारण (-समूह) से ही वे आज भी (सिद्ध नहीं हैं) जीते नहीं जाते हैं, उस कारण (-समूह) से ही चक्र नगर में प्रवेश नहीं करता है ।

16.7

[1–2] मनुष्यों के मन को हरनेवाला दूत (उन) राजपुत्रों के घर गया । (वह घर) वृक्ष-समूह से (निर्मित) सुन्दर तोरणवाला (था), घोड़े और हाथीवाला (था) और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेहिं भणिय ते विणउ करेप्पिणु सामिसालतणुरुह पणवेप्पिणु ।। 2
सुरणरविसहरभयइं जणेरी करहु केर णरणाहहु केरी ।। 3
पणवहु किं बहुएण पलावें पुहइ ण लब्भइ मिच्छागावें ।। 4
तं णिसुणेवि कुमारगणु घोसइ तो पणवहुं जइ वाहि ण दीसइ ।। 5
तो पणवहुं जइ सुसुइ कलेवरु तो पणवहुं जइ जीविउ सुंदरु ।। 6
तो पणवहुं जइ जरइ ण झिज्जइ तो पणवहुं जइ पुट्ठि ण भज्जइ ।। 7
तो पणवहुं जइ बलु णोहट्टइ तो पणवहुं जइ सुइ ण विहट्टइ ।। 8
तो पणवहुं जइ मयणु ण तुट्टइ तो पणवहुं जइ कालु ण खुट्टइ ।। 9
कंठि कयंतवासु ण चुहुट्टइ तो पणवहुं जइ रिद्धि ण तुट्टइ ।। 10

घत्ता --जइ जम्मजरामरणइं हरइ चउगइदुक्खु णिवारइ ।
तो पणवहुं तासु णरेसहो जइ संसारहु तारइ ।। 11

16.8

पुणरवि तेहिं गहिरयं सवणमहुरयं एरिसं पउत्तं ।
आणापसरधारणे धरणिकारणे पणविउं ण जुत्तं ।। 1
पिंडिखंडु महिखंडु महेप्पिणु किह पणविज्जइ माणु मुएप्पिणु ।। 2
वक्कलणिवसणु कंदरमंदिरु वणहलभोयणु वर तं सुंदरु ।। 3
वर दालिद्दु सरीरहु दंडणु णउ पुरिसहु अहिमाणविहंडणु ।। 4
परपयरयधूसर किंकरसरि असुहाविणि णं पाउससिरिहरि ।। 5
णिवपडिहारदंडसंघट्टणु को विसहइ करेण उरलोट्टणु ।। 6
को जोयइ मुहुं भूभंगालउ किं हरिसिउ किं रोसें कालउ ।। 7

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाँटी हुई जमीन के भागवाला (भाग में स्थित) (था)। [3] श्रेष्ठ स्वामी के पुत्रों को प्रणाम करके (और) (उनके प्रति) विनय करके उनके द्वारा (दूत के द्वारा) वे कहे गये। [4] (दूत ने कहा) तुम (सब) नरनाथ (राजा भरत) की (ऐसी) सेवा निश्चय ही करो (जो) देवताओं, मनुष्यों और धार्मिक (-जन) (में) भय को उत्पन्न करनेवाली (हो), [5] (तुम) (सब) (उनको) प्रणाम करो। बहुत प्रलाप (बकवास) से क्या लाभ (है)? मिथ्या गर्व से पृथ्वी प्राप्त नहीं की जाती है। [6] उसको सुनकर कुमारगण ने कहा—यदि (किसी के) व्याधि नहीं देखी जाती है तो (हम) (उसको) प्रणाम करते हैं। [7] यदि (किसी का) शरीर अत्यन्त पवित्र (है) तो (हम) (उसको) प्रणाम करते हैं। यदि (किसी का) जीवन सुन्दर (है) तो (हम) (उसको) प्रणाम करते हैं। [8] जो न जीर्ण होता है (न) क्षीण होता है तो (हम) (उसको) प्रणाम करते हैं। [9] यदि (किसी का) बल कम नहीं होता है तो (हम) (उसको) प्रणाम करते हैं। यदि (किसी की) पवित्रता नष्ट नहीं होती है तो (हम) (उसको) प्रणाम करते हैं। [10] यदि (किसी का) प्रेम खण्डित नहीं होता है तो (हम) (उसको) प्रणाम करते हैं। यदि (किसी की) उम्र क्षीण नहीं होती है तो (हम) (उसको) प्रणाम करते हैं। [11] यदि (किसी के) गले में यम का फन्दा नहीं चिपका है तो (हम) (उसको) (प्रणाम करते हैं), यदि किसी का वैभव नहीं घटता है तो (हम) (उसको) प्रणाम करते हैं।

घत्ता—यदि (कोई) जन्म-जरा और मरण का हरण करता है, (यदि) (कोई) चार गति के दुःख को दूर (नष्ट) करता है, यदि (कोई) संसार से पार लगाता है, तो (हम) उस राजा को प्रणाम करते हैं।

16.8

[1–2] फिर उनके द्वारा महत्वपूर्ण (और) सुनने में मधुर (शब्द) इस प्रकार कहे गये—आज्ञा-प्रसार (प्रसारित आज्ञा) के पालन करने के प्रयोजन से (और) पृथ्वी के निमित्त से प्रणाम करना (करने के लिए) उपयुक्त नहीं है। [3] (इस) शरीर को (और) भू-खण्ड/पृथ्वी को महत्व देकर (किन्तु) आत्म-सम्मान को छोड़कर (किसी को) क्यों प्रणाम किया जाए? [4] वृक्ष की छाल का वस्त्र, गुफा में घर, जंगल के फलों का भोजन श्रेष्ठ (तथा) अच्छा है। [5] निर्धनता (और) शरीर के लिए दंड देना श्रेष्ठ (है) (किन्तु) व्यक्ति के स्वाभिमान का खंडन (श्रेष्ठ) नहीं (है)। [6] सेवकरूपी नदी दूसरों के पैरों की धूल से पीले रंगवाली (हो जाती है) (इसलिए) असुन्दर (होती है) मानो (आत्म-सम्मानरूपी) वर्षा ऋतु की शोभा को हरनेवाली (हो)। [7] राजा के द्वारपालों के डंडों का संघर्षण (और) हाथ से छाती पर प्रहार कौन सहेगा? [8] (उस) (मुख को) कौन देखे (जो) बार-बार भौंहों की सिकुड़न का स्थान (है) क्या (वह) प्रसन्न हुआ (है) या क्या क्रोध से काला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पहु आसण्णु लहइ धिट्ठत्तणु पविरलदंसणु णिण्णेहत्तणु ॥ 8
मोणें जडु भडु खंतिइ कायरु अज्जवु पसु पंडियउ पलाविरु ॥ 9
अमुणियहियियचारुगरुयत्तें कलहसीलु मण्णइ सुहडत्तें ॥ 10
महुरपयंपिरु चाडुयगारउ केम वि गुणि ण होइ सेवारउ ॥ 11

16.9

अहवा तेहिं किं हुयं जं समागयं दुल्लहं णरत्तं ।
तं जो विसयविसरसे घिवइ परवसे तस्स किं बुहत्तं ॥ 1

कंचणकंडें जंबुउ विंधइ मोत्तियदामें मंकडु बंधइ ॥ 2
खीलयकारणि देउलु मोडइ सुत्तणिमित्तु दित्तु मणि फोडइ ॥ 3
कप्पूरायररुक्खु णिसुंभइ कोद्दवछेत्तहु वइ पारंभइ ॥ 4
तिलखलु पयइ डहिवि चंदणतरु विसु गेण्हइ सप्पहु ढोयवि करु ॥ 5
पीयइं कसणइं लोहियसुक्कइं तक्कें विक्कइ सो माणिक्कइं ॥ 6
जो मणुयत्तणु भोएं णासइ तेण समाणु हीणु को सीसइ ॥ 7
चित्तु समत्तणि णेय णियत्तइ पुत्तु कलत्तु वित्तु संचितइ ॥ 8
मरइ रसणफंसणरसदड्ढउ मे मे मे करंतु जिह मेंढउ ॥ 9
खज्जइ पलयकालसद्दूलें डज्झइ दुक्खहुयासणजालें ॥ 10
मंजरु कुंजरु महिसउ मंडलु होइ जीव मक्कडु माहुंडलु ॥ 11

घत्ता—केलासहु जाइवि तवयरणु ताएं भासिउ किज्जइ ।
जेणेह सुदूसहतावयरि संसारिणि तिस छिज्जइ ॥ 12

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(हुआ) (है) ? [9] (जो) राजा के समीप (स्थित) (रहता है), (वह) ढीठता/निर्लज्जता को पाता है, (जो) (राजा का) बहुत थोड़ा दर्शन करनेवाला (होता है) (वह) स्नेहरहितता को (प्राप्त होता है/पाता है)। [10] मौन के कारण वीर आलसी (कहा जाता है), क्षमा के कारण (वीर) कायर (कहा जाता है), सरलता पशु का (चिह्न मानी जाती है), बकवास करनेवाला पण्डित (कहा जाता है)। [11] सुन्दर व महान् (किन्तु) हृदय में न समझे हुए (नासमझ) के द्वारा योद्धापन के कारण (व्यक्ति) कलहकारी कहा जाता है। [12] (राजा से) मधुर बोलनेवाला खुशामदी (कहा जाता है)। सेवा (चाकरी) में लीन (व्यक्ति) किसी प्रकार भी गुणी नहीं होता है।

16.9

[1] अथवा (जिसके द्वारा) प्राप्त दुर्लभ मनुष्यत्व नष्ट किया गया (है), उससे क्या (लाभ है) ? तो जो विषयरूपी विष के रस में (अपने को) डालता है, (वह) दूसरे के वश में (होता है), उसकी क्या विद्वता (है) ? [2] (वह ऐसा व्यक्ति है) (जो) सोने के तीर से सियार को आहत करता है, (जो) मोती की रस्सी से बंदर को बाँधता है। [3] (जो) खम्भे के प्रयोजन से देव-मन्दिर को तोड़ता है, (जो) सूत के निमित्त (माला में पिरोये हुए) दीप्त मणि को फोड़ता है। [4] (जो) कपूर के श्रेष्ठ वृक्ष को नष्ट करता है (और) (उससे) कोदों के खेत की बाड़ बनाता है। [5] (जो) चन्दन के वृक्ष को जलाकर (उससे) तिलों की खल को पकाता है (और) (जो) हाथ में सर्प को ढोकर विष ग्रहण करता है। [6] वह पीले, काले, लाल और सफेद माणिक्यों को छाछ के प्रयोजन से बेचता है। [7] जो मनुष्यत्व को भोग के प्रयोजन से नष्ट करता है, उसके समान हीन कौन कहा जाता है ? [8] (जो) समत्व में चित्त को नहीं लगाता है (और) पुत्र, पत्नी और धन की अत्यन्त चिन्ता करता है। [9] (जो) जिह्वा और स्पर्शन इन्द्रियों के रस से सताया हुआ मरता है, जिस प्रकार मेढा मे-मे (शब्द) करता हुआ (मरता) है। [10] (जो) प्रलयकालरूपी बाघ (सिंह) के द्वारा खाया जाता है (तथा) दुःखरूपी अग्नि की ज्वाला के द्वारा जलाया जाता है। [11] (ऐसा) जीव बिलाव, हाथी, भैंसा, कुत्ता, बन्दर और सर्प होता है।

घत्ता—जिसके द्वारा कैलाश पर्वत पर जाकर पिता के द्वारा बताया हुआ तप का आचरण (यदि) किया जाता है (तो)(उस) संसारी जीव के द्वारा यहाँ अत्यन्त दुसह्य-दुःखकारी प्यास छेदी जाती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महापुराण

सन्धि–16

16.11

ता पत्तो चरो पुरं णिवइणो घरं भणइ सुण सुराया।
इसिणो तुह सहोयरा सीलसायरा अज्जु देव जाया ।। 1
एक्कु जि पर बाहुबलि सुदुम्मइ णउ तउ करइ ण तुम्हहं पणवइ ।। 2

16.19

जं दिण्णं महेसिणा दुरियणासिणा णयरदेसमेत्तं।
तं मह लिहियसासणं कुलविहूसणं हरइ को पहुत्तं ।। 1
केसरिकेसरु वरसइथणयलु सुहडहु सरणु मज्झु धरणीयलु ।। 2
जो हत्थेण छिवइ सो केहउ किं कयंतु कालाणलु जेहउ ।। 3
हउं सो पणवमि को सो भण्णइ महिखंडेण कवण परमुण्णइ ।। 4
किं जम्मणि देवहिं अहिसिंचिउ किं मंदरगिरिसिहरि समच्चिउ ।। 5
किं तहु अग्गइ सुरवइ णच्चिउ सिरिसइरिणियइ किं रोमंचिउ ।। 6
चक्कु दंडु तं तासु जि सारउ महु पुणु णं कुंभारहु केरउ ।। 7
करिसूयररहवरडिंभयरहं णर णिहणमि रणि जे वि महारह ।। 8
भरहु हरइ किं मज्झु भुयाभरु तइ चुक्कइ जइ सुमरइ जिणवरु ।। 9

घत्ता—तहु मेइणि महु पोयणणयरु आइजिणिंदें दिण्णउं।
अब्भिडउ पडउ असि सिहिसिहहिं जइ ण सरइ पडिपवण्णउं ।। 10

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ-7

महापुराण

सन्धि-16

16.11

[1] तो दूत पहले राजा के घर पहुँचा (और) बोला—हे श्रेष्ठ राजन ! (आप) सुनो। हे देव ! शील के सागर तुम्हारे भाई आज (ही) मुनि हो गये हैं। [2] किन्तु एक बाहुबलि ही अत्यन्त दुर्मति (है) (जो) न तप करता है (और) न तुमको प्रणाम करता है।

16.19

[1] जो पाप के नाशक महर्षि (ऋषभ) के द्वारा (मेरे लिए) केवल (कुछ) नगर और देश दिए गए हैं, वह मेरे लिए लिखित आदेश (है); (तथा) (वह) (मेरे) कुल की शोभा (है)।(उस) प्रभुता को कौन छीनता (छीन सकता) है। [2-3] जो (व्यक्ति) सिंह के बाल को, श्रेष्ठ सती के वक्षस्थल को, सुभट की शरण को तथा मेरी जमीन को हाथ से छूता है, क्या (तुम समझते हो) वह कैसा (होता है) ? (वह ऐसा ही होता है) जैसा यम और कालरूपी अग्नि (होती है)। [4] वह कौन (है) (जो) मैं उसको प्रणाम करूँ ? पृथ्वी खंड के कारण किसकी परम उन्नति कही जाती है ? [5]क्या(वह)जन्म पर देवताओं के द्वारा अभिषेक किया गया ? क्या (वह) सुमेरु पर्वत के शिखर पर पूजा गया ? [6] क्या उसके आगे इन्द्र नाचा (है) ? अरे ! (वह) स्वेच्छाचारिणी लक्ष्मी के द्वारा क्यों पुलकित (है) ? [7] वह चक्र और दण्ड उसके लिए ही महत्वपूर्ण (मूल्यवान) है, किन्तु मेरे लिए (तो) वह कुम्हार का (चक्र) (है)। [8] हाथीरूपी सूअरों पर, श्रेष्ठ रथों पर तथा छोटे रथ (-समूह) पर जो भी योद्धा मनुष्य (हैं) (उनको) मैं रण में मारूँगा। (नष्ट करूँगा)। [9] भरत मेरे भुजा-बल को क्या हरेगा ? यदि (वह) जिनवर का स्मरण करता है, तभी (वह) बच निकलेगा।

घत्ता—तुम्हारी पृथ्वी और मेरा पोदनपुर नगर आदिजिनेन्द्र के द्वारा दिए हुए (हैं)। यदि (वह) स्वीकार किये हुए (विभाजन) को नहीं मानता है, (तो) (मेरी) तलवार को मिले (और) अग्नि की ज्वाला में पड़े।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

16.20

ता दूएण जंपियं किं सुविप्पियं भणसि भो कुमारा।
वाणा भरहपेसिया पिंछभूसिया होंति दुण्णिवारा ।। 1

पत्थरेण किं मेरु दलिज्जइ किं खरेण मायंगु खलिज्जइ ।। 2
खज्जोएं रवि णित्तेइज्जइ किं घुट्टेण जलहि सोसिज्जइ ।। 3
गोप्पएण किं णहु माणिज्जइ अण्णाणें किं जिणु जाणिज्जइ ।। 4
वायसेण किं गरुडु णिरुज्झइ णवकमलेण कुलिसु किं विज्झइ ।। 5
करिणा किं मयारि मारिज्जइ किं वसहेण वग्घु दारिज्जइ ।। 6
किं हंसें ससंकु धवलिज्जइ किं मणुएण कालु कवलिज्जइ ।। 7
डेंडुहेण किं सप्पु डसिज्जइ किं कम्मेण सिद्धु वसि किज्जइ ।। 8
किं णीसासें लोउ णिहिप्पइ किं पइं भरहणराहिउ जिप्पइ ।। 9

घत्ता—हो होउ पहुप्पइ जंपिएण राउ तुहुप्परि वग्गइ।
करवालहिं सूलहिं सव्वलहिं परइ रणंगणि लग्गइ ।। 10

16.21

ता भणियं सहेउणा मयरकेउणा एत्थ कहि मि जाया।
जे परदविणहारिणो कलहकारिणो ते जयम्मि राया ।। 1

वुड्ढउ जंबुउ सिव सद्दिज्जइ एण णाइं महु हासउ दिज्जइ ।। 2
जो बलवंतु चोरु सो राणउ णिब्बलु पुणु किज्जइ णिप्पाणउ ।। 3
हिप्पइ मृगहु मृगेण जि आमिसु हिप्पइ मणुयहु मणुएण जि वसु ।। 4
रक्खाकंखइ जूहु रएप्पिणु एक्कहु केरि आण लएप्पिणु ।। 5
ते णिवसंति तिलोइगविट्ठउ सीहहु केरउ वंदु ण दिट्ठउ ।। 6
माणभंगि वर मरणु ण जीविउ एहउ दूय सुट्ठु मइं भाविउं ।। 7
आवउ भाउ घाउ तहु दंसमि संझाराउ व खणि विद्धंसमि ।। 8
सिंहसिहाहं देविंदु वि ण सहइ महु मणसियहु विसिह को विसहइ ।। 9
एक्कु जि परउव्वारु णरिंदहु जइ पइसरइ सरणु जिणयंदहु ।। 10

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

16.20

[1] तब दूत के द्वारा (यह) कहा गया—हे कुमार ! (आप) क्या अप्रिय (वचन) कहते हो । भरत के द्वारा भेजे हुए पंख से विभूषित बाण कठिनाईपूर्वक हटाये जानेवाले होते हैं । [2] क्या पत्थर से मेरु (पर्वत) टुकड़े-टुकड़े किया जाता है ? क्या गधे के द्वारा हाथी गिराया जाता है ? [3] जुगनू द्वारा क्या सूर्य तेजरहित किया जाता है ? घूंट के द्वारा क्या समुद्र सुखाया जाता है ? [4] गौ के पैर के द्वारा क्या आकाश मापा जाता है ? अज्ञान के द्वारा क्या जिनेन्द्र समझा जाता है ? [5] कौए के द्वारा क्या गरुड़ रोका जाता है ? नूतन कमल के द्वारा क्या वज्र बेधा जाता है ? [6] हाथी के द्वारा क्या सिंह मारा जाता है ? बैल के द्वारा क्या शेर चीरा जाता है ? [7] क्या धोबी के द्वारा चन्द्रमा सफेद किया जाता है ? क्या मनुष्य के द्वारा काल निगला जाता है ? [8] क्या मेंढक के द्वारा सांप काटा जाता है ? क्या कर्म के द्वारा सिद्ध वश में किया जाता है ? [9] क्या श्वास से लोक स्थापित किया जाता है ? क्या तुम्हारे द्वारा भरत-नराधिप जीता जाता है ?

घत्ता—आश्चर्य ! (कोई) प्रलाप किया हुआ होने के कारण समर्थ होता है (तो) होवे । राजा (भरत) तलवारों के साथ, त्रिशूलों के साथ, बर्छों के साथ निकटवर्ती रण के आँगन में भ्रमण करेगा और तुम्हारे ऊपर चौकड़ी भरेगा ।

16.21

[1] तब कामदेव के द्वारा युक्तिसहित (यह) कहा गया—जो परद्रव्य को हरनेवाला (है), कलहकारी (है), वे जगत में यहाँ या कहीं भी राजा हुए (हैं) ? [2] (वह) (भरत) बूढ़ा सियार (है) (जिसके द्वारा) (अब भी) समृद्धि बुलाई जाती है । इससे मानो मेरे लिए हँसी दी जाती है । [3] जो बलवान चोर (है) वह राजा (होता है), फिर निर्बल (व्यक्ति) निष्प्राण किया जाता है । [4] पशु के द्वारा पशु का माँस ही छीना जाता है । मनुष्य के द्वारा मनुष्य का प्रभुत्व ही छीना जाता है । [5-6] रक्षा की इच्छा से व्यूह रचकर, एक की आज्ञा लेकर वे (राजा) निवास करते हैं । त्रिलोक में खोज किया हुआ (है) (कि) सिंह का समूह नहीं देखा गया (है) । [7] मान के भंग होने पर मरण श्रेष्ठ (है), जीवन नहीं । हे दूत ! ऐसा मेरे द्वारा सचमुच विचारा गया (है) । [8] भाई आवे, (मैं) उसके घात को दिखलाऊँगा । सन्ध्याराग की तरह एक क्षण में नष्ट कर दूँगा । [9] अग्नि की ज्वालाओं को देवेन्द्र भी नहीं सह सकता है, (तो) मुझ कामदेव के बाणों को कौन सहेगा ? [10] राजा की परम भलाई एक (इसमें) ही है यदि (राजा) जिनदेव की शरण को चला जाये ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घत्ता—संघट्टमि लुट्टमि गयघडहु दलमि सुहड रणमग्गइ ।
पहु आवउ दावउ बाहुबलु महु बाहुबलहि अग्गइ ।। 11

16.22

ता दूउ विणिग्गओ णियपुरं गओ तम्मि णिवणिवासं ।
सो विण्णवइ सायरं सारसायरं पणविउं महीसं ।। 1

विसमु देव बाहुबलि णरेसरु णेहु ण संधइ संधइ गुणि सरु ।। 2
कज्जु ण बंधइ बंधइ परियरु संधि ण इच्छइ इच्छइ संगरु ।। 3
पइं णउ पेच्छइ पेच्छइ भुयबलु आण ण पालइ पालइ णियछलु ।। 4
माणु ण छंडइ छंडइ भयरसु दयवु ण चिंतइ चिंतइ पोरिसु ।। 5
संति ण मण्णइ मण्णइ कुलकलि पुहइ ण देइ देइ वाणावलि ।। 6
तुज्झु ण णवइ णवइ मुणितंडउ अंगु ण कड्ढइ कड्ढइ खंडउ ।। 7
देव ण देइ भाइ तुह पोयणु पर जाणमि देसइ रणभोयणु ।। 8
ढोयइ रयणइं णउ करिरयणइं ढोएसइ ध्रुवु णरउररयणइं ।। 9

घत्ता—संताणु कुलक्कमु गुरुकहिउ खत्तधम्मु णउ वुज्झइ ।
मज्जायविवज्जिउ सामरिसु अवसें दाइउ जुज्झइ ।। 10

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घत्ता—(मैं) गजसमूह को लूटूंगा, मारूँगा (और) योद्धाओं को रण-पथ में चूर-चूर करूँगा। राजा आवे, (अपने) बाहुबल को मुझ बाहुबलि के आगे दिखाए।

16.22

[1] तब दूत निज-नगर को गया और उस (नगर) में राजा के घर गया। (उसके द्वारा) बलरूपी सागर, पृथ्वी का ईश आदर-सहित प्रणाम किया गया। उसने (राजा को) कहा—[2] हे देव! हे नरेश्वर! बाहुबलि खतरनाक (है) (वह) स्नेह नहीं रखता है, (किन्तु) धनुष की डोरी पर बाण रखता है। [3] (वह) कार्य नहीं करता (पर) कमर कसता है। (वह) संधि नहीं चाहता है, (पर) युद्ध चाहता है। [4] (वह) तुमको नहीं देखता है, (अपनी) भुजाओं के बल को देखता है। (वह) (तुम्हारी) आज्ञा को नहीं पालता है, किन्तु अपनी दलील को पालता है। [5] (वह) स्वाभिमान नहीं छोड़ता है, भय का भाव छोड़ता है। (वह) प्रारब्ध को नहीं विचारता है, (किन्तु) पुरुषार्थ को विचारता है। [6] (वह) शान्ति नहीं विचारता है, कुटुम्ब का झगड़ा विचारता है। (वह) पृथिवी नहीं देता है, (किन्तु) बाणों की पंक्ति देता है। [7] (वह) तुमको प्रणाम नहीं करता है, मुनिसमूह को प्रणाम करता है। (वह) अंग को नहीं खींचता है (किन्तु) तलवारों को खींचता है। [8] हे देव! भाई तुम्हें पोदनपुर नहीं देगा। किन्तु (मैं) जानता हूँ (वह) (तुम्हें) रणरूपी भोजन देगा। [9] (वह) रत्नों और हाथीरूपी रत्नों को (तुमको) भेंट नहीं करेगा। (वह) निश्चितरूप से मनुष्य के छातीरूपी रत्नों को भेंट करेगा।

घत्ता—(वह) वंश, कुलाचार, गुरु के द्वारा कथित क्षत्रियधर्म को नहीं समझता है। (वह) मर्यादारहित, ईर्ष्यालु, समानगोत्रीय (भाई) अवश्य ही युद्ध करेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ—8

महापुराण

सन्धि–17

17.7

घत्ता—छुडु छुडु कारणि वसुमइहि सेण्णइं जाम हणंति परोप्परु ।
अंतरि ताम पइट्ठ तहिं मंति चवंति समुब्भिवि णियकरु ।।

17.8

बिहिं बलहं मज्झि जो मुयइ बाणु	तहु होसइ रिसहहु तणिय आणु	।। 1
तं णिसुणिवि सेण्णइं सारियाइं	चडियइं चावइं उत्तारियाइं	।। 2
तं णिसुणिवि रहसाऊरियाइं	वज्जंतइं तूरइं वारियाइं	।। 3
तं णिसुणिवि धारापहसियाइं	करवालइं कोसि णिवेसियाइं	।। 4
तं णिसुणिवि णिद्धंगइं घणाइं	णिम्मुक्कइं कवयणिबंधणाइं	।। 5
तं णिसुणिवि मय-मायंग रुद्ध	पडिगयवरगंधालुद्ध कुद्ध	।। 6
तं णिसुणिवि मच्छरभावभरिय	हरि फुरुहुरंत धावंत धरिय	।। 7
रह खंचिय कड्ढिय पग्गहोह	वारिय विधंत अणेय जोह	।। 8

17.9

पणमियसिरेहिं मउलियकरेहिं	बाहुबलि भरहु महुरक्खरेहिं	।। 1
उग्गमियरोसपसमंतएहिं	विण्णि वि विण्णविय महंतएहिं	।। 2
तुम्हइं विण्णि वि जण चरमदेह	तुम्हइं विण्णि वि जयलच्छिगेह	।। 3
तुम्हइं विण्णि वि अखलियपयाव	तुम्हइं विण्णि वि गंभीरराव	।। 4
तुम्हइं विण्णि वि जगधरणथाम	तुम्हइं विण्णि वि रामाहिराम	।। 5
तुम्हइं विण्णि वि सुरहं भि पयंड	महिमहिलहि केरा बाहुदंड	।। 6
तुम्हइं विण्णि वि णिवणायकुसल	णियतायपायपंकरुहभसल	।। 7

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ–8

महापुराण

सन्धि–17

17.7

घत्ता—अति शीघ्र ही धरती के प्रयोजन से ज्यों ही सेनाएँ एक दूसरे पर प्रहार करती हैं, त्यों ही वहाँ बीच में मन्त्री प्रविष्ट हुए और (उन्होंने) अपना हाथ ऊँचा करके कहा।

17.8

[1] दोनों सेनाओं के बीच में जो बाण छोड़ेगा, उस के लिए ऋषभदेव की सौगन्ध होगी। [2] उस (बात) को सुनकर सेनाएँ हटाई गईं, चढ़े हुए धनुष उतारे गए। [3] उस (बात) को सुनकर वेग से भरी हुई (तथा) बजती हुई तुरहियाँ रोकी गईं। [4] उस (बात) को सुनकर धारों का उपहास की हुई तलवारें म्यान में रखदी गईं। [5] उस (बात) को सुनकर घने (और) कान्ति-युक्त घटकवाले कवचों के बन्धन खोल दिए गए। [6] उस (बात) को सुनकर प्रतिपक्षी (हाथियों की) श्रेष्ठ गन्ध के इच्छुक क्रुद्ध, मदवाले हाथी रोक लिए गए। [7] उस (बात) को सुनकर ईर्ष्याभाव से भरे हुए, थरथराते हुए और दौड़ते हुए घोड़े पकड़ लिए गए। [8] रथ खींच लिए गए, लगामें (भी) खींच ली गईं, बेधते हुए अनेक योद्धा रोक दिए गए।

17.9

[1–2] संकुचित किए हुए हाथों से (और) सिरों से प्रणाम करके, मधुर शब्दों से, उत्पन्न हुए क्रोध को शान्त करते हुए मन्त्रियों द्वारा भरत और बाहुबलि दोनों ही कहे गये— [3] आप दोनों ही मनुष्य अन्तिम देहवाले (हैं), आप दोनों ही विजयरूपी लक्ष्मी के घर (हैं)। [4] आप दोनों ही अबाधित प्रतापवाले (हैं), आप दोनों ही गम्भीर वाणीवाले (हैं)। [5] आप दोनों ही जगत को धारण करने की शक्तिवाले हो, आप दोनों ही स्त्रियों के लिए आकर्षक हो। [6] आप दोनों ही देवताओं के लिए भी प्रचण्ड (भयंकर) (हो), (तथा) पृथ्वी-रूपी महिला की लम्बी भुजाएं (हो)। [7] आप दोनों ही राजनीति में कुशल (हो)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुम्हइं विण्णि वि जण जणहु चक्खु इच्छहु अम्हारउ धम्मपक्खु ॥ 8
खरपहरणधारादारिएण किं किंकरणियरें मारिएण ॥ 9
किर काइं वराएं दंडिएण सीमंतिणिसत्थें रंडिएण ॥ 10
दोहं मि केरा मज्झत्थ होवि आउहु मेल्लिवि खमभाउ लेवि ॥ 11

घत्ता—अवलोयंतु धराहिवइ एत्तिउ किज्जउ सुत्तु सुजुत्तउ ।
तुम्हहं दोहं मि होउ रणु तिविहु धम्मणाएण णिउत्तउ ॥ 12

17.10

पहिलउ अवरोप्परु दिट्ठि धरहु मा पत्तलपत्तणचलणु करहु ॥ 1
बीयउ हंसावलिमाणिएण अवरोप्परु सिंचहु पाणिएण ॥ 2
जुज्झहु विण्णि वि णिवमल्ल ताम एक्केण तुलिज्जइ एक्कु जाम ॥ 4
अवरोप्परु जिणिवि परक्कमेण गेण्हहु कुलहरसिरि विक्कमेण ॥ 5
तणुसोहाहसियपुरंदरेहिं ता चिंतिउ दोहिं मि सुंदरेहिं ॥ 6
किं दूहवियहि णवजोव्वणेण किं फलिएण वि कडुएं वणेण ॥ 7

घत्ता—जे ण करंति सुहासियइं मंतिहिं भासियाइं णयवयणइं ।
ताहं णरिंदहं रिद्धि कओ कहिं सीहासणछत्तइं रयणइं ॥ 10

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आप दोनों ही निज पिता के चरणरूपी कमलों के भौंरे (हैं)। [8] आप दोनों ही जन-जन के चक्षु (हैं), (आप) हमारे धर्म-पक्ष को चाहें। [9] प्रखर आयुधों की धार से विदारित (और) मारे गए अनुचर-समूह से क्या (लाभ) (है)? [10] सजा दिए हुए (उन) बेचारों से (आपका) क्या (लाभ)? विधवा किए हुए नारी-समूह से (आपको) (क्या) (लाभ)? [11] (आप) दोनों (सेनाओं) के ही मध्य-स्थित होकर आयुध छोड़कर क्षमा-भाव को धारण करके (रहें)।

घत्ता—उपयुक्त और भली प्रकार कहे हुए को समझते हुए हे राजन्! इतना किया जाए—तुम दोनों में ही धर्म और न्याय से निर्धारित तीन प्रकार का युद्ध हो।

17.10

[1] पहले (आप) एक-दूसरे पर दृष्टि डालो (और उसमें) पलकों के बालरूपी बाणों के अग्रभाग का हलन-चलन मत करो। [2] दूसरा, हंस की कतारों से सम्मानित पानी द्वारा एक-दूसरे के विरुद्ध छिड़काव करो।[4] (उसी प्रकार) (आप) दोनों ही राजारूपी पहलवान तब तक युद्ध करें जब तक एक के द्वारा एक उठा (नहीं) लिया जाता है। [5] (अपनी) शूरवीरता से एक-दूसरे को जीतकर (अपने) सामर्थ्य से पितृ-गृह के वैभव को ग्रहण करें। [6] (जिनके द्वारा) शरीर की शोभा के कारण इन्द्र का उपहास किया गया (है), (उन) दोनों सुन्दर (राजाओं) द्वारा भी उस समय विचारा गया। [7] दुःखी करनेवाले नव-यौवन से क्या (लाभ)? फले हुए कड़वे वन से भी क्या (लाभ)?

घत्ता जो मन्त्रियों द्वारा कहे हुए सुन्दर वचनों को (तथा) नीति-वचनों को व्यवहार में नहीं करते हैं, उन राजाओं की रिद्धि कहां से (रहेगी) (तथा) (उनके लिए) सिंहासन, छत्र और रत्न कहाँ (होंगे)?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ-9

जंबूसामिचरिउ

सन्धि-9

9.8

विणयसिरीएँ कहाणउ सीसइ   संखिणिनिहि वरइत्तहों दीसइ ।। 1
कम्मि पुरम्मि दरिद्दें ताडिउ   संखिणि नाम को वि कव्वाडिउ ।। 2
दिणि दिणि वणें कव्वाडहों धावइ   भोयणमत्तु किलेसें पावइ ।। 3
भुत्तसेसु दिवसेसु पवन्नउ   रूवउ एक्कु रोक्कु संपन्नउ ।। 4
महिलसहाएँ रहसें चड्डिउ   कलसे छुहेंवि धरायलें गड्डिउ ।। 5
अह रविगहणें कयावि विहाणइँ   चलियइँ तित्थें चयवि नियथाणइँ ।। 6
पूरिएहिँ मणिरयणसुवण्णहिँ   अवलोइउ संखिणिनिहि अण्णहिँ ।। 7
मंतिज्जएँ आएण असारें   खडहडंतरूवयसंचारें ।। 8
जाणाविउ लोयाण समग्गा   अम्हइँ णिण्हाविज्जहु लग्गा ।। 9
चिंतेंवि तम्मि छुद्धु निउ मल्लउ   एक्केक्कउ मणिरयणु गरिल्लउ ।। 10
सो संपुण्णु करेवि पवत्तइँ   ण्हाएँवि तित्थें नियघरु पत्तइँ ।। 11
अह छणदिणि महिलाएँ कहिज्जइ   रूवउ अज्जु नाह विलसिज्जइ ।। 12
संखिणि खणइ कलसु जहिँ धरियउ   दिट्ठउ ताम कणयमणिभरियउ ।। 13
सरहसु रहसें कहिउ पिएँ पेक्खहि   मइँ सम पुण्णवंतु को लक्खहि ।। 14
अज्जवि सिद्धिनएण निहाणें   रयमि उवाउ अवरु मइनाणें ।। 15
किं पि न लेमि करेमि न खोयणु   होसइ कव्वाडेण वि भोयणु ।। 16
अह कलसेसु छुहेंवि एक्केक्कउ   बहु दविणासएँ गड्डेवि मुक्कउ ।। 17
अण्णहिँ पव्वें पुणु वि पहें दिट्ठइ   पूरहु केम हियएँ न पइट्ठइ ।। 18
निहिहिँ रयणु एक्केक्कउ लइयउ   सुण्णउ करेंवि सव्वु परिचइयउ ।। 19

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

पाठ–9

जंबूसामिचरिउ

सन्धि–9

9.8

[1] विनयश्री के द्वारा (एक) कथानक कहा गया (और) (उसमें) संखिणी की निधि की (बात) दूल्हे (जंबूस्वामी) के लिए बतलाई गई । [2] किसी नगर में दरिद्र (स्थिति) के द्वारा ताड़ा हुआ संखिणी नामक कोई कबाड़ी (था) । [3] (वह) प्रतिदिन वन में कबाड़ीपन (जंगल की विभिन्न वस्तुओं) के लिए भागता था (और) (फिर भी) (उससे प्राप्त कीमत से) दुःखपूर्वक भोजनमात्र (ही) पाता था । [4] कुछ दिनों में भोजन में से बचा हुआ (पैसा/भोजन) प्राप्त किया गया (इस प्रकार) (उसके द्वारा) एक रुपया रोकड़ी हासिल किया गया । [5] (उसके द्वारा) पत्नी के सहयोग से एकान्त में चढ़ा गया (जाया गया) (और) (वहाँ) (एक) कलश में (रुपये को) रखकर, (वह कलश) धरती में गाड़ दिया गया । [6] बाद में सूर्य-ग्रहण के अवसर पर प्रभात में किसी भी समय निज निवासों को छोड़कर (कुछ लोग उस) तीर्थ-स्थान को चले । [7] मणि, रत्न और सोने से सम्पन्न अन्य (व्यक्तियों) के द्वारा संखिणी की निधि देख ली गई । [8–9] (उधर) आए हुए (लोगों) के द्वारा खड़खड़ करते हुए रुपये की असार गति के कारण सोचा गया (कि) स्व-मार्ग में लगे हुए लोगों के लिए (रुपये के द्वारा) (कुछ) बतलाया गया है (और उससे) हम (कुछ) ग्रहण कराये जाते हैं । [10] उस (विषय) में निज भले को सोचकर (उनके द्वारा) एक-एक श्रेष्ठ मणिरत्न (कलश में) डाल दिया गया । [11] वह (कलश) पूर्ण कर दिया गया (ऐसा) करके, (वे) (यात्रा पर) प्रवृत्त हुए । तीर्थ में स्नान करके (वे सब) अपने घर को पहुँचे । [12] तब (किसी) उत्सव के दिन पर पत्नी के द्वारा कहा गया (कि) हे नाथ ! आज (पहले रखा हुआ) रुपया भोग किया जाए । [13] संखिणी (वहाँ) खोदता है जहाँ पर कलश रखा गया था, तब (वह) (कलश) स्वर्ण तथा मणियों से भरा हुआ देखा गया । [14] उत्साहसहित एकान्त में कहा गया—हे प्रिय ! देख, मेरे समान कौन पुण्यवान (है) ? (तुम) समझो । [15] आज ही (मैं) बुद्धि-ज्ञान से, योग-शक्ति की युक्ति से खजाने में (वृद्धि के लिए) दूसरा उपाय रचता हूँ । [16] (इसमें से) मैं कुछ भी नहीं लूँगा । (और) (मैं) (इसका) खनन (भी) नहीं करूँगा । (पूर्ववत्) कबाड़ीपन से ही भोजन हो जायेगा । [17] तब (उसके द्वारा) कलशों में एक-एक (रत्न) को रखकर बहुत द्रव्य की आशा से (प्रत्येक कलश) गाड़कर छोड़ दिया गया । [18] फिर (किसी) दूसरे पर्व पर पथ में (उन यात्रियों द्वारा पुनः) (कलश) देखे गये (और विचारा गया कि) किस प्रकार (इन्हें) (हम) भरें । (ये बातें) हृदय में नहीं बैठीं । [19] (तब) निधि में से एक-एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवरहि समएँ जाम उग्घाडइ   रित्तउ नियवि करहिं सिरु ताडइ ।। 20
अच्छउ रयणसमूहु सरूवउ   सो वि विणट्ठु मूलि जो रूवउ ।। 21

घत्ता—साहीणलच्छि नउ भुंजइ महइ समग्गल सग्गदिहि ।
संखिणिहि जेम वरइत्तहों करें लग्गेसइ सुण्णनिहि ।। 22

9.11

तं निसुणेवि कुमारें वुच्चइ   विसु साहीणु कि न लहु मुच्चइ ।। 1
रयणिहि नयरें सियालु पइट्ठउ   मुउ बलद्दु रच्छामुहें दिट्ठउ ।। 2
भक्खंतेण दंत-वणें काणिउँ   रयणिविरामपमाणु न जाणिउँ ।। 3
हुएँ पहाएँ वस-आमिसमुज्झिउ   जणसंचारवमालें बुज्झिउ ।। 4
भयकंपिरु नीसरिवि न सक्कउ   चिंतियमंतु पडेविणु थक्कउ ।। 5
अप्पउ मुयउ करिवि दरिसावमि   किर वणु पुणु वि निसागमि पावमि ।। 6
दीसइ दिवसि मिलिय पुरलोएं   एक्कें नरेंण पवड्ढियरोएं ।। 7
ओसहत्थु लुउ पुच्छ-सकण्णउ   चितइ जंबुउ अज्ज वि धण्णउ ।। 8
जीवेसमि अपुच्छु विणु कण्णहिँ   एक्कबार जइ छुट्टमि पुण्णहिँ ।। 9
वोल्लइ अवरु एक्कु कामुयजणु   गेण्हमि दन्तु करमि वसि पियमणु ।। 10
पाहणु लेवि दंत किर चूरइ   जाणिवि जंबुउ हियइ विसूरइ ।। 11
खंडियपुच्छ-कण्ण मण्णिय तिणु   दुक्करु जीवियास दंतहिँ विणु ।। 12
चिंतवि मुक्कु धाउ जव-पाणें   लइउ कंठें हरिसरिसें साणें ।। 13
मारिउ ताम जाण कयनाएं   खद्धउ मिलिवि सुणहसमवाएं ।। 14
इय विसयंधु मूढु जो अच्छइ   कवणभंति सो पलयहों गच्छइ ।। 15

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

रत्न ले लिया गया (और) सब (कलशों को) खाली करके (वहाँ) (ही) छोड़ दिया गया। [20] किसी दूसरे समय जब (वह) (कलशों को) उघाड़ता है (तो) खाली (कलशों) को (ही) देखकर हाथों से (अपना) सिर पीटता है। [21] (और कहता है)—सौन्दर्य-युक्त रत्न-समूह को (तो) जाने दो, (किन्तु दुःख है कि) जो रुपया मूल में था वह भी नष्ट हो गया।

घत्ता – (जो) स्वाधीन लक्ष्मी को (तो) नहीं भोगता है (किन्तु) पूर्ण मोक्ष-सुख की इच्छा करता है, (उस) दूल्हे (जंबूस्वामी) के हाथों में शून्य निधि (ही) लगेगी, जिस प्रकार संखिणी के (हाथ में शून्य निधि ही लगी)।

9.11

[1] उसको सुनकर कुमार (जंबूस्वामी) के द्वारा कहा गया—अपने पास (यदि) विष (है) (तो) क्या (वह) शीघ्र नहीं छोड़ दिया जाता है ? [2] रात्रि में नगर में (एक) गीदड़ प्रविष्ट हुआ (उसके द्वारा) मरा हुआ बैल मोहल्ले के मुख पर (ही) देखा गया। [3] दाँतों के समूह से (बैल को) खाते रहने के कारण (उसका दाँत-समूह) ढीला हो गया। (और) (खाने में लीन होने के कारण) रात्रि की समाप्ति की सीमा (उसके द्वारा) नहीं जानी गई। [4] प्रभात होने पर बैल के माँस में मोहित (गीदड़) मनुष्यों के आवागमन के कोलाहल से होश में आया। [5] (मनुष्यों को देखकर) (वह) भय से कंपनशील (हुआ) (पर) (नगर से) निकलकर (भागने के लिए) समर्थ नहीं हुआ। (तो) (मन में) योजना विचारी गई (जिसके अनुसार) (वह) (जमीन पर) पड़कर निश्चेष्ट हुआ। [6] (यह ठीक है कि) (मैं) अपने को मरा हुआ बनकर दिखलाता हूँ। फिर रात्रि आने पर अवश्य ही वन को जाऊँगा। [7–8] दिन (होने) पर नगर के लोगों द्वारा मिलकर (वह) देखा गया। बढ़े हुए रोग के कारण एक मनुष्य के द्वारा औषधि के लिए (निमित्त) (उसकी) कान-सहित पूँछ काट ली गई। गीदड़ ने सोचा (कि) आज भी (अभी भी) भाग्यशाली (हूँ)। [9] पूँछ-रहित और बिना कानों से (मैं) जी लूँगा। यदि केवल एक बार पुण्यों से छूट जाऊँ। [10] (तभी) एक अन्य (दूसरा) कामुक मनुष्य बोला—(मैं) दाँत लेता हूँ, (इससे) प्रिया के मन को वश में करूँगा। [11] (वह) पत्थर लेकर दाँत तोड़ता है। गीदड़ ने (यह) जानकर मन में खेद किया। [12] (उसने सोचा) (कि जब) पूँछ और कान काटे गए (तो) (मेरे द्वारा) (वह घटना) तुच्छ मानी गई। (किन्तु) दाँतों के बिना (तो) जीने की उम्मीद कठिन (है)। [13] (ऐसा) सोचकर (वह) म्लान (गीदड़) प्राणोंसहित वेग से भागा, (तो) सिंह के समान (खूंखार) कुत्ते के द्वारा (वह) मुँह (कंठ) में पकड़ लिया गया [14] और मार दिया गया। मार डालने के कारण उस समय (वह) कुत्तों के समूह के द्वारा मिलकर खा लिया गया, (इस बात को) (तुम सब) समझो। [15] इस प्रकार जो मूढ़ (व्यक्ति) (इन्द्रिय-) विषयों में अन्धा रहता है, वह नाश को पाता है। (इसमें) क्या सन्देह (रह जाता है) ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

10.11

जंबूसामि कहाणउ साहइ वाणिउ को वि परोहणु वाहइ ।। 1
गउ परतीरें पुहइधणतुल्लउ एक्कु जि रयणु किणिउ बहुमोल्लउ ।। 2
चडिवि पोइ लंघइ सायरजलु आवंतउ चिंतइ मणें मंगलु ।। 3
जा वेलाउलु पावमि तहिं पुणु विक्कमि एँउ माणिक्कु महागुणु ।। 4
हरि-करि किणवि भंडु णाणाविहु घरु जाएसमि निवसंपयनिहु ।। 5
अह हत्थाउ गलिउ दरनिद्दहों पडिउ रयणु तं मज्झें समुद्दहों ।। 6
धाहावइ तरियहु दीहरगिरु हा हा जाणवत्तु किज्जउ थिरु ।। 7
निवडिउ एत्थु रयणु अवलोयहों तं आणेवि पुणु वि महु ढोयहों ।। 8
सायरें नट्ठु वहंतहों पोयहों कहिँ लब्भइ माणिक्कु पलोयहों ।। 9

घत्ता—इय मणुयजम्मु माणिक्कसमु रइसुहनिद्दावसजायभमु ।
संसारसमुद्दि हरावियउ जोयंतु केम पुणु लहमि हउँ ।। 10

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

10.11

[1] जंबूस्वामी कथानक कहते हैं—कोई वणिक जहाज ले गया। [2] (वह) दूसरे किनारे पर गया। (उसके द्वारा) पृथ्वी के धन के तुल्य एक ही बहुमूल्य रत्न खरीदा गया। [3] (जब) (वह) जहाज पर चढ़कर सागर के जल को पार करता है (तो) (किनारे पर) पहुँचते हुए मन में इष्ट (बातें) सोचने लगा। [4–5] जब (मैं) बन्दरगाह (समुद्रतट) को पहुँचूंगा फिर (मैं) वहाँ इस अत्यधिक कीमतवाले माणिकरत्न को बेचूंगा (और) (फिर) राजा की सम्पदा के समान नाना प्रकार के बर्तन (भांडे, सामान) घोड़े व हाथी खरीदकर (मैं) घर जाऊँगा। [6] तब अल्पनिद्रा में रत्न हाथ से निकल गया (और) वह समुद्र के भीतर जा पड़ा। [7] (तब) (उसने) हाहाकार मचाया। (पानी में) तैरे हुए (तैरते हुए) (लोगों) के लिए ऊँची आवाज (निकाली) –अरे–अरे ! जहाज स्थिर किया जाए। [8] हे उपस्थित (लोगों) ! यहाँ (पानी में) रत्न गिरा (है)। अवलोकन के लिए (आप) (जहाज) (रोकें) फिर उसको लाकर मेरे लिए (दो)। [9] हे देखनेवाले (मनुष्यो)! चलते हुए जहाज में सागर में लुप्त हुआ रत्न कहाँ प्राप्त किया जायेगा ?

घत्ता—यह मनुष्य-जन्म रत्न के समान है। (किन्तु) (मनुष्य) रति-सुखरूपी निद्रा के वश में हुआ भ्रमण (करता है) (इस तरह) (तुम्हारे द्वारा) हराया गया मैं संसार-समुद्र में किस प्रकार खोजता हुआ फिर (मनुष्य-जन्म) पाऊँगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ-10

सुदंसणचरिउ

सन्धि-2

2.10

आयण्णि पुत्त   जह आगमें सत्त वि वसण वुत्त ।। 1
सप्पाइ दुक्खु   इह दिंति एक्क भवें दुण्णिरिक्खु ।। 2
विसय वि ण भंति   जम्मंतरकोडिहिँ दुहु जणंति ।। 3
चिरु रुद्ददत्तु   णिवडिउ णरयण्णवें विसयजुत्तु ।। 4
वढु आयरेण   जो रमइ जूउ वहुडप्फरेण ।। 5
सो च्छोहजुत्तु   आहणइ जणणि सस घरिणि पुत्तु ।। 6
जूयं रमंतु   णलु तह य जुहिट्ठिल्लु विहुरु पत्तु ।। 7
मंसासणेण   वड्ढेइ दप्पु दप्पेण तेण ।। 8
अहिलसइ मज्जु   जूउ वि रमेइ बहुदोससज्जु ।। 9
पसरइ अकित्ति   तें कज्जें कीरइ तहों णिवित्ति ।। 10
जंगलु असंतु   वणु रक्खसु मारिउ णरए पत्तु ।। 11
मइरापमत्तु   कलहेप्पिणु हिंसइ इट्ठमित्तु ।। 12
रच्छहेँ पडेइ   उब्भियकरु विहलंघलु णडेइ ।। 13
होंता सगव्व   गय जायव मज्जें खयहो सव्व ।। 14
साइणि व वेस   रत्ताघरिसण दरिसइ सुवेस ।। 15
तहों जो वसेइ   सो कायरु उच्छिट्ठउ असेइ ।। 16
वेसापमत्तु   णिद्धणु हुउ इह वणि चारुदत्तु ।। 17
कयदीणवेसु   णासंतु परम्मुहु छुट्टकेसु ।। 18
जे सूर होंति   सवरा हु वि सो ते णउ हणंति ।। 19
वणे तिण चरंति   णिसुणेवि खडक्कउ णिरु डरंति ।। 20
वणमयउलाइं   किह हणइ मूढु किउ तेहिँ काइं ।। 21
पारद्धिरत्तु   चक्कवइ णरए गउ वंभयत्तु ।। 22

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

पाठ–10

सुदंसणचरिउ

सन्धि–2

2.10

[1] जिस प्रकार आगम में सभी सातों व्यसन समझाए गये (हैं) हे पुत्र ! (तुम) (उनको) सुनो। [2] सर्पादि (प्राणी) यहाँ एक जन्म में (ही) कठिनाई से विचार किए जानेवाले (घोर) दुःख को देते हैं। [3] किन्तु (इन्द्रिय–) विषय करोड़ों जन्मों के अवसर पर दुःख उत्पन्न करते (रहते) हैं। (इसमें)(कोई) सन्देह नहीं है। [4] (इन्द्रिय-) विषयों में लीन रुद्रदत्त दीर्घकाल के लिए नरकरूपी समुद्र में पड़ा। [5–6] जो मूर्ख उत्साहपूर्वक जुआ खेलता है, वह (जुआ में लीन होने के कारण) रोष से युक्त हुआ माता, बहिन, पत्नी और पुत्र को कष्ट देता है। [8] जुआ खेलते हुए नल ने और इसी प्रकार युधिष्ठिर ने (भी) कष्ट पाया। [8–9] मांस खाने के कारण अहंकार बढ़ता है उस अहंकार के कारण (वह) मद्य की इच्छा करता है, जुआ भी खेलता है (तथा) बहुत सी बुराइयों में गमन (करने लगता है)। [10] (उसका) अपयश फैलता है। उस कारण से उससे निवृत्ति की जानी चाहिए। [11] माँस खाते हुए बक राक्षस मारा गया (और) (उसने) नरक पाया। [12] मदिरा के कारण नशे में चूर हुआ (मनुष्य) झगड़ा करके प्रिय मित्र को (भी) कष्ट पहुँचाता है। [13] (कभी) (वह) राजमार्ग पर गिर जाता है (तथा) (कभी) (वह) उन्मत्त शरीरवाला (होकर) हाथ को ऊंचा करके नाचता है। [14] मदिरा (पीने) के कारण घमण्डी होते हुए सभी यादव विनाश को प्राप्त हुए। [15] वेश्या सुन्दर वेश दिखाती है (और) पिशाचिनी की तरह खून (के कणों) का घर्षण (करती) (है)। [16] उसके (घर में) (काम-क्रीड़ा के लिए) जो रहता है, वह अस्तव्यस्त (व्यक्ति) (मानो) जूठन खाता है। [17] यहाँ (यह उल्लेखनीय है कि) वेश्या में मस्त हुआ व्यापारी चारुदत्त धन-रहित हो गया। [18] (धन-रहित होने के कारण) (चारुदत्त को) (अपने यहां से) दूर हटाती हुई (वेश्या) (उससे) विमुख (हुई) (और) (उसके द्वारा) (उसके) बाल काट दिए गए (और (उसका) वेश दयनीय बना दिया गया। [19–20] जो वीर होते हैं, चाहे वह शबरों का (समूह) ही हो, वे वन में रहनेवाले मृगों के समूह को, (जो) वन में घास चरते हैं (और केवल) खड़खड़ आवाज सुनकर निश्चित डर जाते हैं, (उनको) नहीं मारते हैं। [21] (उनको) मूर्ख (व्यक्ति) क्यों मारता है ? उनके द्वारा क्या किया गया है ? [22] शिकार का प्रेमी चक्रवर्ती

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

चलु चोरु धिट्ठु गुरुमायबप्पु माणइ ण इट्ठु ॥ 23
णियभुयबलेण वंचइ ते अवर वि सो छलेण ॥ 24
भयकूवि छूढु णउ णिद्दभुक्खु पावेइ मूढु ॥ 25
पद्धडिय एह सुपसिद्धी णामें विज्जलेह ॥ 26

घत्ता—पावेज्जइ बंधेवि णिज्जइ वित्थारेँवि रहेँ चच्चरेँ।
दंडिज्जइ तह खंडिज्जइ मारिज्जइ पुरवाहिरेँ ॥ 27

2.11

परवसुरयहो अंगारयहो सूलिहिँ भरणं जायं मरणं ॥ 1
इय णिएँवि जणो तोँवि मूढमणो चोरी करइ णउ परिहरइ ॥ 2
जो परजुवइ इह अहिलसइ सो णीससइ गायइ हसइ ॥ 3
सहिऊण जए णिवडइ णरए होऊ अबुहा रामण पमुहा ॥ 4
परयाररया चिरु खयहोँ गया सत्त वि वसणा एए कसणा ॥ 5

8.7

इयरहँ दिव्वाहरणहँ पासिउ सीलु वि जुवइहेँ मंडणु भासिउ ॥ 1
हरिवि णीय जा किर दहवयणेँ सीलेँ सीय दड्ढ णउ जलणेँ ॥ 2
तह अणंतमइ सीलगुरुविकय खगकिरायउवसग्गहँ चुविकय ॥ 3
रोहिणि खरजलेण संभाविय सीलगुणेण णइएँ ण वहाइय ॥ 4
हरि-हलि-चक्कवट्टि-जिणमायउ अज्ज वि तिहुयणम्मि विक्खायउ ॥ 5
एयउ सीलकमलसरहंसिउ फणिणरखयरामरहिँ पसंसिउ ॥ 6
जणणिएँ छारपुंजु वरि जायउ णउ कुसीलु मयणेणुम्मायउ ॥ 7
सीलवंतु बुहयणेँ सलहिज्जइ सीलविवज्जिएण किं किज्जइ ॥ 8

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ब्रह्मदत्त नरक में गया। [23] चंचल और निर्लज्ज चोर गुरु, माँ और बाप को (भी) आदरणीय नहीं मानता है। [24] वह उनको (तथा) दूसरों को भी निज भुजाओं के बल से (तथा) जालसाजी से ठगता है। [25] (वह) उपेक्षित मूढ़ (व्यक्ति) संकटरूपी कूए में (गिरता है) (और) (वह) निद्रा और भूख को नहीं पाता है। [26] यह (वह) पद्धडिया छंद (है), (जिसकी) विद्युल्लेखा नाम से ख्याति (है)।

घत्ता—(चोर) पकड़ा जाता है, बांधकर ले जाया जाता है, चौराहे और मुख्य मार्ग पर (उसके) (चोरी के कार्य को) फैलाकर (वह) दंडित किया जाता है तथा शहर के बाहरी भाग में काटा जाता है (और) मारा जाता है।

2.11

[1] परद्रव्य में अनुरक्त होने के कारण अंगारक (चोर) के द्वारा सूलियों पर धारण करनेवाला मरण प्राप्त किया गया। [2] इसको जानकर भी मनुष्य उस समय (चोरी करने के समय) मूर्ख (बन जाता है) (और) चोरी करता है। (दु:ख है कि वह) (चोरी करने को) नहीं छोड़ता है। [3] लोक में जो अन्य की स्त्री को चाहता है, वह (उससे) मिलता-जुलता है, (उसकी) प्रशंसा करता है (और)(उसके लिए) लालायित रहता है। [4] जगत् में (अपमान) सहकर (वह) नरक में गिरता है। आदरणीय रावण (भी) अज्ञानी हुआ (और) पर-स्त्री में अनुरक्त हुआ। [13] आखिरकार विनाश को (पहुँच) गया। (इस तरह से) ये सातों व्यसन अनिष्टकर (होते हैं)।

8.7

[1] अन्य सुन्दर आभूषणों के (समान) शील भी युवती का आभूषण समझा गया (है) (और) कहा गया (है)। [2] जो सीता रावण के द्वारा हरण करके ले जाई गई (वह), जैसा कि बतलाया जाता है, शील के कारण अग्नि के द्वारा नहीं जलाई गई। [3] उसी प्रकार कठोर शीलधारण की हुई अनन्तमती विद्याधरों और किरात (जंगल में रहनेवाली एक जाति के मनुष्यों) के उपद्रव से रहित हुई। [4] (नदी के) तेज धारवाले जल में डुबाई गई रोहिणी, शील गुण के कारण नदी के द्वारा नहीं बहाई गई। [5] नारायण, बलदेव, चक्रवर्ती तथा तीर्थंकरों की माताएं आज भी (शील के कारण) तीनलोक में प्रसिद्ध (हैं)। [6] ये शीलरूपी कमल-सरोवर की हंसिनी (थीं) (अत:) (वे) नागों, मनुष्यों, आकाश में चलनेवाले (विद्याधरों) और देवों द्वारा प्रशंसित (थीं)। [7] हे माता! (यदि) (कोई) (जलकर) राख का ढेर हो जाए (तो) (यह) अधिक अच्छा (है), (किन्तु) काम-वासना के कारण पागलपन पैदा करनेवाला कुशील (अच्छा) नहीं (है)। [8] विद्वान व्यक्ति के द्वारा शीलवान (मनुष्य) प्रशंसा किया जाता है। (कोई बताए) शीलरहित होने से क्या (प्रयोजन) सिद्ध किया जाता है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घत्ता—इय जाणेविणु सीलु परिपालिज्जइ माएँ महासइ।
णं तो लाहु णियंतिहेँ हलेँ मूलछेउ तुह होसइ ॥ 9

8.9

ण फिट्टइ पेयवणे इह गिद्धु — ण फिट्टइ पंकएँ भिंगु पइट्ठु ॥ 1
ण फिट्टइ तुंबरणारयगेउ — ण फिट्टइ पंडियलोयविवेउ ॥ 2
ण फिट्टइ दुज्जणेँ दुट्ठसहाउ — ण फिट्टइ णिद्धणचित्तेँ विसाउ ॥ 3
ण फिट्टइ लोहु महाधणवंतेँ — ण फिट्टइ मारणचित्तु कयंतेँ ॥ 4
ण फिट्टइ जोव्वणइत्तेँ मरट्टु — ण फिट्टइ वल्लहेँ चित्तु चहुट्टु ॥ 5
ण फिट्टइ विंझि महाकरिजूहु — ण फिट्टइ सासएँ सिद्धसमूहु ॥ 6
ण फिट्टइ पाविहेँ पावकलंकु — ण फिट्टए कामुयचित्तेँ भसंकु ॥ 7
ण फिट्टइ आयहेँ जो असगाहु — सुछंदु वि मोत्तियदामउ एहु ॥ 8

घत्ता—अहवा जं जिह जेण किर जिह अवसमेव होएवउ।
तं तिह तेण जि देहिएँण तिह एक्कंगेण सहेवउ ॥ 9

8.32

सुलहउ पायालएँ णायणाहु — सुलहउ कामाउरेँ विरहडाहु ॥ 1
सुलहउ णवजलहरेँ जलपवाहु — सुलहउ वइरायरेँ वज्जलाहु ॥ 2
सुलहउ करसीरएँ घुसिणपिंडु — सुलहउ माणससरेँ कमलसंडु ॥ 3
सुलहउ दीवंतरेँ विविहभंडु — सुलहउ पाहाणेँ हिरण्णखंडु ॥ 4
सुलहउ मलयायलेँ सुरहिवाउ — सुलहउ गयणंगणेँ उडुणिहाउ ॥ 5
सुलहउ पहुपेसणेँ कएँ पसाउ — सुलहउ ईसासे जणेँ कसाउ ॥ 6
सुलहउ रविकंतमणिहिँ हुयासु — सुलहउ वरलक्खणेँ पयसमासु ॥ 7
सुलहउ आगमेँ धम्मोवएसु — सुलहउ सुकईयणेँ मइविसेसु ॥ 8

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घत्ता—इसको समझकर हे माता ! हे महासती ! (यदि) शील पालन किया जाता है तो लाभ है। (वरना) हे सखी ! (उदाहरणों को) देखते हुए (मेरे द्वारा) (यह) (समझा गया है) (कि) आपके आधार का (ही) नाश हो जायेगा।

8.9

[1] इस लोक में श्मशान से गिद्ध दूर नहीं होता है। कमल में घुसा हुआ भौंरा (उससे) दूर नहीं होता है। [2] नारद के तम्बूरे का गीत नहीं छूटता है। ज्ञानी समुदाय (मनुष्यों) का विवेक नष्ट नहीं होता है। [3] दुष्ट स्वभाव दुर्जन से ओझल नहीं होता है। निर्धन के चित्त से चिन्ता समाप्त नहीं होती है। [4] महाधनवान से लोभ नहीं जाता है। यमराज से मारने का भाव दूर नहीं होता है। [5] यौवनवान् से अहंकार नहीं हटता है। प्रेमी में लगा हुआ मन विचलित नहीं होता है। [6] महान् हाथियों का समूह विन्ध्य पर्वत से नीचे नहीं आता है। सिद्धों का समूह शाश्वत (स्थिति) से रहित नहीं होता है। [7] पापी से पाप का कलंक नहीं छूटता है। कामुक चित्त से कामदेव हटता नहीं है। [8] (इसी प्रकार) (रानी का) जो कदाग्रह (अनैतिक निश्चय) (है) (वह) (उसके) मन से नहीं हटेगा (ऐसा लगता है)। यह ही मौक्तिकदाम छन्द (है)।

घत्ता—अथवा (ऐसा कहें कि) जहां, जिस प्रकार जिस (व्यक्ति) के द्वारा जैसी (घटनाएँ) उत्पन्न की जायेंगी, वहाँ (वे) अवश्य ही उसी प्रकार, उस ही व्यक्ति के द्वारा अकेले वैसी ह सही जायेंगी (इसको टाला नहीं जा सकता है)।

8.32

[1] पाताल में सर्पों का स्वामी सुप्राप्य (है), काम से पीड़ित (व्यक्ति) में विरह का संताप स्वाभाविक (है)। [2] नये बादल में जल का प्रवाह सरल (है), हीरे की खान में हीरे की प्राप्ति आसान (है)। [3] कश्मीर में केसरपिंड सुलभ (है), मानसरोवर में कमलों का समूह सुलभ (है)। [4] द्वीपों के अन्दर नाना प्रकार की व्यापारिक वस्तुएँ सुप्राप्य (हैं), पत्थर में सोने का अंश सुलभ (है)। [5] मलय पर्वत से सुगन्ध-युक्त वायु का (चलना) स्वाभाविक है, व्यापक आकाश में तारों का समूह स्वाभाविक (है)। [6] स्वामी का प्रयोजन पूर्ण किया गया होने पर पुरस्कार आसान (है), ईर्ष्या-युक्त व्यक्ति में कषाय स्वाभाविक (है)। [7] सूर्यकान्त मणियों द्वारा अग्नि आसानी से प्राप्त (की जा सकती) (है), उत्तम व्याकरण-शास्त्र में पदों में समास सुलभ (है)। [8] आगम में मूल्यों (धर्म) के उपदेश सुलभ (हैं), सुकवि-जन में बुद्धि की श्रेष्ठता सुलभ (है)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुलहउ मणुयत्तणेँ पिउ कलत्तु   पर एक्क जि दुल्लहु अइपवित्तु ।। 9
जिणसासणेँ जं ण कया वि पत्तु   किह णासमि तं चारित्तवित्तु ।। 10

घत्ता—एम वियप्पिवि जाम थिउ अविओलचित्तु सुहदंसणु ।
अभयादेवि विलक्ख हुय ता णियमणेँ चिंतइ पुणुपुणु ।। 11

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

[9–10] मनुष्य अवस्था में प्रिय पत्नी सुलभ (है), किन्तु जिनशासन में अतिपवित्र एक (चारित्र)ही दुर्लभ (है), जिसको (पहले) (मैंने) कभी प्राप्त नहीं किया उस चारित्ररूपी धन को (मैं) कैसे बर्बाद कर दूं ?

घत्ता—इस प्रकार विचार करके जब (सुदर्शन) (जिसका) दर्शन मनोहर (है) शान्त-चित्तवाला हुआ (तो) अभयादेवी लज्जित हुई (और) वह निज मन में बार-बार विचार करने लगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ—11

सुदंसणचरिउ

सन्धि–3

3.1

सुतरंगहँ गंगहँ गोउ किर जाव जम्मि ण गच्छइ ।। 9
ता सुहमइ जिणमइ सयणयले सुत्तिय सिविणय पेच्छइ ।। 10
सुरचित्तहरो सिहरी पवरो णवकप्पयरू अमरिंदघरू ।। 11
पवरंबुणिही पजलंतु सिही सुविराइयओ अवलोइयओ ।। 12
पसरम्मि सई वरसुद्धमई गय सिग्घु तहिं थिउ कंतु जहिं ।। 13
णिसि लक्खियउ तसु अक्खियउ पभणेइ पई पिय हंसगई ।। 14
लइ जाहुँ वरं जिणचेइहरं अविलंबभुणी भयवंतमुणी ।। 15
पयडंति अलं सिविणस्स हलं चलहारमणी चलिया रमणी ।। 16
भणिओ रमणी इय छंदु मुणी ।। 17

घत्ता—गय जिणहरु मुणिवरु परिणवेवि जिणदासिएँ णिसि दिट्ठउ ।
गिरिवरु तरु सुरहरु जलहि सिहि इय सिविणंतरु सिट्ठउ ।। 18

3.2

किं फलु इय सिविणयदंसणेण होसइ परमेसर कहि खणेण ।। 1
इय णिसुणिवि णवजलहरसरेण सुणि सुंदरि पभणिउ मुणिवरेण ।। 2
उत्तुंगें भरभारियधरेण होसइ सुधीरु सुउ गिरिवरेण ।। 3
कुसुमरयसुरहिकयमहुअरेण चाइउ लच्छीहरु तरुवरेण ।। 4
सुररमणीकीलामणहरेण सुरवंदणीउ वरसुरहरेण ।। 5
जललहरीचुंबियअंबरेण गुणगणगहीरु रयणायरेण ।। 6
अइणिविडजडत्तविणासणेण कलिमलु णिड्डहइ हुआसणेण ।। 7

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ–11

सुदंसणचरिउ

सन्धि–3

3.1

[9-10] मनोहर तरंगवाली गंगा नदी से गोप जब तक पुनर्जन्म में नहीं गया तब शुभमति (से युक्त) जिनमति ने सूत्र से बने हुए बिछौनों पर स्वप्नों को देखा। [11–12] देवताओं के चित्त को हरण करनेवाला श्रेष्ठ पर्वत, नया कल्पवृक्ष, इन्द्र का घर (स्वर्ग), उत्तम समुद्र, चमकती हुई (तथा) अत्यन्त सुशोभित अग्नि (यह स्वप्न–समूह) देखा गया। [13] प्रभात में उत्तम शुद्धमति सती शीघ्र वहाँ गई जहाँ (उसका) पति बैठा (था)। [14–15–16] उसके द्वारा रात में देखे गए (स्वप्न) (पति को) कहे गए। पति ने कहा—हे हंस की चालवाली प्रिया! अच्छा ठीक, (हम) श्रेष्ठ जिन-चैत्यघर जाते हैं (चलते हैं) (वहाँ) पूज्य मुनि (जिनके) शब्द (ध्वनि/उपदेश) बिना विलम्ब के (सहज) (होते) हैं। स्वप्न (समूह) का हल पूर्णरूप से प्रकट कर देंगे, (अतः) (वह) रमणी, (जिसके) हार की मणियाँ लहरानेवाली थीं (पति के साथ) चल पड़ी। [17] मुनि के द्वारा यह रमणी छंद कहा गया।

घत्ता—(दोनों) जिन-मन्दिर गये। (वहाँ) मुणिवर को प्रणाम करके जिनदासी के द्वारा रात्रि में स्वप्न के भीतर देखा गया श्रेष्ठ पर्वत, कल्पवृक्ष, इन्द्र का निवास, अग्नि और समुद्र कहा गया।

3.2

[1] (शुद्धमति ने पूछा) इस स्वप्न (-समूह के) दर्शन से क्या फल होगा? हे परमेश्वर! तुरन्त कहें। [2] इसको सुनकर नये मेघ के समान (गंभीर) स्वरवाले मुनिवर के द्वारा कहा गया—हे उत्तम स्त्री! सुनो। [3] (स्वप्न में देखे गए) ऊँचे (और) भारी भार धारण करनेवाले गिरिवर (पर्वत) से (तुम्हारा) पुत्र अत्यधिक धैर्यवान होगा। [4] मकरन्द (फूलों की रज) की सुगन्ध से आकर्षित किए गए भँवर-(समूह) सहित तरुवर (कल्पवृक्ष) (देखने) से (तुम्हारा) (पुत्र) लक्ष्मीवान (तथा) दानी (होगा)। [5] देवताओं की रमणियों की क्रीड़ा से सुन्दर (लगनेवाले) इन्द्र का घर (देखने) से (तुम्हारा) पुत्र देवताओं द्वारा वन्दनीय (होगा)। [6] (जिसकी) जल-तरंगें आकाश से छू ली गई हैं (ऐसा) समुद्र (देखने) से (तुम्हारा पुत्र) गुणों का समूह (तथा) गम्भीर (होगा)। [7] अति घने जड़त्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संदरु मणहरु गुणमणिणिकेउ   जुवईयणवल्लहु मयरकेउ ।। 8
णियकुलमाणससररायहंसु   णिम्मच्छरु वहुयणलद्धसंसु ।। 9
उवसग्गु सहेवि हवेवि साहु   पावेसइ झाणें मोक्खलाहु ।। 10
जिणु मुणि णवेवि हरिसियमणाइँ   णियगेहु गयइँ विण्णि वि जणाइँ ।। 11
गोवउ वि णियाणेँ तहिँ मरेवि   थिउ वणिपियउयरएँ अवयरेवि ।। 12

घत्ता—तहिँ गब्भएँ अब्भएँ णाइँ रवि कमलिणिदलेँ णावइ जलु ।
सिप्पिउडएँ णिविडएँ ठिउ सहइ णं णितुल्लु मुत्ताहलु ।। 13

3.5

तेण पुत्तेण जणु तुट्ठु   खे महंतेहिँ मेहेहिँ जलु वुट्ठु ।। 1
दुट्ठपाविट्ठपोरत्थगणु तट्ठु   णंदि आणंदि देवेहिँ णहे घुट्ठु ।। 2
दुंदुहीघोसु कयतोसु हुउ दिव्वु   फुल्ल पप्फुल्ल मेल्लेइ वणु सव्वु ।। 3
मंदु आणंदयारी हुओ वाउ   वावि कूवेसु अब्भहिउ जलु जाउ ।। 4
गोसमूहेहिँ विक्खित्तु थणदुद्धु   एंतजंतेहिँ पहिएहिँ पहु रुद्धु ।। 5
तो दिणे छट्ठि उक्किट्ठकमसेण   दाविया छट्ठिया उब्भत्ति वइसेण ।। 6
अट्ठ दो दिवह वोलीण छुडु जाय   ताम जा णाम जिणयासि सणुराय ।। 7
वालु सोमालु देविंदसमदेहु   लेवि भत्तीएँ जाएवि जिणगेहु ।। 8
तीएँ पेच्छियउ पुच्छियउ मुणिचंदु   मत्तमायंगु णामेण इय छंदु ।। 9

घत्ता—मंदरु जिह थिरु तिह वुहयणहिँ कुंभरासि पभणिज्जइ ।
महुतणउ तणउ एरिसु मुणिवि मुणिवर णामु रइज्जइ ।। 10

3.6

तं सुणिऊण पणट्ठरईसो   मेहणिघोसु भणेइ जईसो ।। 1
दिट्ठु तए सिविणंतरेँ सारो   पुत्तिएँ तुंगु सुदंसणमेरो ।। 2

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

का विनाश कर देनेवाली अग्नि (देखने) से (वह) पापरूपी मल को जला देगा। [8] (और भी) (तुम्हारा पुत्र) सुन्दर, मनोहर, गुणरूपी मणियों का घर, युवती-वर्ग का प्रिय और प्रेम का देवता (होगा)। [9] (तुम्हारा पुत्र) ईर्ष्यारहित (तथा) अपने कुलरूपी मानसरोवर का राजहंस (होगा) (और ऐसा होगा) (जिसके द्वारा) ज्ञानी वर्ग की प्रशंसा प्राप्त कर ली गई है। [10] (जो) साधु होकर उपसर्ग सहन करके ध्यान के द्वारा मोक्ष के लाभ को प्राप्त करेगा। [11] जिनेन्द्र (और) मुनिवर को प्रणाम करके हर्षित मनवाले दोनों ही मनुष्य (पति-पत्नी) निज घर को चले गए। [12] गोप भी वहां निदान सहित मरकर वणिक की पत्नी के उदर में आकर रहा।

घत्ता—वहाँ (वह) गर्भ में आकाश में स्थित सूर्य की तरह, कमलिनी के पत्ते पर जल की तरह, सघन सिप्पिदल में (खोखली जगह में) असाधारण मोती की तरह शोभायमान हुआ।

3.5

[1] (जन्मे हुए) उस पुत्र से मनुष्य वर्ग सन्तुष्ट हुआ। आकाश में घने बादलों द्वारा जल बरसाया गया। [2] नगर का दुष्ट और अत्यन्त पापी (एवं) ईर्ष्यालु/द्वेषी वर्ग डर गया (दुःखी हुआ)। देवताओं द्वारा आकाश में हर्ष (और) आनन्द घोषित किया गया। [3] (जिसके द्वारा) सन्तोष दिया गया (ऐसा) दिव्य दुंदुभि-घोष (उत्पन्न) हुआ। समस्त वन खिले हुए फूलों को छोड़ने लगा (बरसाने लगा)। [4] आनन्दकारी मन्द पवन चला। बावड़ियों और कुओं में अत्यधिक जल भरा। [5] गौ-समूहों द्वारा थणों से दूध बिखेरा गया। आते-जाते हुए पथिकों के कारण मार्ग रुक गया। [6] तब (जन्म के) छठे दिन पर वणिक के द्वारा उत्कृष्ट रूप से झटपट उत्सव दिखलाया गया (मनाया गया)। [7-8] जब शीघ्र आठ और दो दिन (=दस दिन) व्यतीत हुए, तब जिनदासी नामक (माता ने) अनुराग-सहित (उस) सुकुमार (और) इन्द्र के समान देहवाले बालक को लेकर (और) भक्तिपूर्वक जिन-मन्दिर जाकर (जिनेन्द्र को प्रणाम किया)। [9] (वहाँ) उसके द्वारा मुणिचन्द देखे गए (और) (वे) पूछे गए। यह छन्द नाम से मत्तमात्तंग (है)।

घत्ता—जिस प्रकार मेरु-पर्वत स्थित है उसी प्रकार ज्ञानियों द्वारा कुम्भ राशि कही जाती है। हे मुनिवर! ऐसा जानकर मेरे पुत्र का नाम रचा जाए।

3.6

[1] उसको (माता के वचन को) सुनकर (वे) विशिष्ट मुनि (जिनके द्वारा) काम नष्ट कर दिया गया (है), (जिनका) स्वर मेघ के समान (है) बोले—[2] हे पुत्री! तुम्हारे द्वारा स्वप्न के अन्दर श्रेष्ठ, ऊँचा (और) सुन्दर पर्वत देखा गया। [3] अतः (इसका) नाम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किज्जउ तेण सुदंसणु णामो	सज्जणकामिणिसोत्तहिरामो	॥ 3
तो जिणयासें णविवि जईसं	चित्तें पहिट्ठ गया सणिवासं	॥ 4
सोहणमासें दिणे छुडु दित्तं	बद्धउ पालणयं सुविचित्तं	॥ 5
देवमहीहरि णं सुरवच्छो	वड्ढइ तत्थ परिट्ठिउ वच्छो	॥ 6
वड्ढइ णं वयपालणें धम्मो	वड्ढइ णं पियलोयणें पेम्मो	॥ 7
वड्ढइ णं णवपाउसि कंदो	एसु पयासिउ दोहयछंदो	॥ 8

घत्ता—जगतमहरु ससहरु मयरहरु जिह वड्ढंतउ भावइ ।
मणवल्लहु दुल्लहु सज्जणहँ पुरएवहों सुउ णावइ ॥ 9

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुदर्शन रखा जाए (जो) सज्जन और कामिनियों के कानों के लिए मनोहर है। [4] तब जिनदासी मन में आनन्दित हुई और विशिष्ट मुनि को प्रणाम करके स्वनिवास को गई। [5] शीघ्र (शुभ) दिन (और) शुभमास में दिव्य (और) अत्यन्त सुन्दर पालना बाँधा गया। [6-7-8] वहाँ रहा हुआ बालक बढ़ने लगा, जैसे देव-बालक देव-पर्वत (सुमेरु) पर (बढ़ता है), जैसे व्रतपालन से धर्म बढ़ता है, जैसे स्नेही के दर्शन से प्रेम बढ़ता है, जैसे नई वर्षा ऋतु में कंद (बादल) बढ़ता है, इस प्रकार दोधक छंद व्यक्त किया गया (है)।

घत्ता—जिस प्रकार समुद्र और जग के अन्धकार को दूर करनेवाला चन्द्रमा बढ़ता हुआ अच्छा लगता है, (उसी प्रकार) सज्जनों के मन को अच्छा लगनेवाला (जिनदासी का) दुर्लभ (पुत्र) पुरुदेव (ऋषभदेव) के सुत (भरत) के समान (अच्छा लगता है)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ-12

करकण्डचरिउ

सन्धि-2

2.16

पुणु उच्चकहाणी णिसुणि पुत्त संपज्जइ संपइ जें विचित्त ।। 1
परिकलिवि संगु णीचहों हिएण उच्चेण समउ किउ संगु तेण ।। 2
वाणारसिणयरि मणोहिरामु अरविंदु णराहिउ अत्थि णामु ।। 3
संतोसु वहंतउ णियमणम्मि पारद्धिहे गउ एक्कहिँ दिणम्मि ।। 4
जलरहियहिँ अडविहिँ सो पडिउ तहिँ तण्हएँ भुक्खएँ विण्णडिउ ।। 5
अमिएण विणिम्मिय सुहयराइँ तहों दिण्णइँ वणिणा फलइँ ताइँ ।। 6
संतुट्ठउ तहों वणिवरहों राउ घरि जाइवि तहों दिण्णउ पसाउ ।। 7
उवयारु महंतउ जाणएण वणि णिहियउ मंतिपयम्मि तेण ।। 8

घत्ता—अणुराएँ विण्णि वि तहिँ वसहिँ दिणयरतेयकलायर ।
गुणगणरयणहँ सीलणिहि गहिरिमाइँ णं सायर ।। 9

2.17

ता एक्कहिँ दिणि मंतीवरेण तहों रायहों णंदणु हरिवि तेण ।। 1
आहरणइँ लेविणु दिहिकरासु गउ तुरिउ विलासिणिमंदिरासु ।। 2
गयमोल्लइँ जणणयणहँ पियाइँ तहिँ वणिणा ताहेँ समप्पियाइँ ।। 3
सरयागमससहरआणणीहेँ पुणु कहियउ तेण विलासिणीहेँ ।। 4
मइँ मारिउ णंदणु णरवईहिँ इउ कहियउ सयलु वि थिररईहिँ ।। 5
तं सुणिवि ताइँ पभणिउ सणेहु मा कासु वि पयडु करेहि एहु ।। 6
एत्तहिँ अलहंतें सुउ णिवेण देवाविउ डिंडिमु णयरेँ तेण ।। 7
जो रायहों णंदणु कहइ को वि सहुँ दविणइँ मेइणि लहइ सो वि ।। 8

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

पाठ-12

करकण्डचरिउ

सन्धि-2

2.16

[1] इसके विपरीत हे पुत्र ! उच्च (संगति) की कहानी सुन। जिससे नाना प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त की जाती है। [2] हृदय से नीच की संगति को समझकर उस (वणिक) के द्वारा उच्च (व्यक्ति) के साथ संग किया गया। [3] वाराणसी नगर में मन को प्रसन्न करनेवाला अरविंद नामक राजा था। [4] अपने मन में प्रसन्नता को धारण करता हुआ (वह) एक दिन शिकार के लिए गया। [5] वह जलरहित जंगल में फँस गया, वहाँ पर भूख (और) प्यास के द्वारा व्याकुल किया गया। [6](तब) वणिक के द्वारा अमृत से बने हुए वे सुखकारी फल उस (राजा) को दिए गए। [7] राजा उस श्रेष्ठ वणिक पर प्रसन्न हुआ, (और) घर जाकर उसको पुरस्कार दिया गया। [8] (अपने ऊपर) महान उपकार समझनेवाला होने के कारण, उस (राजा) के द्वारा वणिक मन्त्री-पद पर रखा गया।

घत्ता—(वे) दोनों (जो) तेज में सूर्य और चन्द्रमा (के समान) थे, (जो) गुणसमूहरूपी रत्नों के (व) शील के निधान (थे),(जो) गंभीरता में सागर के समान (थे), स्नेहपूर्वक वहाँ पर रहने लगे।

2.17

[1] तब एक दिन उस राजा के पुत्र का हरण करके उस मन्त्रीवर के द्वारा (भागा गया)। [2] (वह) (उसके) आभूषणों को लेकर शीघ्रता से (स्नेहशील) विलासिनी (महिला) के सुखकारी घर को गया। [3] (वे) (आभूषण) (जिनका) मूल्य चला गया (है), (जो) मनुष्यों के नयनों के लिए प्रिय (हैं), उस विलासिनी (महिला) के लिए वणिक के द्वारा वहाँ प्रदान किए गए। [4] शरद ऋतु में आनेवाले चन्द्रमा की तरह मुखवाली (उस) विलासिनी को उस (वणिक) के द्वारा फिर कहा गया। [5] मेरे द्वारा राजा का पुत्र मारा गया (है)। यह सारी (बात) ही (उसके द्वारा) स्थिर स्नेहवाली (विलासनी) को कही गई। [6] उस (बात) को सुनकर उस (विलासिनी) के द्वारा (वणिक के लिए) सस्नेह कहा गया (कि) यह (बात) किसी के लिए भी (तुम) प्रकट मत करना। [7] यहाँ पर राजा के द्वारा पुत्र को न पाते हुए होने के कारण, उसके द्वारा नगर में ढोल-(बजाकर) आज्ञा करवायी गयी (है)। [8] (और राजा के द्वारा कहलवाया गया कि) जो कोई भी राजा के पुत्र को बताता है (बतायेगा) वह ही सम्पत्ति के साथ भूमि को पायेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घत्ता—ता केण वि धिट्ठें तुरियएँण णरणाहहों अग्गइँ भणिउ ।
उवलक्खिउ तुह सुउ देव मइँ सो णवलइँ मंतिएँ हणिउ ।। 9

2.18

तं वयणु सुणेविणु सरलबाहु	संतुट्ठउ मंतिहें धरणिणाहु	।। 1
तिहिँ फलहिँ मज्झें एक्कहों फलासु	णिरहरियउ रिणु मइँ मइवरासु	।। 2
अवराह दोण्णि अज्ज वि खमीसु	खणि हुयउ पसण्णउ धरणिईसु	।। 3
परियाणिवि मंतिइँ रायणेहु	णिवणंदणु अप्पिउ दिव्वदेहु	।। 4
अइ होहि णरेसर परममित्तु	मइँ देव तुहारउ कलिउ चित्तु	।। 5
वणिवयणु सुणेविणु णरवरेण	अइपउरु पसाउ पइण्णु तेण	।। 6
गुरुआण संगु जो जणु वहेइ	हियइच्छिय संपइ सो लहेइ	।। 7
एह उच्चकहाणी कहिय तुज्झु	गुणसारणि पुत्तय हियइँ बुज्झु	।। 8

घत्ता—करकंडु जणाविउ खेयरइँ हियबुद्धिएँ सयलउ कलउ ।
इय णित्तिएँ जो णरु ववहरइ सो भुंजइ णिच्छउ भूवलउ ।। 9

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घत्ता—तब किसी ढीठ (व्यक्ति) के द्वारा शीघ्रता से राजा के आगे कहा गया (कि) हे देव ! तुम्हारा सुत (पुत्र) मेरे द्वारा देखा गया (है), वह (तुम्हारे) नए मन्त्री द्वारा मार दिया गया (है)।

2.18

[1] उस बात को सुनकर पृथ्वी का नाथ (राजा) सरलबाहु, मन्त्री से प्रसन्न हुआ। [2] (राजा ने कहा कि जंगल में दिए गए) तीन फलों में से मन्त्रीवर के एक फल का ऋण मेरे द्वारा चुका दिया गया (है)। [3] (मन्त्री ने कहा कि) हे नाथ ! अन्य दो (फलों के ऋण) को आज ही क्षमा कीजिए। पृथ्वी का मुखिया (राजा) क्षण भर में प्रसन्न हुआ। [4] राजा के स्नेह को जानकर मन्त्री के द्वारा सुन्दर देहवाला राजा का पुत्र सौंप दिया गया। [5] हे नरेश्वर ! (आप) (मेरे) परम मित्र हो ! हे देव ! मेरे द्वारा तुम्हारा चित्त पहिचान लिया गया (है)। [6] (इस तरह से) वणिक के वचन को सुनकर उस राजा के द्वारा (वणिक के लिए) खूब पुरस्कार सार्वजनिक रूप से घोषित किया गया। [7] (इस प्रकार) जो मनुष्य अच्छों की संगति को धारण करता है, वह मन से चाही गई सम्पत्ति को प्राप्त करता है। [8] हे पुत्र ! यह उच्च (पुरुष) की कहानी (जो) गुणों की परम्परावाली है, तेरे लिए कही गई है (इसको) (तू) हृदय में समझ।

घत्ता—खेचर (विद्याधर) के द्वारा हितकारी बुद्धि से करकंड समस्त कलाएँ सिखाया गया। इसकी नीति से जो मनुष्य व्यवहार करता है वह अवश्य ही भूमण्डल को उपभोग करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ—13

धण्णकुमारचरिउ

सन्धि–3

3.16

लउडि-खग्ग सव्वहिँ करि धारिय   भोगवइ चल्लिय विणिवारिय ॥ 1
दूरहु हुंति तेण णियच्छिय   हक्क दिंत आवंत वि पेच्छिय ॥ 2
एयहु मारणत्थि इह आवहिँ   वच्छउलइँ णउ कत्थ वि पावहिँ ॥ 3
इय मणि मंतिवि पुणु भयतट्ठउ   पच्छउ वलिवि णिएवि वणि णट्ठउ ॥ 4
ते बोल्लावहिँ भो गिहि आवहि   एहि-एहि मा भयवसु धावहि ॥ 5
वच्छउलइँ णियगेहि पराणिय   तुहु इ थक्कु ण मइए जाणिय ॥ 6
तुज्झु जणणि तुअ दुक्खेँ सल्लिय   मा वणि जाहि मुइवि एकल्लिय ॥ 7
तह वि ण सो णियत्तु भयभीयउ   मुणइ पवंचु सयलु इणु कीयउ ॥ 8
जाय रयणि ते सीह-भयाउर   पल्लट्टिवि गय ते पुणु णियघर ॥ 9
तासु जणणि महदुक्खेँ तत्ती   हुय णिरास खणि पगलियणेत्ती ॥ 10
हा-हा किह सुव-दंसणु होसइ   दुट्ठ विहिहिँ पुणु-पुणु सा कोसइ ॥ 11
भाय-भाय हा किम जीवेसमि   सुबाहु सुवत्तु किम पेच्छेसमि ॥ 12
हा-हा किं बंधव णिचिंतउ   महु सुउ विसमावत्थहिँ पत्तउ ॥ 13
हउँ तुव सरणि विएसेँ पत्ती   करहि गंपि महु पुत्तहु तत्ती ॥ 14
महु मणु अच्छइ बहुदुक्खायरु   इय कंदंति णिवारइ भायरु ॥ 15
अच्छहि कलुणु म कंदहि बहिणी   पुर-सयासि सो णिवसइ रयणी ॥ 16

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

पाठ-13

धण्णकुमारचरिउ

सन्धि-3

3.16

[1] सभी के द्वारा लकड़ियाँ और तलवारें हाथ में रखी गईं। भोगवती (साथ में जाने से) रोकी गई (फिर भी) (वह) (उनके साथ) (जंगल में) चल दी। [2] उसके (अकृतपुण्य के) द्वारा दूर से (ही) (सब) देख लिए गए (कि) (वे) हैं। हाँक देते हुए (और) आते हुए भी (वे) देख लिए गए। [3] (उसने सोचा कि) (जब) बछड़ों के समूहों को (उन्होंने) कहीं भी नहीं पाया होगा (तो) इन (हथियारों) से (मुझे) मारने के इच्छुक यहाँ (जंगल में) आये हैं। [4] मन में यह विचारकर (वह) भय से काँपा। फिर पीछे की ओर मुड़कर, देखकर (वह) जंगल में छिप गया। [5] वे बुलाते (थे) (कि) हे (बालक)! (तुम) घर में आओ। आओ, आओ। भय के अधीन (होकर) मत भागो। [6] (तुम सुनो कि) बछड़ों के समूह निज घर में पहुँच गए (हैं)। तू (जंगल) (में) हो ठहरा है, (हमारे द्वारा) बुद्धि से (यह) नहीं समझा गया (था)। [7] तुम्हारी माता तुम्हारे दुःख द्वारा दुःखी की गई (है), (उसको) यहाँ अकेली छोड़कर वन में मत जा। [8] तो भी वह भयभीत (अकृतपुण्य) (वापिस) नहीं लौटा। (वह) इस सबको (उनके द्वारा) किया हुआ छल समझता है। [9] रात्रि हुई! फिर सिंह के भय से पीड़ित वे पलटकर अपने घर को गए। [10] उसकी माता महादुःख के कारण दुःखी (और) निराश हुई। (वह) (एक) क्षण में बहतेहुए नेत्रवाली (हुई) [11] हाय-हाय! (अब) सुत का दर्शन (मिलन) कैसे होगा? वह (अपनी) दुष्ट किस्मत को बार-बार कोसने लगी। [12] हे भाई! हे भाई! हाय! (मैं) (अब) कैसे जीवूँगी? सुन्दर भुजावाले (और) सुन्दर मुखवाले (पुत्र) को कैसे देखूँगी? [13] हाय-हाय! हे भाई! (तुम) निश्चिन्त क्यों हो? मेरा पुत्र कठिन (विषम) अवस्था में पड़ा हुआ (है)। [14] मैं विदेश में तुम्हारी शरण में पड़ी हुई (हूँ)। (कहीं) जाकर मेरे लिए (तुम) (कुछ) करो, (जिससे) (मुझको) पुत्र से सन्तोष (मिले)। [15] मेरा मन बहुत दुःखों की खान (हो गया) है। इस प्रकार रोती हुई (उस) को भाई रोकता है। [16] हे बहिन! ठहरो! करुणाजनक मत रोओ। (आशा है कि) रात्रि में वह नगर के पास (कहीं) रहेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घत्ता—जिं णियउरि धरियउ खीरें भरियउ परपेसणेण जि पोसियउ।
महु-दुक्खें पालिउ देहें लालिउ तं वीसरइ केम हियउ ॥ 17

3.19

हउँ होंतउ दुख-दालिद्द-जडिउ पुव्वविकय दुक्कम्मेण णडिउ ॥ 1
णिद्धंधउ छुह-तिस-संभरिउ जणणिए सहु देसंतर फिरिउ ॥ 2
थक्कइ असोय-माम जि घरि हउँ अत्थि पवट्टिउ तहिं पवरि ॥ 3
मइ दाणु पदिण्णउँ मुणिवरहु सहुं जणणिए णिहणिय भवसरहु ॥ 4
हउँ वच्छउलहँ रक्खणहँ गउ तहिं सुत्तउ जावहिं विगय-भउ ॥ 5
पवणाहय ते णिय आय घरि हउँ भयभीयउ कंदरि-विवरि ॥ 6
थक्कउ तहिं आयमु बहु सुणिउ संसार-सरूवउ वि चित्ति मुणिउ ॥ 7
जा णिवसमि ता सिंघेण हउ हउँ सुरवर जायउ चिय विवउ ॥ 8
मुणिवयणपसाएँ दुक्खभरु छिंदिवि खणि जायउ सुक्खघरु ॥ 9
एत्तहिं तह मायरि दुहभरिया महदुक्खें खविय विहावरिया ॥ 10
हुय सुप्पहाए सयल्न जि मिलिया सहुँ जणणिए तं जोयहुं चलिया ॥ 11
सव्वत्थ वणम्मि गवेसियउ मह सोएँ पुरजणु सोसियउ ॥ 12

घत्ता—तहुँ खोज्जु णियंतइँ जतइँ संतइँ पत्तइँ गिरि-गुह-वारि पुणु।
तहिँ तहु कर-चलणइँ बहु-दुह-जणणइँ दिट्ठइँ दहदिसि पडिय तणु ॥ 13

3.20

मुच्छाविय जणणि णिएवि ताइ सयल वि दुक्खाविय तेत्थु ठाइ ॥ 1
उम्मुच्छिवि मायरि मुइवि धाह रोवणह लग्ग हा हुय अणाह ॥ 2
हा-हा मह णंदणु हउँ सदुक्खि किं मुक्की णिक्कारणि उवेक्खि ॥ 3
वारंतहँ सव्वहँ गयउ काइ हा-हा किं णायउ गेह-ठाइ ॥ 4

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घत्ता—(माता ने कहा कि) (वह) निज छाती से लगाया गया, दूध से पोषित दूसरों की सेवा से ही (वह) पाला गया। बड़े कष्टों से (वह) रक्षण किया गया। (अपनी) देह से (वह) स्नेहपूर्वक सँभाला गया। उसको हृदय कैसे भूलेगा ?

3.19

[1] मैं दुःख-दरिद्रता से युक्त होता हुआ पूर्व में किए हुए दुष्कर्म द्वारा नचाया गया। [2] (प्रारम्भ में) (मैं) धन्धे-रहित (होकर) भूख-प्यास-सहित (रहा) (और) माता के साथ विदेश में फिरा। [3] उस समय मैं अशोक मामा के श्रेष्ठ घर में प्रवृत्त हुआ (और) रहा। [4] मेरे द्वारा माता के साथ इस संसार-सरोवर के विनाश के लिए (समर्थ) श्रेष्ठ मुनि के लिए (आहार)-दान दिया गया। [5] मैं बछड़ों के समूह की रक्षा के लिए (वन में) गया (और) जैसे ही (मेरा) भय नष्ट हुआ (मैं) वहाँ सो गया। [6–7] (तेज) वायु से आघात प्राप्त (आहत) वे (बछड़े) अपने घर में आ गए (और) भय से काँपा हुआ (भयभीत) मैं गुफा के द्वार पर बैठा। वहाँ आगम बहुत सुना गया और संसार का स्वरूप चित्त में समझा गया। [8] जब (मैं) (वहाँ) बैठा था तब मैं सिंह के द्वारा मारा गया। (वहां से मरकर) (मेरे द्वारा) श्रेष्ठ देव का विशिष्ट पद पाया गया। [9] (इस तरह से) मुनि के वचन के प्रसाद से दुःख के बोझ को काटकर (एक) क्षण में (मैं) सुख के घर (स्थान) को गया। [10] इधर उसकी माता दुःख से भरी हुई थी (और) अत्यन्त कष्ट से (उसके द्वारा) रात्रि बिताई गई। [11] (तब) सब ही सुप्रभात में (उपस्थित) होकर मिले। माता के साथ (उसको) खोजने के लिए (सभी) चले। [12] (उनके द्वारा) सारे वन में (वह) खोजा गया। महान शोक के कारण नगर के जन कृश हो गये (थे)।

घत्ता—फिर उसके मार्ग-चिह्न देखते हुए, जाते हुए, थके हुए (वे सब) पर्वत की गुफा के दरवाजे पर पहुँचे। वहाँ उसके शरीर के हाथ और पैर दसों दिशाओं में पड़े हुए देखे गए (जो) बहुत दुःख के जनक (थे)।

3.20

[1] उन (हाथ-पैरों) को देखकर (शोक के द्वारा) माता मूर्च्छित कर दी गई। (और) सब भी उस स्थान पर दुःखी (हुए)। [2] अमूर्च्छित होकर (मूर्च्छारहित होकर, होश में आकर) माँ ने चिल्लाहट (की) (कि) छोड़कर (चला गया) (फिर) रोने का चिह्न (प्रकट हुआ)। हाय ! (मैं) अनाथ हो गई (हूँ)। [3] हाय–हाय ! हे मेरे पुत्र ! मैं अत्यन्त दुःख में (हूँ)। मैं (तेरे द्वारा) निष्कारण उपेक्षा करके क्यों छोड़ दी गई ? [4] सबके रोकते हुए होने पर (भी) (तुम) (वन में) क्यों गए ? (और) (फिर) हाय–हाय !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किं कुमइ जाय तुव एह पुत्त जं वणि आवासिउ कमलवत्त ।। 5
महु छंडि गयउ तुहु किं विएसि हउँ पाण चयमि पुणु इह पएसि ।। 6
इय भणिवि चलण-कर मेलवेवि आलिंगइ जा णेहेण लेवि ।। 7
ता सुरवरु चिंतइ सग्गवासि किम जणणि मज्झ हुव सोक्खरासि ।। 8
जाइवि संबोहमि ताहि अज्जु जिम सिज्झइ तहि परलोइ कज्जु ।। 9
अण्णु वि णियगुरु-चरणारविंद पणमवि जाइवि गइमल अणिंद ।। 10
इय चिंतिवि आयउ तहिँ सुरेसु मायइँ करेवि चिर-देह-वेसु ।। 11
णियडउ आविवि जंपिवि सुवाय किं कंदहि रोवहि मज्झु माय ।। 12
हउँ जीवमाणु महु णियहि वत्तु हउँ अकयपुण्णु णामेण पुत्तु ।। 13
मोहाउर णिसुणिवि वयण सिग्घु णिच्छइ जाणिउ महु सुउ अणग्घु ।। 14

घत्ता—मेल्लिवि कर-चरणइँ बहुदुहकरणइँ धाइवि आलिंगेहि तहु ।
ता सुरवरु सारउ वसु-गुण-धारउ पउ सरेवि थिउ सो वि लहु ।। 15

3.21

जंपइ भो बुज्झहि जणणि सारु जिणवयणु दयावरु जणहँ तारु ।। 1
को कासु णाहु को कासु भिच्चु जाणहि संसारु जि मणि अणिच्चु ।। 2
मोहेँ बद्धउ मे-मे करेइ आउक्खए कु वि कासु ण धरेइ ।। 3
अइआरु ण किज्जइ मोहु अंबि जिणधम्मु गहहि मा इह विलंबि ।। 4
जेँ लब्भहिँ इच्छिय सयलसुक्ख छेइज्जहिँ जेँ भवदुक्खलक्ख ।। 5
खण भंगुरु सयलु म करहि सोउ महु पुणु पेच्छहि संजणिय मोउ ।। 6
सद्दहहि जिणायमु सरिवि अज्जु हुउ पढम-सग्गि सुर देवपुज्जु ।। 7
अवहिए जाणिवि हउँ एत्थु आउ तुव बोहणत्थि पयडिय-सुवाउ ।। 8

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(तुम) निवास स्थान में (घर के आँगन में) क्यों नहीं पहुँचे ? [5] हे कमल के समान मुख-वाले पुत्र ! तुम्हारे (मन में) यह कुमति क्यों उत्पन्न हुई कि (तुम्हारे द्वारा) वन में (ही) रहा गया ? [6] मुझको छोड़कर तू परदेश में क्यों चला गया ? (अत:) मैं इस स्थान पर ही प्राण छोड़ती (हूँ)। [7-8] यह कहकर (उसके) हाथों और पैरों को मिलाकर (उनको) स्नेह से उठाकर जब (वह) (उनका) आलिंगन करती है, तब सुख की खान स्वर्ग का वासी श्रेष्ठदेव विचारता है (कि) मेरी माँ को क्या हुआ (है) ? [9] (मैं) जाकर उसको आज समझाऊँगा, जिससे परलोक में उसका कार्य सिद्ध हो। [10] दूसरी (बात) भी (विचारी) (कि) (मैं) (वहाँ) जाकर मलरहित व निंदारहित निज गुरु के चरणरूपी कमलों को प्रणाम करके उनके प्रति (कृतज्ञता ज्ञापन करूँगा)। [11] इन (दोनों बातों) को सोचकर माया से पुरानी देह के वेश को बनाकर उत्तम देव वहाँ आया। [12] निकट आकर (और) मधुर वचन कहकर (बोला) (कि) हे मेरी माता ! (तुम) क्यों क्रन्दन करती हो ? (तुम) क्यों रोती हो ? [13] मैं जीता हुआ (जीवित) हूँ। (तुम) मेरे मुख को देखो। मैं (तुम्हारा) पुत्र (हूँ) (जो) नाम से अकृतपुण्य (है)। [14] (उसके) वचन को सुनकर मोह से पीड़ित (माता) ने शीघ्र जानकर और निश्चय करके (कहा) (कि) (अरे !) (यह) (तो) मेरा उत्तम पुत्र (है)।

घत्ता—बहुत दु:ख को उत्पन्न करनेवाले हाथों और पैरों को छोड़कर, दौड़कर वह उस (मायावी पुत्र) को आलिंगन करती है। तब वह श्रेष्ठ देव भी, (जो) सर्वोत्तम आठ गुणों का धारक (था), (माता की) अवस्था को स्मरण करके स्थिर हुआ।

3.21

[1] (मायावी) (पुत्र) बोला (कि) हे माता ! (तू) मनुष्यों के लिए श्रेष्ठ, दयावान (और) उज्ज्वल जिन-वचन को समझ। [2] कौन किसका नाथ (है) ? कौन किसका नौकर (है) ? (तू) मन में संसार को अनित्य जान। [3] (व्यक्ति) मोह से जकड़ा हुआ मेरा-मेरा करता है, आयु के समाप्त होने पर कोई भी किसी को पकड़ नहीं सकता। [4] हे माता ! अत्यधिक इच्छावाला (बन्धनवाला) मोह नहीं किया जाना चाहिए। यहाँ (अब) देरी मत करो। (तुम) जिनधर्म को ग्रहण करो। [5] जिसके द्वारा इच्छित सभी सुख प्राप्त किए जाते हैं, जिसके द्वारा संसार के लाखों दु:ख नष्ट किये जाते हैं। [6] प्रत्येक (सम्बन्ध) क्षण में नाशवान (होता है)। (अत:) (तू) शोक मत कर। फिर मुझको देख। (ऐसा कहने से) (माता में) हर्ष उत्पन्न हुआ। [7] आज (ही) जिनागम का स्मरण करके (उसमें) श्रद्धा कर। (देख इसके प्रभाव से) (मैं) प्रथम स्वर्ग में देवों द्वारा पूज्य देव हुआ (हूँ)। [8] अवधि-ज्ञान से जानकर मैं यहाँ आया (हूँ)। (मैं) तुम्हारी शिक्षा (बोध) का इच्छुक (हूँ)। (इसलिए) (मेरे द्वारा) (तुम्हारे) पुत्र की आयु (जीवनकाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इय वयणु सुणिवि उवसंतमोह कर-चरण मुइवि जाया सुबोह ॥ 9

देवें पुणु णिय-मुणिणाह पासि वरु गुह-अब्भंतरि वि गय तासि ॥ 10

ति पयाहिणि देप्पिणु गुरुपयाइँ देवें वंदिय ता गरहियाइँ ॥ 11

घत्ता—बहु थोत्तु पयासिवि चिरकह भासिवि तुम्ह पसाएँ देव पउ ।
मइँ पाविउ धण्णउ बहु-सुह छण्णउ एम भणिवि पणवाउ कउ ॥ 12

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का रूप) प्रकट की गई (है)। [9] इस वचन को सुनकर (माता का) मोह शान्त हुआ (मृत) हाथ-पैरों को छोड़कर (वह) उत्तम ज्ञानवाली हुई। [10] फिर देव के द्वारा अपने मुनिनाथ (गुरु) के पास जाया गया। (वे) भयंकर और श्रेष्ठ गुफा के भीतर ही (निवास करते थे)। [11] गुरु-चरणों को तीन प्रदक्षिणा देकर देव के द्वारा वन्दना की गई (और) तब (उनके समक्ष) (अपने दोष) निन्दित किए गए।

घत्ता—(गुरु के समक्ष) (उनकी) बहुत स्तुति (को) व्यक्त करके (और) (उनको अपने सम्बन्ध की) पुरानी कथा कहकर (देव ने) (कहा) (कि) (हे गुरु) तुम्हारी कृपा से मेरे द्वारा प्रशंसनीय और बहुत सुखों से आच्छादित (यह) देव का पद प्राप्त किया गया। इस प्रकार कहकर (उसके द्वारा) (फिर) प्रणाम किया गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ–14

हेमचन्द्र के दोहे

1. सायरु उप्परि तणु धरइ तलि घल्लइ रयणाइं ।
सामि सुभिच्चु विपरिहरइ संमाणेइ खलाइं ।।

2. दूरुड्डाणे पडिउ खलु अप्पणु जणु मारेइ ।
जिह गिरि–सिंगहुं पडिअ सिल अन्नु वि चूरु करेइ ।।

3. जो गुण गोवइ अप्पणा पयडा करइ परस्सु ।
तसु हउँ कलि-जुगि दुल्लहहो बलि किज्जउं सुअणस्सु ।।

4. दइवु घडावइ वणि तरुहुँ सउणिहं पक्क फलाइं ।
सो वरि सुक्खु पइट्ठ ण वि कण्णहिं खल–वयणाइं ।।

5. धवलु विसूरइ सामि अहो गरुआ भरु पिक्खेवि ।
हउं कि न जुत्तउ दुहुं दिसहिं खंडइं दोण्णि करेवि ।।

6 कमलइं मेल्लवि अलि उलइं करि–गंडाइं महन्ति ।
असुलहमेच्छण जाहं भलि ते ण वि दूर गणन्ति ।।

7. जीविउ कासु न वल्लहउं धणु पुणु कासु न इट्ठु ।
दोण्णि वि अवसर-निवडिअइं तिण-सम गणइ विसिट्ठु ।।

8. बलि अब्भत्थणि महु–महणु लहुई हूआ सोइ ।
जइ इच्छहु वड्डत्तणउं देहु म मग्गहु कोइ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ–14

हेमचन्द्र के दोहे

[1] (आश्चर्य है कि) सागर घास-फूस को ऊपर रखता है (और) रत्नों को पैंदे में फेंक देता है। (इसी प्रकार) (आश्चर्य है कि) राजा गुणवान सेवक को त्याग देता है (और) दुष्ट सेवकों का सम्मान करता है।

[2] (आचरणरूपी) ऊँचाई से उड़ने के कारण (हटने/डिगने के कारण) गिरा हुआ दुष्ट (व्यक्ति) अपने को (और) (दूसरे) मनुष्यों को नष्ट करता है, जिस प्रकार पर्वत की शिखा से गिरी हुई शिला (अपने साथ) अन्य को भी टुकड़े–टुकड़े कर देती है।

[3] जो स्वयं के गुणों को छिपाता है, दूसरे के (गुणों को) प्रकट करता है, उस दुर्लभ सज्जन की (इस) कलि-युग में (मैं) पूजा करता (हूँ)।

[4] दैव ने वन में पक्षियों के लिए वृक्षों के पके फल बनाए, वह (पक्षियों के लिए) श्रेष्ठ सुख (है), (क्योंकि) (वन में रहने के कारण उनके) कानों में दुष्टों के वचन प्रविष्ट (प्रवेश) नहीं हुए।

[5] स्वामी के बड़े भार को देखकर (गाड़ी में जुता हुआ) उत्तम बैल खेद करता है (कि) हे (स्वामी)! मैं (अपने) दो विभाग करके दोनों दिशाओं में क्यों न जोत दिया गया?

[6] कमलों को छोड़कर भँवरों के समूह हाथियों के गंडस्थलों की इच्छा करते हैं। (ठीक ही है) जिनका कदाग्रह (हठ) असुलभ लक्ष्य को (प्राप्त करना है) वे (उसको) बिल्कुल दूर (स्थित) नहीं मानते (हैं)।

[7] जीवन किसके लिए प्रिय नहीं है? (और) धन (भी) किसके लिए प्रिय नहीं है, (किन्तु) विशेष गुण-सम्पन्न (व्यक्ति) समय आ पड़ने पर दोनों को ही तिनके (घास) के समान गिनता है।

[8] बलि राजा से माँगनेवाला होने के कारण वह विष्णु भी छोटा हुआ। यदि (तुम) बड़प्पन को चाहते हो (तो) दो। कुछ भी मत माँगो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

9. कुञ्जर ! सुमरि म सल्लइउ सरला सास म मेल्लि ।
कवल जि पाविय विहि–वसिण ते चरि माणु म मेल्लि ।।

10. दिग्रहा जन्ति झडप्पडहिं पडहिं मणोरह पच्छि ।
जं अच्छइ तं माणिग्र इं होसइ करतु म अच्छि ।।

11. सन्ता भोग जु परिहरइ तसु कन्तहो बलि कीसु ।
तसु दइवेण वि मुण्डियउं जसु खल्लिहडउ सीसु ।।

12. तं तेत्तिउ जलु सायरहो सो तेवडु वित्थारु ।
तिसहे निवारणु पलुवि नवि पर धुट्ठुअइ असारु ।।

13. किर खाइ न पिअइ न विद्दवइ धम्मि न वेच्चइ रुअडउ ।
इह किवणु न जाणइ जइ जमहो खणेण पहुच्चइ दूअडउ।।

14. कहिं ससहरु कहिं मयरहरु कहिं बरिहिणु कहिं मेहु ।
दूर–ठिआहं वि सज्जणहं होइ असड्ढलु नेहु ।।

15. सरिहिं न सरेहिं न सरवरेहिं नवि उज्जाण–वणेहिं ।
देस रवण्णा होन्ति वढ ! निवसन्तेहिं सु–अणेहिं ।।

16. एक्क कुडुल्ली पञ्चहिं रुद्धी तहं पञ्चहं वि जुअंजुअ बुद्धी ।
बहिणुए तं घरु कहिं किम्व नन्दउ जेत्थु कुडुम्बउं अप्पण-छंदउं।।

17. जिब्भिन्दिउ नायगु वसि करहु जसु अधिन्नइं अन्नइं ।
मूलि विणट्ठइ तुंबिणिहे अवसें सुक्कइं पण्णइं ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[9] हे गजराज ! शल्लकी (नामक) (स्वादिष्ट वृक्ष विशेष) को (अब) याद मत कर। (और) (उसके लिए) (गहरे साँसों को लेकर) स्वाभाविक साँसों को मत त्याग। जो (वृक्षरूपी) भोजन विधि के वश से (तेरे द्वारा) प्राप्त किया गया (है) उनको खा, (पर) स्वाभिमान को मत छोड़।

[10] दिन झटपट से व्यतीत होते हैं, इच्छाएं पीछे रह जाती हैं, जो होना है वह होगा ही (ऐसा) मानकर सोचता हुआ ही मत बैठ।

[11] जो विद्यमान भोगों को त्यागता है उस सुन्दर (व्यक्ति) की (मैं) पूजा करता हूँ। जिसका सिर गंजा है उसका सिर (तो) दैव के द्वारा ही मुँडा हुआ है।

[12] (यद्यपि) सागर का वह जल इतना (गहरा) (है) (तथा) वह इतना (बड़ा) विस्तार (लिए हुए) है, (तो भी) (आश्चर्य है कि) (उससे) प्यास का निवारण जरासा भी नहीं (होता है)। किन्तु (वह) निरर्थक (गूँज की) आवाज करता रहता है।

[13] निश्चय ही कंजूस न खाता है, न पीता है, न घूमता है और न रुपये को धर्म में व्यय करता है। जबकि (कृपण) यहाँ (यह) नहीं समझता है (कि) यम का दूत क्षण भर में पहुँच जायेगा।

[14] कहाँ चन्द्रमा (है), कहाँ समुद्र, कहाँ मोर (है)(और) कहाँ मेघ ? (फिर) भी (इनमें आपस में) प्रेम है। (इसी प्रकार) दूरी पर स्थित (भी) सज्जनों का प्रेम असाधारण होता है।

[15] हे मूर्ख ! न नदियों से, न झीलों से, न तालाबों से, न ही उद्यानों और वनों से देश सुन्दर होते हैं। (वे) (तो) सज्जनों द्वारा बसे हुए होने के कारण ही सुन्दर (होते हैं)।

[16] एक कुटिया पाँच (व्यक्तियों) द्वारा रोकी हुई है। उन पाँचों की भी बुद्धि अलग-अलग है। हे बहिन ! कहो, वह घर कैसे हर्ष मनानेवाला (होगा) जहाँ कुटुम्ब स्वच्छन्दी (हो) ?

[17] अन्य (इन्द्रियाँ) जिसके अधीन हैं, (ऐसी) प्रमुख रसना इन्द्रिय को वश में करो। मूल के समाप्त हो जाने पर तुम्बिनी के पत्ते अवश्य ही निराधार (म्लान) (हो जाते हैं)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

18. जेप्पि असेसु कसाय-बलु देप्पिणु अभउ जयस्सु ।
लेवि महव्वय सिवु लहहिं झाएविणु तत्तस्सु ॥

19. देवं दुक्करु निअय-धणु करण न तउ पडिहाइ ।
एम्वइ सुहु भुञ्जणहं मणु पर भुञ्जणहिं न जाइ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[18] सम्पूर्ण कषाय की सेना को जीतकर, जगत को अभय (दान) देकर, महाव्रतों को ग्रहण करके, तत्त्व का ध्यान करके (व्यक्ति) मोक्ष प्राप्त करते हैं।

[19] निज धन को देने के लिए (तत्पर होना) दुष्कर (है), तप को करने के लिए (कोई) दिखाई नहीं देता है। इसी प्रकार सुख को भोगने के लिए (तो) मन (तत्पर रहता है), किन्तु (उसको) भोगने के लिए (कोई) (प्रयास) उत्पन्न नहीं होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ—15

परमात्मप्रकाश

1. पुणु पुणु पणविवि पंच-गुरु भावें चित्ति धरेवि ।
भट्टपहायर णिसुणि तुहुँ अप्पा तिविहु कहेवि ।।

2. अप्पा ति-विहु मुणेवि लहु मूढउ मेल्लहि भाउ ।
मुणि सण्णाणें णाणमउ जो परमप्प-सहाउ ।।

3. मूढु वियक्खणु बंभु परु अप्पा ति-विहु हवेइ ।
देहु जि अप्पा जो मुणइ सो जणु मूढु हवेइ ।।

4. देह-विभिण्णउ णाणमउ जो परमप्पु णिएइ ।
परम-समाहि-परिट्ठियउ पंडिउ सो जि हवेइ ।।

5. अप्पा लद्धउ णाणमउ कम्म-विमुक्के जेण ।
मेल्लिवि सयलु वि दव्वु परु सो परु मुणहि मणेण ।।

6. णिच्चु णिरंजणु णाणमउ परमाणंद-सहाउ ।
जो एहउ सो संतु सिउ तासु मुणिज्जहि भाउ ।।

7. जो णिय-भाउ ण परिहरइ जो पर-भाउ ण लेइ ।
जाणइ सयलु वि णिच्चु पर सो सिउ संतु हवेइ ।।

8. जासु ण वण्णु ण गंधु रसु जासु ण सद्दु ण फासु ।
जासु ण जम्मणु मरणु ण वि णाउ णिरंजणु तासु ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ–15

परमात्मप्रकाश

[1] पाँच गुरुओं को बार-बार प्रणाम करके (और) (उनको) अंतरंग बहुमान से चित्त में धारण करके (मैं) तीन प्रकार की आत्मा को कहने के लिए (उद्यत हुआ हूँ)। (अत:) हे भट्ट प्रभाकर ! तू (ध्यानपूर्वक) सुन।

[2] तीन प्रकार की आत्मा को जानकर (तू) शीघ्र मूर्च्छित आत्मावस्था को छोड़। (और) जो ज्ञानमय परमात्म-स्वभाव (है) (उसको) स्वबोध के द्वारा जान।

[3] आत्मा तीन प्रकार की होती है—मूर्च्छित (आत्मा), जाग्रत (आत्मा) और परम आत्मा (शुद्ध आत्मा)। जो देह को ही आत्मा मानता है वह मनुष्य मूर्च्छित होता है।

[4] जो देह से भिन्न परम समाधि में ठहरे हुए ज्ञानमय परम आत्मा को समझता है वह ही जाग्रत होता है।

[5] सकल ही पर द्रव्य को छोड़कर जिसके द्वारा ज्ञानमय आत्मा प्राप्त किया गया (है) वह कर्मरहित (मानसिक तनावरहित) होने के कारण सर्वोच्च (आत्मा) (है)। (तुम) (इसको) रुचिपूर्वक समझो।

[6] (आत्मा) नित्य (है), निरंजन (है), ज्ञानमय (है) (और) (उसका) परमानन्द स्वभाव (है)। जिस (मनुष्य) ने ऐसी (अवस्था) (प्राप्त की है) वह (निश्चय ही) संतुष्ट हुआ (है) (और) (वह) मंगल-युक्त (भी) (बना) (है)। उसकी (इस) अवस्था को (तू) समझ।

[7] जो (आत्मा) निज स्वभाव को नहीं छोड़ता है, जो पर स्वभाव को ग्रहण नहीं करता है, (जो) नित्य (है), सर्वोच्च (है) और सकल (पदार्थ-समूह) को जानता है वह ही सन्तुष्ट हुआ (है) (और) मंगल-युक्त (भी) बना है।

[8] जिस (अवस्था) का न (कोई) रंग (है), (जिस अवस्था में) न (कोई) गंध (है), (जिस अवस्था में) न (कोई) (इन्द्रियात्मक) रस (है), जिस (अवस्था) में न (कोई) (कर्णेन्द्रिय सम्बन्धी) शब्द (है), (और) (जिस अवस्था में) न (कोई) (स्पर्शनेन्द्रिय संबंधी) स्पर्श (है), जिस (अवस्था) का न (कोई) जन्म (है) (और न) मरण, (जिस) (अवस्था) (का) न ही (कोई) नाम (है), उस (अवस्था) का (स्वरूप) निष्कलंक (होता है)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

9. जासु ण कोहु ण मोहु मउ जासु ण माय ण माणु ।
जासु ण ठाणु ण झाणु जिय सो जि णिरंजणु जाणु ।।

10. अत्थि ण पुण्णु ण पाउ जसु अत्थि ण हरिसु विसाउ ।
अत्थि ण एक्कु वि दोसु जसु सो जि णिरंजणु भाउ ।।

11. जासु ण धारणु धेउ ण वि जासु ण जंतु ण मंतु ।
जासु ण मंडलु मुद्द ण वि सो मुणि देउँ अणंतु ।।

12. वेयहिँ सत्थहिँ इंदियहिँ जो जिय मुणहु ण जाइ ।
णिम्मल-झाणहँ जो विसउ सो परमप्पु अणाइ ।।

13. जेहउ णिम्मलु णाणमउ सिद्धिहिँ णिवसइ देउ ।
तेहउ णिवसइ बंभु परु देहहँ मं करि भेउ ।।

14. जें दिट्ठें तुट्टंति लहु कम्मइँ पुव्व-कियाइँ ।
सो परु जाणहि जोइया देहि वसंतु ण काइँ ।।

15. जित्थु ण इंदिय-सुह-दुहइँ जित्थु ण मण-वावारु ।
सो अप्पा मुणि जीव तुहुँ अण्णु परिं अवहारु ।।

16. देहादेहहिँ जो वसइ भेयाभेय-णएण ।
सो अप्पा मुणि जीव तुहुँ किं अण्णें बहुएण ।।

17. जीवाजीव म एक्कु करि लक्खण भेएँ भेउ ।
जो परु सो परु भणमि मुणि अप्पा अप्पु अभेउ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[9] जिस (आत्मा) के न क्रोध (है), न मोह (है) (और) (न) मद (है), जिस (आत्मा) के न माया (है) (और) न मान (है), जिस (आत्मा) के लिए (अनुभूति का) (कोई) (विशिष्ट) देश नहीं (है), (जिस) (आत्मा) (के लिए) (प्रयत्नरूप) ध्यान नहीं (है), वह ही आत्मा निष्कलंक (होता है)। (इस बात को) (तुम) जानो।

[10] जिस (अवस्था) में न पुण्य है (और) न पाप, जिस (अवस्था) में न हर्ष है (और) (न) शोक, जिस (अवस्था) में एक भी दोष नहीं है वह ही अवस्था निष्कलंक (होती है)।

[11] जिसके लिए (ध्यान के योग्य) (कोई) अवलम्बन नहीं है, (जिसके लिए) (प्राप्त करने योग्य) (कोई) उद्देश्य भी नहीं (है), जिसके लिए न यन्त्र (उपयोगी) (है) (और) न मन्त्र (उपयोगी) (है), जिसके लिए न ही आसन, (उपयोगी है) न (विशिष्ट) मुद्रा है वह अनन्त (शक्तिवाला) दिव्यात्मा (है) (ऐसा) (तुम) जानो।

[12] जो (निष्कलंक) चैतन्य (है), (उसका ज्ञान) आगमों द्वारा, (आगमों पर आधारित) ग्रन्थों द्वारा (तथा) इन्द्रियों द्वारा नहीं होता है। (तुम) निश्चय ही जानो (कि) जो अनादि परमात्मा (निष्कलंक चैतन्य) (है) वह निर्मल ध्यान का (ही) विषय (होता है)।

[13] जिस तरह का निर्मल (और) ज्ञानमय दिव्यात्मा मोक्ष (पूर्णता की अवस्था) में रहता है उस तरह का (ही) परमात्मा (दिव्यात्मा) (विभिन्न) देहों में रहता है। (तू) भेद मत कर।

[14] जिस (तत्व) के अनुभव किए गए होने के कारण पूर्व में किए गए कर्म शीघ्र नष्ट हो जाते हैं, वह परम (आत्मा) (है) (तू) समझ। हे योगी! (इसके) देह में बसते हुए (भी) (तू) (इसको) क्यों नहीं (देखता है)।

[15] जहाँ इन्द्रिय-सुख-दुख नहीं (हैं), जहाँ मन का व्यापार (भी) नहीं (है), वह (परम) आत्मा (है)। हे जीव! तू (इस बात को) समझ और दूसरी (बात) को पूरी तरह से छोड़ दे।

[16] भेद और अभेद दृष्टि से जो (क्रमशः) देह में और बिना देह के अपने में रहता है वह (परम) आत्मा (है)। हे जीव! (इस बात को) तू समझ। दूसरी बहुत (बात) से क्या (लाभ है)?

[17] (तू) जीव (आत्मा) और अजीव (अनात्मा) को एक मत कर। (इनमें) लक्षण के भेद से (पूर्ण) भेद (है)। हे मनुष्य! (तू) अभेद रूप (विकल्प-रहित) आत्मा को जान। जो (इससे) अन्य है, वह अन्य (ही) (है), (ऐसा) मैं कहता हूँ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

18. अमणु अणिदिउ णाणमउ मुत्ति-विरहिउ चिमित्तु ।
अप्पा इंदिय विसउ णवि लक्खणु एहु णिरुत्तु ।।

19. भव-तणु-भोय-विरत्त-मणु जो अप्पा झाएइ ।
तासु गुरुक्की वेल्लडी संसारिणि तुट्टेइ ।।

20. देहादेवलि जो वसई देउ अणाइ-अणंतु ।
केवल-णाण-फुरंत-तणु सो परमप्पु णिभंतु ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[18] आत्मा मनरहित, इन्द्रिय (समूह से) रहित, मूर्ति-रहित (रूप, रस, गन्ध और स्पर्श-रहित), ज्ञानमय और चैतन्य स्वरूप (है), (यह) इन्द्रियों का विषय नहीं (है)। (आत्मा का) यह लक्षण बताया गया (है)।

[19] जो मन (व्यक्ति) संसार, शरीर और भोगों से उदासीन हुआ (परम) आत्मा का ध्यान करता है, उसकी घनी संसाररूपी (मानसिक तनावरूपी) बेल नष्ट हो जाती है।

[20] जो अनादि (है), अनन्त (है), (जो) देहरूपी मन्दिर में बसता है, (जिसके) केवलज्ञान से चमकता हुआ शरीर (है) वह दिव्य आत्मा (ही) परम आत्मा (है)। (यह)(बात) सन्देहरहित (है)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ-16

पाहुडदोहा

1. गुरु दिणयरु गुरु हिमकरणु गुरु दीवउ गुरु देउ ।
अप्पापरहं परंपरहं जो दरिसावइ भेउ ।।

2. अप्पायत्तउ जं जि सुहु तेण जि करि संतोसु ।
परसुहु वढ चिंततहं हियइ ण फिट्टइ सोसु ।।

3. आभुंजंता विसयसुह जे ण वि हियइ धरंति ।
ते सासयसुहु लहु लहहिं जिणवर एम भणंति ।।

4. ण वि भुंजंता विसय सुह हियडइ भाउ धरंति ।
सालिसित्थु जिम वप्पुडउ णर णरयहं णिवडंति ।।

5. आयई अडवड वडवडइ पर रंजिज्जइ लोउ ।
मणसुद्धइं णिच्चलठियइं पाविज्जइ परलोउ ।।

6. धंधइं पडियउ सयलु जगु कम्मइं करइ अयाणु ।
मोक्खहं कारणु एक्कु खणु ण वि चिंतइ अप्पाणु ।।

7. अण्णु म जाणहि अप्पणउ घरु परियणु तणु इट्ठु ।
कम्मायत्तउ कारिमउ आगमि जोइहिं सिट्ठु ।।

8. जं दुक्खु वि तं सुक्खु किउ जं सुहु तं पि य दुक्खु ।
पइं जिह मोहहिं वसि गयइं तेण ण पायउ मुक्खु ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ-16

पाहुडदोहा

[1] जो देव (समतावान व्यक्ति) (आत्मा के) स्वभाव और परभाव की परम्परा के भेद को समझाता है, वह महान् (होता है) (जिस प्रकार) (प्रकाश और अन्धकार की परम्परा के भेद को दिखानेवाला) सूर्य महान् (होता है), चन्द्रमा महान् (होता है) (तथा) दीपक (भी) महान् (होता है)।

[2] जो भी सुख स्वयं के अधीन (रहता है), (तू) उससे ही सन्तोष कर। हे मूर्ख ! दूसरों के (अधीन) सुख का विचार करते हुए (व्यक्तियों) के हृदय में कुम्हलान (होती है), (जो) (कभी) नहीं मिटती है।

[3] जो (इन्द्रिय-) विषयों (से उत्पन्न) सुखों को सब ओर से भोगते हुए (भी) (उनको) कभी (भी) हृदय में धारण नहीं करते हैं, वे (व्यक्ति) शीघ्र (ही) अविनाशी सुख को प्राप्त करते हैं, इस प्रकार जिनवर (समतावान व्यक्ति) कहते हैं।

[4] (जो) (व्यक्ति) (इन्द्रिय-) विषयों के सुखों को न भोगते हुए भी (उनके प्रति) आसक्ति को हृदय में रखते हैं, (वे) मनुष्य नरकों में गिरते हैं, जैसे बेचारा सालिसित्थ (नरक में) (पड़ा था)।

[5] (जो) (व्यक्ति) आपत्ति में अटपट बड़बड़ाता है (उससे) (तो) लोक (ही) खुश किया जाता है (और कोई लाभ नहीं होता है), किन्तु (आपत्ति में) मन के कषायरहित होने पर (और) अचलायमान और दृढ़ होने पर (यहाँ) पूज्यतम जीवन प्राप्त किया जाता है।

[6] धंधे में पड़ा हुआ सकल जगत ज्ञानरहित (होकर) (हिंसा आदि के) कर्मों को करता है, (किन्तु) मोक्ष (शान्ति) के कारण आत्मा को एक क्षण भी नहीं विचारता है।

[7] घर, नौकर-चाकर, शरीर (तथा) इच्छित वस्तु को अपनी मत जानो, (चूँकि) (वे) (सब) (आत्मा से) अन्य (हैं)। (वे) (सब) कर्मों के अधीन बनावटी (स्थिति) (है)। (ऐसा) योगियों द्वारा आगम में बताया गया है।

[8] हे जीव ! (तू) आसक्ति के कारण परतन्त्रता में डूबा है। (इस कारण से) जो दुःख (है) वह (तेरे द्वारा) सुख (ही) माना गया (है) और जो (वास्तविक) सुख (है) वह (तेरे द्वारा) दुःख ही (समझा गया है)। इसलिए तेरे द्वारा परम शान्ति प्राप्त नहीं की गई (है)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

9. मोक्खु ण पावहि जीव तुहुं धणु परियणु चिंततु ।
तो इ विचिंतहि तउ जि तउ पावहि सुक्खु महंतु ।।

10. मूढा सयलु वि कारिमउ मं फुडु तुहुं तुस कंडि ।
सिवपइ णिम्मलि करहि रइ घरु परियण लहु छंडि ।।

11. विसयसुहा दुइ दिवहडा पुणु दुक्खहं परिवाडि ।
भुल्लउ जीव म वाहि तुहुं अप्पाखंधि कुहाडि ।।

12. उव्वलि चोप्पडि चिट्ठ करि देहि सुमिट्ठाहार ।
सयल वि देह णिरत्थ गय जिह दुज्जणउवयार ।।

13. अथिरेण थिरा मइलेण णिम्मला णिग्गुणेण गुणसारा ।
काएण जा विढप्पइ सा किरिया किण्ण कायव्वा ।।

14. अप्पा बुज्झिउ णिच्चु जइ केवलणाणसहाउ ।
ता पर किज्जइ काइं वढ तणु उप्परि अणुराउ ।।

15. जसु मणि णाणु ण विप्फुरइ कम्महं हेउ करंतु ।
सो मुणि पावइ सुक्खु ण वि सयलइं सत्थ मुणंतु ।।

16. बोहिविवज्जिउ जीव तुहुं विवरिउ तच्चु मुणेहि ।
कम्मविणिम्मिय भावडा ते अप्पाण भणेहि ।।

17. ण वि तुहुं पंडिउ मुक्खु ण वि ण वि ईसरु ण वि णीसु ।
ण वि गुरु कोइ वि सीसु ण वि सव्वइं कम्मविसेसु ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[9] हे जीव ! तू धन (और) नौकर-चाकर को मन में रखते हुए शान्ति नहीं पायेगा । आश्चर्य ! तो भी (तू) उनको-उनको ही मन में लाता है (और) (उनसे) विपुल सुख (व्यर्थ में) (ही) पकड़ता है ।

[10] हे मूढ़! (यह) सब (संसारी वस्तु-समूह) ही बनावटी (है) । (इसलिए) तू (इस) स्पष्ट (वस्तुरूपी) भूसे को मत कूट (अर्थात् तू इसमें समय मत गवाँ) घर (और) नौकर-चाकर को शीघ्र छोड़कर तू निर्मल शिवपद (परम शान्ति) में अनुराग कर ।

[11] (इन्द्रिय-) विषय-सुख दो दिन के (हैं), और फिर दुःखों का क्रम (शुरू हो जाता है) । हे (आत्म-स्वभाव को) भूले हुए जीव ! तू अपने कंधे पर कुल्हाड़ी मत चला ।

[12] (तू) (चाहे) (शरीर का) उपलेपन कर, (चाहे) घी, तेल आदि लगा, (चाहे), सुमधुर आहार (उसको) खिला, (और) (चाहे) (उसके लिए) (और भी) (नाना प्रकार की) चेष्टाएँ कर, (किन्तु) देह के लिए (किया गया) सब कुछ ही व्यर्थ हुआ (है), जिस प्रकार दुर्जन के प्रति (किया गया) उपकार (व्यर्थ होता है) ।

[13] अस्थिर, मलिन और गुणरहित शरीर से जो स्थिर, निर्मल और गुणों (की प्राप्ति) के लिए श्रेष्ठ (स्व-पर उपकारक) क्रिया उदय होती है, वह क्यों नहीं की जानी चाहिए ?

[14] यदि आत्मा नित्य और केवलज्ञान स्वभाववाली समझी गई (है), तो हे मूर्ख ! (इस आत्मा से) भिन्न शरीर के ऊपर आसक्ति क्यों की जाती है ?

[15] जिस (मुनि) के हृदय में (आध्यात्मिक) ज्ञान नहीं फूटता है, वह मुनि सभी शास्त्रों को जानते हुए भी सुख नहीं पाता है (और) विभिन्न कर्मों (मानसिक तनावों) के कारणों को करता हुआ ही (जीता है) ।

[16] आध्यात्मिक ज्ञान (से रहित) के बिना हे जीव ! तू (आत्म-) तत्व को असत्य मानता है । (तथा) कर्मों से रचित उन (शुभ-अशुभ) चित्तवृत्तियों को (तू) स्वयं की (चित्तवृत्ति) समझता है ।

[17] (हे मनुष्य) ! न ही तू पंडित (है), न ही (तू) मूर्ख (है), न ही (तू) धनी (है), न ही (तू) निर्धन (है), न ही (तू) गुरु (है) । कोई शिष्य (भी) नहीं (है) । (ये) सभी (बातें) कर्मों की विशेषता (है) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

18. ण वि तुहुं कारणु कज्जु ण वि ण वि सामिउ ण वि भिच्चु ।
सूरउ कायरु जीव ण वि ण वि उत्तमु ण वि णिच्चु ।।

19. पुण्णु वि पाउ वि कालु णहु धम्मु अहम्मु ण काउ ।
एक्कु वि जीव ण होहि तुहुं मिल्लिवि चेयणभाउ ।।

20. ण वि गोरउ ण वि सामलउ ण वि तुहुं एक्कु वि वण्णु ।
ण वि तणुअंगउ थूलु ण वि एहउ जाणि सवण्णु ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[18] हे मनुष्य ! न ही तू कारण (है), न ही (तू) कार्य (है), न ही (तू) स्वामी (है), न ही (तू) नौकर (है), न ही (तू) शूरवीर (है), (न ही) (तू) कायर (है), न ही (तू) उच्च (है) और न ही (तू) नीच (है)।

[19] हे मनुष्य ! तू पुण्य, पाप और मृत्यु नहीं (है)। (तू) धर्म, अधर्म और शरीर नहीं (है)। (वास्तव में) (तू) ज्ञानात्मक स्वरूप को छोड़कर कुछ भी नहीं है।

[20] (हे मनुष्य) ! (तू) न गोरा (है), न काला (है)। इस प्रकार (तेरा) कोई भी वर्ण नहीं है। (तू) न ही दुर्बल अंगवाला (है) और न ही स्थूल (शरीरवाला) है। (अतः) तू स्ववर्ण (स्व-रूप) को समझ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ-17

सावयधम्मदोहा

1. दुज्जणु सुहियउ होउ जगि सुयणु पयासिउ जेण ।
अमिउ विसें वासरु तमिण जिम मरगउ कच्चेण ।।

2. जिह समिलहिं सायरगयहिं दुल्लहु जूयहु रंधु ।
तिह जीवहं भवजलगयहं मणुयत्तणि संबंधु ।।

3. मणवयकायहिं दय करहि जेम ण ढुक्कइ पाउ ।
उरि सण्णाहें बद्धइण अवसि ण लग्गइ घाउ ।।

4. पसुधणधण्णइं खेत्तियइं करि परिमाणपवित्ति ।
बलियइं बहुयइं बंधणइं दुक्करु तोडहुं जंति ।।

5. भोगहं करहि पमाणु जिय इंदिय म करि सदप्प ।
हुंति ण भल्ला पोसिया दुद्धें काला सप्प ।।

6. दाणु कुपत्तहं दोसडइ बोल्लिज्जइ ण हु भंति ।
पत्थरु पत्थरणाव कहिं दीसइ उत्तारंति ।।

7. जइ गिहत्थु दाणेण विणु जगि पभणिज्जइ कोइ ।
ता गिहत्थु पंखि वि हवइ जें घरु ताह वि होइ ।।

8. काइं बहुत्तइं संपयइं जइ किविणहं घरि होइ ।
उवहिणीरु खारें भरिउ पाणिउ पियइ ण कोइ ।।

9. पत्तहं दिण्णउ थोवडउ रे जिय होइ बहुत्तु ।
वडह बीउ धरणिहिं पडिउ वित्थरु लेइ महंतु ।।

10. काइं बहुत्तइं जंपियइं जं अप्पहु पडिकूलु ।
काइं मि परहु ण तं करहि एहु जि धम्महु मूलु ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ-17

सावयधम्मदोहा

[1] (वह) दुर्जन जग में सुखी होवे जिसके द्वारा सज्जन विख्यात किया गया (है), जिस प्रकार अमृत विष के द्वारा, दिन अन्धकार के द्वारा (और) मरकत मणि (पन्ना) काँच से (विख्यात किया गया है)।

[2] जिस प्रकार सागर में लुप्त समिला (लकड़ी की खील) के लिए जुँवे का छिद्र दुर्लभ है, उसी प्रकार संसाररूपी पानी (सागर) में पड़े हुए जीवों के लिए मनुष्यत्व से सम्बन्ध (दुर्लभ) (है)।

[3] मन-वचन-काय से दया करो जिससे पाप प्रवेश न करे, छाती में बँधे हुए कवच के कारण निश्चय ही घाव नहीं लगता है।

[4] पशु, धन, धान्य (और) खेत में परिमाण से प्रवृत्ति कर। (ठीक ही है) बहुत गाढ़े बन्धन तोड़ने के लिए कठिन होते हैं।

[5] हे मनुष्य! भोगों का परिमाण कर। इन्द्रियों को दम्भी मत बना। काले सर्प (यदि) दूध से पाले गये (हैं) (तो भी) अच्छे नहीं होते हैं।

[6] कुपात्रों के लिए दान दूषण (ही) कहा जाता है। (इसमें) निश्चय ही भ्रांति नहीं (है)। प थर की नाव पत्थर को पार पहुँचाती हुई (क्या) कहीं देखी गई है?

[7] यदि दान के बिना जगत में कोई गृहस्थ कहा जाता है, तो पक्षी भी गृहस्थ हो जावेगा, चूँकि घर उसके भी होता है।

[8] (उस) बहुत सम्पदा से क्या (लाभ है) जो कृपणों के घर में होती है? समुद्र का जल खार से भरा हुआ (रहता है) (इसलिए) (उस) पानी को कोई नहीं पीता है।

[9] हे मनुष्य! पात्रों के लिए थोड़ा (कुछ) दिया हुआ (भी) बहुत होता है। पृथ्वी पर पड़ा हुआ वट का (छोटा सा) बीज बड़ा विस्तार ले लेता है।

[10] बहुत कहे गये से क्या (लाभ)? जो अपने लिए प्रतिकूल (है) उसको कैसे भी (किसी भी तरह) दूसरों के लिए मत करो। यह ही धर्म का मूल है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

11. धम्मु विसुद्धउ तं जि पर जं किज्जइ काएण ।
अहवा तं धणु उज्जलउ जं आवइ णाएण ।।

12. अवरु वि जं जहिं उवयरइ तं उवयारहि तित्थु ।
लइ जिय जीवियलाहडउ देहु म लेहु णिरत्थु ।।

13. एक्कहिं इंदियमोक्कलउ पावइ दुक्खसयाइं ।
जसु पुणु पंच वि मोक्कला तसु पुच्छिज्जइ काइं ।।

14. जइ इच्छहि संतोसु करि जिय सोक्खहं विउलाहं ।
अह वा णंदु ण को करइ रवि मेल्लिवि कमलाहं ।।

15. मणुयत्तणु दुल्लहु लहिवि भोयहं पेरिउ जेण ।
इंधणकज्जें कप्पयरु मूलहो खंडिउ तेण ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[11] वह ही धर्म शुद्ध (है) जो पूरी तरह (स्व) काया से (अपने आप से) किया जाता है। (और) वह (ही) धन उज्ज्वल (है) जो न्याय से आता है।

[12] और भी जो (मनुष्य) जहाँ (जैसा) उपकार कर सकता है वह वहाँ (वैसा) उपकार करे। हे मनुष्य ! (तू) जीवन के लाभ को ग्रहण करके देह को निरर्थक मत बना।

[13] अनियन्त्रित इन्द्रिय (जब) एक (विषय) में (ही लीन होती है) तो (व्यक्ति) सैकड़ों दुःखों को प्राप्त करता है। फिर जिसकी पाँचों (ही इन्द्रियाँ) स्वच्छन्द हैं, उस (व्यक्ति) का क्या पूछा जाए ?

[14] हे मनुष्य ! यदि (तू) विपुल सुखों को चाहता है, (तो) सन्तोष कर। सूर्य को छोड़कर उन कमलों के लिए और कौन हर्ष (प्रदान) करता है ?

[15] दुर्लभ मनुष्य-जन्म को पाकर जिसके द्वारा (वह) भोगों के लिए लगा दिया गया (है) उसके द्वारा ईंधन के प्रयोजन से कल्पतरु मूल से काटा गया (है)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्याकरणिक विश्लेषण
एवं
शब्दार्थ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकेत-सूची

अक —अकर्मक क्रिया

अनि —अनियमित

आज्ञा —आज्ञा

कर्म —कर्मवाच्य

क्रिविअ —क्रिया विशेषण अव्यय

प्रे —प्रेरणार्थक क्रिया

भवि —भविष्यत्काल

भाव —भाववाच्य

भूकृ —भूतकालिक कृदन्त

व —वर्तमानकाल

वकृ —वर्तमान कृदन्त

वि —विशेषण

विधि — विधि

विधिकृ —विधिकृदन्त

स —सर्वनाम

संकृ —सम्बन्धक कृदन्त

सक —सकर्मक क्रिया

सवि —सर्वनाम विशेषण

स्त्री —स्त्रीलिंग

हेकृ —हेत्वर्थक कृदन्त

- ( ) —इस प्रकार के कोष्ठक में मूल शब्द रखा गया है।
- [( )+( )+( )...] इस प्रकार के कोष्ठक के अन्दर + चिह्न शब्दों में संधि का द्योतक है। यहाँ अन्दर के कोष्ठकों में मूल शब्द ही रखे गए हैं।
- [( )—( ) ( )....] इस प्रकार के कोष्ठक के अन्दर '—' चिह्न समास का द्योतक है।
- [[( )—( )-( )] वि] जहाँ समस्तपद विशेषण का कार्य करता है वहाँ इस प्रकार के कोष्ठक का प्रयोग किया गया है।
- जहाँ कोष्ठक के बाहर केवल संख्या (जैसे 1/1, 2/1....आदि) ही लिखी है वहाँ उस कोष्ठक के अन्दर का शब्द **'संज्ञा'** है।
- जहां कर्मवाच्य, कृदन्त आदि अपभ्रंश के नियमानुसार नहीं बने हैं वहां कोष्ठक के बाहर **अनि'** भी लिखा गया है।

1/1 **अक या सक** —उत्तम पुरुष/एकवचन

1/2 **अक या सक**—उत्तम पुरुष/बहुवचन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

2/1 अक या सक—मध्यम पुरुष/एकवचन
2/2 अक या सक—मध्यम पुरुष/बहुवचन
3/1 अक या सक—अन्य पुरुष/एकवचन
3/2 अक या सक—अन्य पुरुष/बहुवचन
1/1—प्रथमा/एकवचन
1/2—प्रथमा/बहुवचन
2/1—द्वितीया/एकवचन
2/2 – द्वितीया/बहुवचन
3/1—तृतीया/एकवचन
3/2—तृतीया/बहुवचन

4/1—चतुर्थी/एकवचन
4/2—चतुर्थी/बहुवचन
5/1—पंचमी/एकवचन
5/2—पंचमी/बहुवचन
6/1—षष्ठी/एकवचन
6/2—षष्ठी/बहुवचन
7/1—सप्तमी/एकवचन
7/2—सप्तमी/बहुवचन
8/1—संबोधन/एकवचन
8/2—संबोधन/बहुवचन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्याकरणिक विश्लेषण एवं शब्दार्थ

पाठ–1

पउमचरिउ

सन्धि–22

	कोसलणन्दणेण	[(कोसल)–(णन्दण) 3/1]	कोशलनगर के (राज-) पुत्र द्वारा
	स-कलत्तें	[(स) वि–(कलत्त) 3/1]	पत्नी सहित
	णिय-घरु	[(णिय) वि–(घर) 1/1]	अपने घर
	आएं	(आअ) भूकृ 3/1 अनि	पहुँचे हुए (के द्वारा)
	आसाढट्ठमिहिँ	[(आसाढ) + (अट्ठमिहिँ)] [(आसाढ)–(अट्ठमी) 7/1]	अषाढ की अष्टमी के दिन
	किउ	(किअ) भूकृ 1/1 अनि	किया गया
	ण्हवणु	(ण्हवण) 1/1	अभिषेक
	जिणिन्दहो	(जिणिन्द) 6/1	जिनेन्द्र का
	राएं	(राअ) 3/1	राजा के द्वारा

22.1

1.	सुर-समर-सहासेंहि	[(सुर)–(समर)–(सहास[1]) 3/2]	देवताओं के साथ हजारों युद्धों में
	दुम्महेण	(दुम्मह) 3/1 वि	कठिनाई से मारे जानेवाले
	किउ	(किअ) भूकृ 1/1 अनि	किया गया
	ण्हवणु	(ण्हवण) 1/1	अभिषेक
	जिणिन्दहो	(जिणिन्द) 6/1	जिनेन्द्र का
	दसरहेण	(दसरह) 3/1	दशरथ के द्वारा
2.	पट्ठवियइँ	(पट्ठव) भूकृ 1/2	भेजा गया
	जिण-तणु-धोवयाइँ	[(जिण)–(तणु)–(धोवय) 1/2 वि]	जिनेश्वर के तन को धोनेवाला
	देविहिँ[2]	(देवी) 4/2	देवियों के लिए
	दिव्वइँ	(दिव्व) 1/2 वि	दिव्य
	गन्धोदयाइँ	(गन्धोदय) 1/2	गन्धोदक
3.	सुप्पहहे	(सुप्पहा) 6/1	सुप्रभा के
	णवर	अव्यय	केवल

---

1. कभी-कभी सप्तमी के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हेम प्राकृत व्याकरण 3–137)।
2. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 151।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	कञ्चुइ	(कञ्चुइ) 1/1	कञ्चुकी
	ण	अव्यय	नहीं
	पत्तु	(पत्त) भूकृ 1/1 अनि	पहुँचा
	पहु	(पहु) 1/1	स्वामी (राजा)
	पभणइ	(पभण) व 3/1 सक	कहता है
	रहसुच्छलिय-गत्तु	[(रहस)+(उच्छलिय)+(गत्तु)] [[(रहस)–(उच्छल→उच्छलिय) भूकृ–(गत्त) 1/1]वि]	हर्ष से पुलकित शरीरवाले
4.	कहे	(कह) विधि 2/1 सक	कहो
	काइँ	अव्यय	क्यों
	णियम्बिणि	(णियम्बिणी) 8/1	हे स्त्री
	मणे	(मण) 7/1	मन में
	विसण्ण	(विसण्ण→(स्त्री)विसण्णा) भूकृ 1/1 अनि	दुःखी
	चिर-चित्तिय	[(चिर)वि–(चित्तिय) भूकृ 1/1 अनि]	पुरानी चित्रित
	भित्ति	(भित्ति) 1/1	भीत
	व	अव्यय	की तरह
	थिय	(थिय→(स्त्री)थिया)भूकृ 1/1 अनि	स्थिर
	विवण्ण	(विवण्ण→(स्त्री)विवण्णा) 1/1 वि	निस्तेज
5.	पणवेप्पिणु	(पणव) संकृ	प्रणाम करके
	वुच्चइ	(वुच्चइ) व कर्म 3/1 सक अनि	कहा जाता है
	सुप्पहाए	(सुप्पहा) 3/1	सुप्रभा के द्वारा
	किर	(अव्यय) सम्बोधनार्थक	हे प्रभु
	काइँ	(काइँ) 1/1 सवि	क्या
	महु	(अम्ह) 6/1 स	मेरे
	तणियए	(तणिया) 3/1 वि	सम्बन्धार्थक परसर्ग विशेषण
	कहाए	(कहा) 3/1	चर्चा से
6.	जइ	अव्यय	यदि
	हउँ	(अम्ह) 1/1 स	मैं
	जे	अव्यय	भी
	पाणवल्लहिय	[(पाण)+(वल्लहा)+(इय)] [(पाण)–(वल्लहा) 1/1]	प्राणों से प्यारी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	इव = अव्यय	इस प्रकार
देव	(देव) 8/1	हे देव
तो	अव्यय	तो
गन्ध-सलिलु	[(गन्ध)-(सलिल) 2/1]	गन्धोदक
पावइ	(पाव) व 3/1 सक	पाती है
ण	अव्यय	नहीं
केम	अव्यय	क्यों

7.	तहिं	(त) 7/1 सवि	उसी
	अवसरे	(अवसर) 7/1	समय पर
	कञ्चुइ	(कञ्चुइ) 1/1	कञ्चुकी
	ढुक्कु	(ढुक्क) भूकृ 1/1 अनि	पहुँचा
	पासु	(पास) 2/1	पास
	छण-ससि	[(छण)-(ससि) 1/1]	शरद की पूर्णिमा के चन्द्रमा
	व	अव्यय	की तरह
	णिरन्तर-धवलियासु	[(णिरन्तर)+(धवलिय)+(आसु)] [[(णिरन्तर) वि-(धवलिय) भूकृ - (आस) 1/1] वि]	निरन्तर सफेद किया गया मुख

8.	गय-दन्तु	[[(गय) भूकृ अनि - (दन्त) 1/1] वि]	दन्त (-समूह) टूट गया
	अयंगमु	(अयंगम) 1/1 वि	जड़
	दंड-पाणि	[[(दंड)-(पाणि) 1/1] वि]	हाथ में लकड़ी (वाला)
	अणियच्छिय-पहु	[[(अणियच्छिय) भूकृ - (पहु) 1/1] वि]	न देखा गया (अदृष्ट)-पथ
	पक्खलिय-वाणि	[[(पक्खलिय) भूकृ - (वाणी) 1/1] वि]	लड़खड़ाती हुई वाणी (वाला)

9.	गरहिउ	(गरह) भूकृ 1/1	निन्दा किया गया
	दसरहेण	(दसरह) 3/1	दशरथ के द्वारा
	पइँ	(तुम्ह) 3/1 स	तुम्हारे द्वारा
	कञ्चुइ	(कञ्चुइ) 8/1	हे कञ्चुकी
	काइँ	अव्यय	क्यों
	चिराविउ	(चिराव) भूकृ 1/1	देर की गयी
	जलु	(जल) 1/1	गन्धोदक
	जिण-वयणु	[(जिण)-(वयण) 1/1]	जिन-वचन
	जिह	अव्यय	के सदृश

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

सुप्पहहे[1]	(सुप्पहा) 6/1	सुप्रभा के द्वारा
दवत्ति	अव्यय	शीघ्र
ण	अव्यय	नहीं
पाविउ	(पाव) भूकृ 1/1	पाया गया

22.2

1.	पणवेप्पिणु	(पणव) संकृ	प्रणाम करके
	तेएा	(त) 3/1 स	उसके द्वारा
	वि	अव्यय	भी
	वुत्तु	(वुत्त) भूकृ 1/1 अनि	कहा गया
	एम	अव्यय	इस प्रकार
	गय	(गय) भूकृ 1/2 अनि	चले गए
	दियहा	(दियह) 1/2	दिन
	जोव्वणु	(जोव्वण) 1/1	यौवन
	ल्हसिउ	(ल्हस) भूकृ 1/1	खिसक गया
	देव	(देव) 8/1	हे देव
2.	पढमाउसु	[(पढम)+(आउसु)] [(पढम) वि-(आउस) 2/1]	प्रारम्भिक आयु को
	जर	(जरा) 1/1	बुढ़ापा
	धवलन्ति	(धवल→धवलन्त→(स्त्री)धवलन्ती) वकृ 1/1	सफेद करता हुआ
	आय	(आय) भूकृ 1/1 अनि	आ गया
	पुणु	अव्यय	और
	असइ	(असइ) 1/1	कुलटा
	व	अव्यय	की तरह
	सीस-वलग्ग	[(सीस)-(वलग्ग) 1/1 वि]	सिर पर चढ़ा हुआ
	जाय	(जाय) भूकृ 1/1 अनि	विद्यमान
3.	गइ	(गइ) 1/1	गति
	तुट्टिय	(तुट्ट→तुट्टिय→(स्त्री)तुट्टिया) भूकृ 1/1	टूट गयी
	विहडिय	(विहड) भूकृ 1/2	खुल गए
	सन्धि-बन्ध	[(सन्धि)-(बन्ध) 1/2]	हड्डियों के जोड़ों के बन्धन
	ण	अव्यय	नहीं
	सुणन्ति	(सुण) व 3/2 सक	सुनते हैं

---

1. कभी-कभी तृतीया के स्थान पर षष्ठी का प्रयोग किया जाता है (हे. प्रा. व्या. 3-134)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	कण्ण	(कण्ण) 1/2	कान
	लोयण	(लोयण) 1/2	आंखें
	णिरन्ध	(णिरन्ध) 1/2 वि	बिल्कुल अंधी
4	सिरु	(सिर) 1/1	सिर
	कम्पइ	(कम्प) व 3/1 अक	हिलता है
	मुहे	(मुह) 7/1	मुख में
	पक्खलइ	(पक्खल) व 3/1 अक	लड़खड़ाती है
	वाय	(वाया) 1/1	वाणी
	गय	(गय) भूकृ 1/2 अनि	टूट गए
	दन्त	(दन्त) 1/2	दाँत
	सरीरहो	(सरीर) 6/1	शरीर की
	णट्ठ	(णट्ठ→(स्त्री)णट्ठा) भूकृ 1/1 अनि	नष्ट हो चुकी
	छाय	(छाया) 1/1	कान्ति
5.	परिगलिउ	(परिगल) भूकृ 1/1	क्षीण हो चुका
	रुहिरु	(रुहिर) 1/1	खून
	थिउ	(थिअ) भूकृ 1/1 अनि	रह गयी
	णवर	अव्यय	केवल
	चम्मु	(चम्म) 1/1	चमड़ी
	महु	(अम्ह) 6/1 स	मेरा
	एत्थु	अव्यय	यहाँ
	जे	अव्यय	ही
	हुउ	(हुअ) भूकृ 1/1	हुआ
	णं	अव्यय	मानो
	अवरु	(अवर) 1/1 वि	दूसरा
	जम्मु	(जम्म) 1/1	जन्म
6.	गिरि-णइ-पवाह	[(गिरि)-(णइ)-(पवाह) 2/1]	पर्वतीय नदी के (समान) प्रवाह को
	ण	अव्यय	नहीं
	वहन्ति	(वह) व 3/2 सक	धारण करते हैं
	पाय	(पाय) 1/2	पैर
	गन्धोवउ	(गन्धोवअ) 2/1	गन्धोदक को
	पावउ	(पाव) विधि 3/1 सक	पावे
	केम	अव्यय	किस प्रकार
	राय	(राय) 8/1	हे राजा
7.	वयणेण	(वयण) 3/1	कथन से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	तेण	(त) 3/1 सवि	उस
	किउ	(किअ) भूकृ 1/1 अनि	किया गया
	पहु-वियप्पु	[(पहु)-(वियप्प) 1/1]	राजा के द्वारा विचार
	गउ	(गअ) भूकृ 1/1 अनि	प्राप्त हुए
	परम-विसायहो[1]	[(परम) वि-(विसाय) 6/1]	अत्यन्त दुःख को
	राम-वप्पु	[(राम)-(वप्प) 1/1]	राम के पिता
8.	सच्चउ	(सच्चअ) 1/1	सत्य
	चलु	(चल) 1/1 वि	चंचल
	जीविउ	(जीविअ) 1/1	जीवन
	कवणु	(कवण) 1/1 सवि	कौनसा
	सोक्खु	(सोक्ख) 1/1	सुख
	तं	(त) 1/1 स	वह
	किज्जइ	(किज्जइ) व कर्म 3/1 सक अनि	अनुभव किया जाता है
	सिज्झइ	(सिज्झ) व 3/1 अक	सिद्ध होता है
	जेण	(ज) 3/1 स	जिससे
	मोक्खु	(मोक्ख) 1/1	मोक्ष
9.	सुहु	(सुह) 1/1	सुख
	महु-विन्दु-समु	[(महु)-(विन्दु)-(सम) 1/1 वि]	मधु की बिन्दु के समान
	दुहु	(दुह) 1/1	दुःख
	मेरु-सरिसु	[(मेरु)-(सरिस) 1/1 वि]	मेरु पर्वत के समान
	पवियम्भइ	(पवियम्भ) व 3/1 अक	लगता है
	वरि	अव्यय	अच्छा
	तं	(त) 1/1 सवि	वह
	कम्मु	(कम्म) 1/1	कर्म
	किउ	(किअ) भूकृ 1/1 अनि	किया हुआ
	जं	अव्यय	जिससे
	पउ	(पअ) 1/1	पद
	अजरामरु	[(अजर) वि-(अमर) 1/1 वि]	अजर-अमर
	लब्भइ	(लब्भइ) व कर्म 3/1 सक अनि	प्राप्त किया जाता है

22.3

1.	कं	(क) 1/1 सवि	किसी
	दिवसु	(दिवस) 1/1	दिन
	वि	अव्यय	ही

1. कभी-कभी द्वितीया के स्थान पर षष्ठी का प्रयोग पाया जाता है (हे. प्रा. व्या. 3-134)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होसइ	(हो) भवि 3/1 अक	होगी
आरिसाहुँ	(आरिस) 6/2 वि	ऐसे (लोगों) के
कञ्चुइ-ग्रवत्थ	[(कञ्चुइ)-(अवत्था) 1/1]	कञ्चुकी की अवस्था
अम्हारिसाहुँ	(अम्हारिस) 6/2 वि	हम जैसों की

2.	को	(क) 1/1 सवि	कौन
	हउँ	(अम्ह) 1/1 स	मैं
	का	(का) 6/1 सवि	किसकी
	महि	(मही) 1/1	पृथ्वी
	कहो	(क) 6/1 स	किसका
	तणउ	अव्यय	सम्बन्धवाचक परसर्ग
	दव्वु	(दव्व) 1/1	धन
	सिंहासणु	(सिंहासण) 1/1	सिंहासन
	छत्तइँ	(छत्त) 1/2	छत्र
	अथिरु	(अथिर) 1/1 वि	अस्थिर
	सव्वु	(सव्व) 1/1 सवि	सभी
3.	जोव्वणु	(जोव्वण) 2/1	यौवन
	सरीरु	(सरीर) 2/1	शरीर
	जीविउ	(जीविअ) 2/1	जीवन को
	धिगत्थु	[(धिग)+(अत्थु)] धिग=अव्यय	धिक्कार,
		अत्थु (अत्थ) 2/1	धन
	संसारु	(संसार) 1/1	संसार
	असारु	(असार) 1/1 वि	असार
	अणत्थु	(अणत्थ) 1/1 वि	हानिकारक
	अत्थु	(अत्थ) 1/1	धन
4.	विसु	(विस) 1/1	विष
	विसय	(विसय) 1/1	विषय (भोग)
	बन्धु	(बन्धु) 1/1	बन्धु (परिवारजन)
	दिढ-बन्धणाइँ	[(दिढ)-(बन्धण) 1/2]	कठोर बन्धन
	घर-दाराइँ	[(घर)-(दार) 1/2]	घर और पत्नी
	परिहव-कारणाइँ	[(परिहव)-(कारण) 1/2]	दुःख देने के कारण
5	सुय	(सुय) 1/2	सुत (पुत्र)
	सत्तु	(सत्तु) 1/2	शत्रु
	विढत्तउ	(विढत्तअ) 2/1 वि अ स्वा.	उपार्जित (धन) को
	अवहरन्ति	(अवहर) व 3/2 सक	छीन लेते हैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	जर-मरणहँ[1]	[(जरा→जर)-(मरण) 6/1][2]	बुढ़ापे और मरणके अवसर पर
	किङ्कर	(किङ्कर) 1/2	नौकर-चाकर
	किं	(क) 1/1 सवि	क्या
	करन्ति	(कर) व 3/2 सक	करते हैं
6.	जीवाउ	[(जीव)+(आउ)] [(जीव)-(आउ) 1/1]	जीव की आयु
	वाउ	(वाउ) 1/1	हवा
	हय	(हय) 1/2	घोड़े
	हय	(हय) भूकृ 1/2 अनि	मारे गए
	वराय	(वराय) 1/2 वि	बेचारे
	सन्दण	(सन्दण) 1/2	रथ
	सन्दण	(सन्दण) 1/2 वि	टूटनेवाले
	गय	(गय) भूकृ 1/2 अनि	मरे हुए
	गय	(गय) भूकृ 1/2 अनि	गए
	जे	अव्यय	ही
	णाय	[(ण)+(आय)] ण (अव्यय) आय (आय) भूकृ 1/2 अनि	नहीं, लौटे
7.	तणु	(तणु) 1/1	शरीर
	तणु	(तण) 1/1	तृण
	जे	अव्यय	ही
	खणद्धें[3]	(खणद्ध) 3/1	आधे क्षण में
	खयहो[4]	(खय) 6/1	क्षय को
	जाइ	(जा) व 3/1 सक	प्राप्त होता है
	धणु	(धण) 1/1	धन
	धणु	(धणु) 1/1	धनुष
	जि	अव्यय	पादपूरक
	गुणेण	(गुण) 3/1	प्रत्यञ्चा से
	वि	अव्यय	पादपूरक
	वंकु	(वङ्क) 1/1 वि	बांका
	थाइ	(था) व 3/1 अक	रहता है

1. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 151।
2. कभी-कभी षष्ठी का प्रयोग सप्तमी के स्थान पर पाया जाता है (हे. प्रा. व्या. 3-134)।
3. कभी-कभी सप्तमी के अर्थ में तृतीया प्रयुक्त होती है (हे. प्रा. व्या. 3-137)।
4. कभी-कभी षष्ठी द्वितीया के अर्थ में प्रयुक्त होती है (हे. प्रा. व्या. 3-134)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

8	दुहिया	(दुहिया) 1/1	पुत्री
	वि	अव्यय	पादपूरक
	दुहिय	(दुहिय→(स्त्री) दुहिया) 1/1 वि	दुःखी करनेवाली
	माया	(माया) 1/1	मोह-जाल
	वि	अव्यय	पादपूरक
	माय	(माया) 1/1	माता
	सम-भाउ	[(सम) वि-(भाअ)2/1]	समान-हिस्सा
	लेन्ति	(ले) व 3/2 सक	लेते हैं
	किर	अव्यय	चूँकि
	तेण	अव्यय	इसलिए
	भाय	(भाय) 1/2	भाई
9.	आयइँ	(आय) 2/2 सवि	इनको
	अवर	(अवर) 2/2 वि	दूसरे (अन्य)
	इ	अव्यय	पादपूरक
	मि	अव्यय	भी
	सव्वइँ	(सव्व) 2/2 सवि	सबको
	राहवहो	(राहव) 4/1	राम के लिए (को)
	समप्पेवि	(समप्प+एवि) संकृ	देकर
	अप्पुणु	(अप्पुण) 1/1 स	स्वयं
	तउ	(तअ) 2/1	तप
	करमि	(कर) व 1/1 सक	करता हूँ (करूँगा)
	थिउ	(थिअ) भूकृ 1/1 अनि	स्थिर हुए
	दसरहु	(दसरह) 1/1	दशरथ
	एम	अव्यय	इस प्रकार
	वियप्पेवि	(वियप्प+एवि) संकृ	विचार करके

22.7

9.	दसरहु	(दसरह) 1/1	दशरथ
	अण्ण-दिणे	[(अण्ण) वि-(दिण) 7/1]	दूसरे दिन
	किर	अव्यय	पादपूरक
	रामहो	(राम) 4/1	राम के लिए (को)
	रज्जु	(रज्ज) 2/1	राज्य
	समप्पइ	(समप्प) व 3/1 सक	देता है (देते हैं)
	केक्कय	(केक्कया) 1/1	केकय देश के राजा की कन्या
	ताव	अव्यय	तब

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणे	(मण) 7/1	मन में
उण्हालए	[(उण्ह)+(आलए)] [(उण्ह)-(आलअ) 7/1 'अ' स्वा.]	ग्रीष्म-काल
धरणि	(धरणि) 1/1	धरती
व	अव्यय	जैसे
तप्पइ	(तप्प) व 3/1 अक	तपती है

22.8

1.	णरिन्दस्स	(णरिन्द) 6/1	राजा (दशरथ) के
	सोऊण	(सोऊण) संकृ अनि	सुनकर
	पव्वज्ज-यज्जं	[(पव्वज्जा (स्त्री)→पव्वज्ज)-(यज्ज)2/1]	संन्यास-विधान को
	स-रामाहिरामस्स	[(स)+(रामा)+(अहिरामस्स)] [(स) वि-(रामा)-(अहिराम) 4/1 वि]	पत्नीसहित, आकर्षक
	रामस्स	(राम) 4/1	राम के लिए
	रज्जं	(रज्ज) 2/1	राज्य को
2.	ससा	(ससा) 1/1	बहिन
	दोणरायस्स	(दोणराय) 6/1	द्रोणराजा की
	भग्गाणुराया	[(भग्ग)+(अणुराया)] [(भग्ग) भूकृ अनि-(अणुराया) 1/1 वि]	टूट गया, स्नेह
	तुलाकोडि-कन्ती-लयालिद्ध-पाया	[[(तुलाकोडि)-(कन्ति→कन्ती)-(लया)-(लिद्ध) भूकृ अनि-(पाय) 1/2] वि]	नूपुरों से, कान्तिसहित, लतारूपी, लिपटे हुए, पैर
6.	गया	(गय→(स्त्री) गया) भूकृ 1/1 अनि	गयी
	केक्कया	(केक्कया) 1/1	कैकेयी
	जत्थ	अव्यय	जहाँ
	अत्थाण-मग्गो	[(अत्थाण)-(मग्ग) 1/1]	सभास्थान का पथ
	णरिन्दो	(णरिन्द) 1/1	राजा
	सुरिन्दो	(सुरिन्द) 1/1	इन्द्र
	व	अव्यय	की तरह
	पीढं[1]	(पीढ) 2/1	आसन पर
	वलग्गो	(वलग्ग) 1/1 वि (दे)	स्थित

1. कभी-कभी द्वितीया का प्रयोग सप्तमी के स्थान पर होता है (हे.प्रा.व्या. 3-137)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

7.	वरो	(वर) 1/1	वर
	मग्गिओ	(मग्ग) भूक़ 1/1	माँगा हुआ
	णाह	(णाह) 8/1	हे नाथ
	सो	(त) 1/1 सवि	वह
	एस	(एत) 1/1 सवि	यह
	कालो	(काल) 1/1	समय
	महुं	(अम्ह) 6/1 स	मेरा
	णन्दणो	(णन्दण) 1/1	पुत्र
	ठाउ	(ठा) विधि 3/1 अक	रहे
	रज्जाणुपालो	[(रज्ज)+(अणुपालो)] [(रज्ज)-(अणुपाल) 1/1 वि]	राज्य का पालनकर्ता
8.	पिए	(पिआ) 8/1	हे प्रिय
	होउ	(हो) विधि 3/1 अक	होवे
	एवं	अव्यय	इसी प्रकार
	तम्रो	अव्यय	तब
	सावलेवो	(स+अवलेव) 1/1	गर्वसहित
	समायारिओ	(सं+आयार→आयारिअ→समायारिअ) भूक़ 1/1	बुलाए गए
	लक्खणो	(लक्खण) 1/1	लक्ष्मण
	रामएवो	(राम) 1/1, एवो-अव्यय	राम, और
9.	जइ	अव्यय	यदि
	तुहुँ	(तुम्ह) 1/1 स	तुम
	पुत्तु	(पुत्त) 1/1	पुत्र
	महु	(अम्ह) 6/1 स	मेरे
	तो	अव्यय	तो
	एत्तिउ	(एत्तिअ) 1/1 वि	इतनी
	पेसणु	(पेसण) 1/1	आज्ञा
	किज्जइ	(किज्जइ) व कर्म 3/1 सक अनि	पालन की जाए (की जाती है)
	छत्तइं	(छत्त) 1/2	छत्र
	वइसणउ	(वइसणअ) 1/1	आसन
	वसुमइ	(वसुमइ) 1/1	पृथ्वी
	भरहहो	(भरह) 4/1	भरत के लिए
	अप्पिज्जइ	(अप्प) व कर्म 3/1 सक	दी जाती है (दे दी जाए)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

23.3

1.	चिन्तावण्णु	[(चिन्ता + (आवण्ण)] [(चिन्ता)-(आवण्ण) भूकृ 1/1 अनि]	चिन्ता में डूबे हुए
	णराहिउ	(णराहिअ) 1/1	नराधिप (राजा)
	जावेहिँ	अव्यय	जब
	बलु	(बल) 1/1	बलदेव
	णिय-णिलउ	[(णिय) वि-(णिलअ) 2/1]	निज भवन को
	पराइउ	(पराइअ) भूकृ 1/1 अनि	गये
	तावेहिँ	अव्यय	तब
2.	दुम्मणु	(दुम्मण) 1/1 वि	उदास मनवाला
	एन्तु	(ए) वकृ 1/1	आता हुआ
	णिहालिउ	(णिहाल→णिहालिअ) भूकृ 1/1	देखा गया
	मायए	(माया) 3/1	माता के द्वारा
	पुणु	अव्यय	फिर भी
	विहसेवि	(विहस) संकृ	हँसकर
	वुत्तु	(वुत्त) भूकृ 1/1 अनि	कहा गया
	पिय-वायए	[(पिय) वि-(वाया) 3/1)]	प्रिय वाणी से
3.	दिवे दिवे	(दिव) 7/1 (दिव) 7/1	प्रतिदिन
	चडहि	(चड) व 2/1 सक	चढ़ते हो (थे)
	तुरङ्गम-णाएहिँ	[(तुरङ्गम)-(णाअ)[1] 7/2]	घोड़े और हाथी पर
	अज्जु	अव्यय	आज
	काइँ	अव्यय	क्यों, कैसे
	अणुवाहणु	(अण+उवाहण)[2]=अव्यय	बिना जूतों के
	पाएहिँ	(पाअ) 3/2	पैरों से
4.	दिवे दिवे	(दिव) 7/1 (दिव) 7/1	प्रतिदिन
	वन्दिण-विन्देहिँ	[(वन्दिण)-(विन्द) 3/2]	स्तुति-गायकों के समूहों द्वारा
	थुव्वहि	(थुव्वहि) व भाव 2/1 अक अनि	स्तुति किये जाते (थे)
	अज्जु	अव्यय	आज
	काइँ	अव्यय	कैसे
	थुव्वन्तु	(थुव्वन्त) वकृ कर्म 1/1 अनि	स्तुति किये जाते हुए

1. णाग→णाअ→णाएहिँ (श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ-146)।
2. उवाणह→उवाहण

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

	ण	अव्यय	नहीं
	सुव्वहि	(सुव्वहि) व कर्म 2/1 सक अनि	सुने जाते हो
5	दिवे दिवे	(दिव) 7/1 (दिव) 7/1	प्रतिदिन
	धुव्वहि	(धुव्वहि) व कर्म 2/1 सक अनि	पंखा किये जाते (थे)
	चमर-सहासेहिँ	[(चमर)-(सहास) 3/2 वि]	हजारों चँवरों से
	अज्जु	अव्यय	आज
	काइँ	अव्यय	क्यों
	तउ	(त) 6/1 स	तुम्हारे
	को वि	(क) 1/1 स	कोई भी
	ण	अव्यय	नहीं
	पासेहिँ[1]	(पास) 7/1	आस-पास में
6.	दिवे-दिवे	(दिव) 7/1 (दिव) 7/1	प्रतिदिन
	लोयहिँ	(लोय) 3/2	लोगों के द्वारा
	वुच्चहि	(वुच्चहि) व कर्म 2/1 सक अनि	बोले (कहे) जाते थे
	राणउ	(राणअ) 1/1 'अ' स्वार्थिक	राणा
	अज्जु	अव्यय	आज
	काइँ	अव्यय	क्यों
	दीसहि	(दीसहि) व कर्म 2/1 सक अनि	दिखाई देते हो
	विद्दाणउ	(विद्दाणअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	निस्तेज (म्लान)
7.	तं	(त) 2/1 स	उसको
	णिसुणेवि	(णिसुण+एवि) संकृ	सुनकर
	बलेण	(बल) 3/1	बलदेव के द्वारा
	पजम्पिउ	(पजम्प→पजम्पिअ) भूकृ 1/1	कहा गया
	भरहहो	(भरह) 4/1	भरत के लिए (को)
	सयलु	(सयल) 1/1 वि	सम्पूर्ण
	वि	अव्यय	ही
	रज्जु	(रज्ज) 1/1	राज्य
	समप्पिउ	(समप्प→समप्पिअ) भूकृ 1/1	दे दिया गया है
8.	जामि	(जा) व 1/1 सक	जाता हूँ
	माए	(माआ) 8/1	हे माँ
	दिढ	(दिढ) 1/1 वि	दृढ़
	हियवए	[(हिय)-(वअ)[2] 7/1]	मन की अवस्था में

1. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 146।
2. वअ→पअ→पद=स्थान, अवस्था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होज्जहि	(हो) विधि 2/1 अक	रहना
जं	(ज) 1/1 सवि	जो
दुम्मिय	(दुम्मिय) भूकृ 1/1 अनि	कष्ट पहुँचाया गया
तं	(त) 2/1 स	उस
सव्वु	(सव्व) 2/1 सवि	सबको
खमेज्जहि	(खम) विधि 2/1 सक	क्षमा करना

9.	जें	अव्यय	जिस तरह से
	आउच्छिय	(आउच्छ→आउच्छिया) भूकृ 1/1	पूछी गयी
	माय	(माया) 1/1	माता
	हा-हा	अव्यय	शोकार्थक
	पुत्त	(पुत्त) 8/1	हाय पुत्र
	भणन्ती	(भण→भणन्त→(स्त्री) भणन्ती) वकृ 1/1	कहती हुई
	अपराइय	(अपराइया) 1/1	अपराजिता
	महएवी	(महएवी) 1/1	महादेवी
	महियले	(महियल) 7/1	धरती पर
	पडिय	(पड) भूकृ 1/1	गिर पड़ी
	रुयन्ती	(रुय→रुयन्त→(स्त्री) रुयन्ती) वकृ 1/1	रोती हुई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ 2

पउमचरिउ

सन्धि-24

गए	(गअ) भूकृ 7/1 अनि	जाने पर
वण-वासहो[1]	[(वण)-(वास) 6/1]	वनवास को
रामे	(राम) 7/1	राम के
उज्झ	(उज्झ) 1/1	अयोध्या
ण	अव्यय	नहीं
चित्तहो[2]	(चित्त) 4/1	चित्त के लिए (को)
भावइ[2]	(भाव) व 3/1 सक	अच्छी लगती है
थिय	(थिया) भूकृ 1/1 अनि	स्थित
णीसास	(णीसास) 2/1	श्वास
मुअन्ति	(मुअ→मुअन्त→(स्त्री)मुअन्ती) वकृ 1/1	छोड़ती हुई
महि	(मही) 1/1	पृथ्वी
उण्हालए	(उण्हाला-अ) 7/1 'अ' स्वा.	ग्रीष्मकाल में
णावइ	अव्यय	जैसे

24.1

1.	सयलु	(सयल) 1/1 वि	समस्त
	वि	अव्यय	भी
	जणु	(जण) 1/1	जन-(समूह)
	उम्माहिज्जन्तउ	(उम्माह+इज्ज+न्त+अ) वकृ कर्म 1/1 'अ' स्वा.	वियोग में व्याकुल किये जाते हुए
	खणु	(खण) 1/1	क्षण
	वि	अव्यय	भी
	ण	अव्यय	नहीं
	थक्कइ	(थक्क) व 3/1 अक	थकता है
	णामु	(णाम) 2/1	नाम (को)
	लयन्तउ	(लय→लयन्त→लयन्तअ) वकृ 1/1 'अ' स्वा.	लेता हुआ
2.	उव्वेल्लिज्जइ	(उव्वेल्ल+इज्ज) व कर्म 3/1 सक	उछाला जाता है

1. कभी-कभी षष्ठी का प्रयोग द्वितीया के स्थान पर पाया जाता है (हे. प्रा. व्या. 3-134)।
2. रुच् (अच्छा लगना) अर्थ की धातुओं के साथ चतुर्थी का प्रयोग किया जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	गिज्जइ	(गा + इज्ज) व कर्म 3/1 सक	गाया जाता है
	लक्खणु	(लक्खण) 1/1	लक्ष्मण
	मुरव वज्जे	[(मुरव)-(वज्ज) 7/1]	मृदंगवाद्य में
	वाइज्जइ	(वाअ) व कर्म 3/1 सक	बजाया जाता है
	लक्खणु	(लक्खण) 1/1	लक्ष्मण
3.	सुइ-सिद्धन्त-पुराणेहिं	[(सुइ)-(सिद्धन्त)-(पुराण) 3/2]	श्रुति, सिद्धान्त और पुराणों द्वारा
	लक्खणु	(लक्खण) 1/1	लक्षण
	ओङ्कारेण	(ओङ्कार) 3/1	ओंकार से
	पढिज्जइ	(पढ) व कर्म 3/1 सक	पढ़ा जाता है
	लक्खणु	(लक्खण) 1/1	लक्षण
4.	अण्णु	(अण्ण) 1/1 वि	अन्य
	वि	अव्यय	पादपूरक
	जं जं	(ज) 1/1 सवि	जो-जो
	किंपि	(क) 1/1 वि	कुछ भी
	स-लक्खणु	(स-लक्खण) 1/1 वि	लक्षणसहित
	लक्खण-णामें	[(लक्खण)-(णाम) 3/1]	लक्ष्मण नाम से
	वुच्चइ	(वुच्चइ) व कर्म 3/1 सक अनि	कहा जाता है
	लक्खणु	(लक्खण) 1/1	लक्षण
5.	कावि	(का) 1/1 सवि	कोई
	णारि	(णारी) 1/1	नारी
	सारङ्गि	(सारङ्गी) 6/1	हरिणी के
	व	अव्यय	समान
	दुण्णी	(दुण्ण→दुण्णी) भूकृ 1/1 अनि	दुःखी हुई
	वड्डी	(वड्ड→वड्डी) 2/1 वि	बड़ी
	धाह	(धाह→धाहा) 2/1	चिल्लाहट
	मुएवि	(मुअ+एवि) संकृ	छोड़कर (निकालकर)
	परुण्णी	(परुण्ण→परुण्णी) भूकृ 1/1 अनि	रोई
6.	का वि	(का) 1/1 सवि	कोई
	णारि	(णारी) 1/1	नारी
	जं	(ज) 2/1 स	जिस(को)
	लेइ	(ले) व 3/1 सक	लेती है (पहनती है)
	पसाहणु	(पसाहण) 2/1	आभूषण को
	तं	(त) 2/1 स	उसको
	उल्हावइ	(उल्हा+आव) व प्रे. 3/1 सक	शान्ति देता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	जाणइ	(जाण) व 3/1 सक	समझती है
	लक्खणु	(लक्खण) 2/1	लक्ष्मण
7.	कावि	(का) 1/1 सवि	कोई
	णारि	(णारी) 1/1	नारी
	जं	(ज) 2/1 सवि	जिस(को)
	परिहइ	(परिह) व 3/1 सक	पहनती है
	कङ्कणु	(कङ्कण) 2/1	कंगन को
	धरइ	(धर) व 3/1 सक	धारण करती है
	सु-गाढउ	(सु-गाढअ) 2/1 वि 'अ' स्वार्थिक	खूब गाढ़ा
	जाणइ	(जाण) व 3/1 सक	समझती है
	लक्खणु	(लक्खण) 2/1	लक्ष्मण
8.	कावि	(का) 1/1 सवि	कोई
	णारि	(णारी) 1/1	नारी
	जं	(ज) 2/1 सवि	जिस(को)
	जोयइ	(जोय) व 3/1 सक	देखती है
	दप्पणु	(दप्पण) 2/1	दर्पण को
	अण्णु	(अण्ण) 2/1 वि	अन्य को
	ण	अव्यय	नहीं
	पेक्खइ	(पेक्ख) व 3/1 सक	देखती है
	मेल्लेवि	(मेल्ल+एवि) संकृ	छोड़कर
	लक्खणु	(लक्खण) 2/1	लक्ष्मण को
9.	तो	अव्यय	तब
	एत्थन्तरे	अव्यय	इसी बीच में
	पाणिय-हारिउ	(पाणियहारी) 1/2	पनिहारिनें
	पुरे	(पुर) 7/1	नगर में
	बोल्लन्ति	(बोल्ल) व 3/2 सक	बोलती हैं (कहती हैं)
	परोप्परु	क्रिविअ	आपस में
	णारिउ	(णारी) 2/2	नारियों को
10.	सो	(त) 1/1 सवि	वह
	पलंकु	(पलङ्क) 1/1	पलंग
	तं	(त) 1/1 सवि	वह
	जे	अव्यय	ही
	उवहाणउ	(उवहाणअ) 1/1 'अ' स्वार्थिक	तकिया
	सेज्ज	(सेज्ज) 1/1	शय्या
	वि	अव्यय	भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	स	(त) 1/1 सवि	वह
	ज्जें	अव्यय	ही
	तं	(त) 1/1 सवि	वह
	जे	अव्यय	ही
	पच्छाणउ	(पच्छाणअ) 1/1 वि	ढकनेवाली (चादर)
11.	तं	त 1/1 सवि	वह
	घरु	(घर) 1/1	घर
	रयणइँ	(रयण) 1/2	रत्न
	ताइँ	(त) 1/2 सवि	वे
	तं	(त) 1/1 सवि	वह
	चित्तयम्मु	(चित्तयम्म) 1/1	चित्र
	स-लक्खणु	(स-लक्खण) 1/1 वि	लक्ष्मणसहित
	णवर	अव्यय	केवल
	ण	अव्यय	नहीं
	दीसइ	(दीसइ) व कर्म 3/1 सक अनि	देखा जाता है (देखे जाते हैं)
	माए	(माअ) 8/1 अनि	हे माँ
	रामु	(राम) 1/1	राम
	ससीय-सलक्खणु	[(स सीया→स सीय)-(स लक्खण) 1/1]	सीतासहित, लक्ष्मण-सहित

24.3

1.	जं	अव्यय	जब
	णीसरिउ	(णीसर→णीसरिअ) भूकृ 1/1	निकला
	राउ	(राअ) 1/1	राजा
	आणन्दें	(आणन्द) 3/1	हर्ष से
	वुत्तु	(वुत्त) भूकृ 1/1 अनि	कहा गया
	णवेप्पिणु	(णव+एप्पिणु) संकृ	प्रणाम करके
	भरह-णरिन्दें	[(भरह)-(णरिन्द) 3/1]	भरत राजा के द्वारा
2.	हउ	(अम्ह) 1/1 स	मैं
	मि	अव्यय	भी
	देव	(देव) 8/1	हे देव
	पइँ	(तुम्ह) 3/1 स	तुम्हारे
	सहुँ	अव्यय	साथ
	पव्वज्जमि	(पव्वज्ज) व 1/1 सक	संन्यास लेता हूँ (लूँगा)
	दुग्गइ-गामिउ	[(दुग्गइ)-(गामिअ) 2/1 वि]	दुर्गति देनेवाले

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	रज्जु	(रज्ज) 2/1	राज्य को
	ण	अव्यय	नहीं
	भुञ्जमि	(भुञ्ज) व 1/1 सक	भोगता हूँ (भोगूँगा)
3.	रज्जु	(रज्ज) 1/1	राज्य
	असारु	(असार) 1/1 वि	असार
	वारु	(वार) 1/1	द्वार
	संसारहो	(संसार) 6/1	संसार का
	रज्जु	(रज्ज) 1/1	राज्य
	खणेण	क्रिविअ	क्षण भर में
	णेइ	(णी) व 3/1 सक	ले जाता है (पहुँचा देता है)
	तम्वारहो	(तम्वार)[1] 6/1	विनाश को
4.	रज्जु	(रज्ज) 1/1	राज्य
	भयङ्करु	(भयङ्कर) 1/1 वि	दुःखजनक
	इह-पर-लोयहो	[(इह) वि -(पर) वि - (लोय) 4/1]	इस (लोक में) और परलोक में
	रज्जें	(रज्ज) 3/1	राज्य से
	गम्मइ	(गम्मइ) व कर्म 3/1 सक अनि	जाया जाता है
	णिच्च-णिगोयहो	[(णिच्च)-(णिगोय) 4/1]	नित्य-निगोद के लिए
5.	रज्जें	(रज्ज) 3/1	राज्य के द्वारा
	होउ	(हो) विधि 3/1 अक	होवे
	होउ	(हो) भूकृ 1/1	हुआ गया
	महु	(महु) 6/1	मधु के
	सरियउ	(सरियअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	समान
	सुन्दरु	(सुन्दर) 1/1 वि	रुचिकर
	तो	अव्यय	तो
	किं	अव्यय	क्यों
	पइँ	(तुम्ह) 3/1 स	तुम्हारे द्वारा
	परिहरियउ	(परिहर→परिहरिय→परिहरियअ) भूकृ 1/1 'अ' स्वा.	छोड़ दिया गया
6.	रज्जु	(रज्ज) 1/1	राज्य
	अकज्जु	(अकज्ज) 1/1 वि	नहीं करने योग्य
	कहिउ	(कह→कहिअ) भूकृ 1/1	कहा गया
	मुणि-छेयहिँ	[(मुणि)-(छेय) 3/2 वि (दे)]	निर्मल मुनियों द्वारा

1. कभी-कभी द्वितीया के स्थान पर षष्ठी का प्रयोग पाया जाता है (हे. प्रा. व्या. 3–134)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	दुट्ठ-कलत्तु	[(दुट्ठ) वि-(कलत्त) 1/1]	दुष्ट स्त्री
	व	अव्यय	जैसे
	भुत्तु	(भुत्त) भूकृ 1/1 अनि	अनुभव किया गया
	अणेयहिं	(अणेय) 3/2	अनेक के द्वारा
7.	दोसवन्तु	(दोसवन्त) 1/1 वि	दोषवाला
	मयलञ्छण-विम्वु	[(मलयञ्छण)-(विम्व) 1/1]	चन्द्रमा का विम्व
	व	अव्यय	जैसे
	वहु-दुक्खाउरु	[(वहु)+(दुक्ख)+(आउरु) [(वहु)वि-(दुक्ख)-(आउर) 1/1 वि]	बहुत दुःखों से पीड़ित
	दुग्ग-कुडुम्वु	[(दुग्ग)वि (दे)-(कुडुम्व) 1/1]	दरिद्र कुटुम्ब
	व	अव्यय	जैसे
8.	तो वि	अव्यय	तो भी
	जीउ	(जीअ) 1/1	जीव
	पुणु	अव्यय	पादपूरक
	रज्जहो	(रज्ज) 4/1	राज्य को/के लिए
	कङ्खइ	(कङ्ख) व 3/1 सक	इच्छा करता है
	अणुदिणु	अव्यय	प्रतिदिन
	आउ	(आउ) 2/1	आयु को
	गलन्तु	(गल→गलन्त) वकृ 2/1	गलती हुई
	ण	अव्यय	नहीं
	लक्खइ	(लक्ख) व 3/1 सक	देखता है
9.	जिह	अव्यय	जिस प्रकार
	महुविन्दुहे	[(महु)-(विन्दु[1]) 6/1]	जल की बूंद के
	कज्जे	(कज्ज)[2] 3/1	प्रयोजन से
	करहु	(करह) 1/1	ऊँट
	ण	अव्यय	नहीं
	पेक्खइ	(पेक्ख) व 3/1 सक	देखता है
	कक्करु	(कक्कर) 2/1	कंकर को
	तिह	अव्यय	उसी प्रकार
	जिउ	(जिअ) 1/1	जीव ने
	विसयासत्तु	[(विसय)+(आसत्तु)] [(विसय)-(आसत्त) भूकृ 1/1 अनि]	विषय में आसक्त
	रज्जें	(रज्ज) 3/1	राज्य से

1. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ-151।
2. कभी-कभी सप्तमी के स्थान पर तृतीया का प्रयोग किया जाता है (हे. प्रा. व्या. 3-137)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	गउ	(गअ) भूकृ 1/1 अनि	पाया (है)
	सय-सक्कारु	[(सय) वि-(सक्कार) 1/1]	अत्यधिक आदर-सत्कार

24.4

1.	भरहु	(भरह) 1/1	भरत
	चवन्तु	(चव→चवन्त) वकृ 1/1	बोलता हुआ
	णिवारिउ	(णिवार→णिवारिअ) भूकृ 1/1	रोका गया
	राएं	(राअ) 3/1	राजा के द्वारा
	अज्ज	अव्यय	आज
	वि	अव्यय	ही
	तुज्झु	(तुम्ह) 4/1 स	तेरे लिए
	काइँ	(काइँ) 1/1 सवि	क्या
	तव-वाएं	[(तव)-(वाअ) 3/1]	तप की बात से
2	अज्ज	अव्यय	आज
	वि	अव्यय	ही
	रज्जु	(रज्ज) 2/1	राज्य
	करहि	(कर) विधि 2/1 सक	कर
	सुहु	(सुह) 2/1	सुख को (का)
	भुञ्जहि	(भुञ्ज) विधि 2/1 सक	अनुभव कर
	अज्ज	अव्यय	आज
	वि	अव्यय	ही
	विसय-सुक्खु	[(विसय)-(सुक्ख) 2/1]	विषय सुख को
	अणुहुञ्जहि	(अणुहुञ्ज) विधि 2/1 सक	भोग
3.	अज्ज	अव्यय	आज
	वि	अव्यय	ही
	तुहुँ	(तुम्ह) 1/1 स	तू
	तम्बोलु	(तम्बोल) 2/1	पान को (का)
	समाणहि	(समाण) विधि 2/1 सक	उपभोग कर (खा)
	अज्ज	अव्यय	आज
	वि	अव्यय	ही
	वर-उज्जाणइँ	[(वर) वि-(उज्जाण) 2/2]	श्रेष्ठ उद्यानों को
	माणहि	(माण) विधि 2/1 सक	मान
4.	अज्जु	अव्यय	आज
	वि	अव्यय	ही
	अंगु	(अङ्ग) 2/1	शरीर को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	स-इच्छए	[(स) वि-(इच्छा) 3/1]	स्व-इच्छा से
	मण्डहि	(मण्ड) विधि 2/1 सक	सजा
	अज्ज	अव्यय	आज
	वि	अव्यय	ही
	वर-विलयउ	[(वर) वि-(विलया) 2/2]	श्रेष्ठ स्त्रियों को (का)
	अवरुण्डहि	(अवरुण्ड) विधि 2/1 सक	आलिंगन कर
5.	अज्ज	अव्यय	आज
	वि	अव्यय	भी
	जोग्गउ	(जोग्गअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	योग्य
	सव्वाहरणहो	[(सव्व)+(आहरणहो)] [(सव्व) वि-(आहरण) 6/1]	सभी अलंकार के
	अज्ज	अव्यय	आज
	वि	अव्यय	ही
	कवणु	(कवण) 1/1 स	कौनसा
	कालु	(काल) 1/1	समय
	तव-चरणहो	[(तव)-(चरण) 6/1]	तप के आचरण का
6.	जिण-पव्वज्ज	[(जिण)-(पव्वज्जा) 1/1]	जिन-प्रव्रज्या
	होइ	(हो) व 3/1 अक	होती है
	अइ-दुसहिय	[(अइ) वि-(दुसह→दुसहिया)भूकृ 1/1]	बहुत असह्य
	कें	(क) 3/1 स	किसके द्वारा
	बावीस	(बावीस) 1/2 वि	बाईस
	परीसह	(परीसह) 1/2	परीषह
	विसहिय	(वि-सह→वि-सहिय) भूकृ 1/2	सहन किये गये
7.	कें	(क) 3/1 स	किसके द्वारा
	जिय	(जिय) भूकृ 1/2 अनि	जीते गये
	चउ-कसाय-रिउ	[(चउ) वि-(कसाय)-(रिउ) 1/2]	चारों कषायोंरूपी शत्रु
	दुज्जय	(दुज्जय) 1/2 वि	दुर्जेय
	कें	(क) 3/1 स	किसके द्वारा
	आयामिय	(आयाम→आयामिय) भूकृ 1/2	ग्रहण किये गए
	पञ्च	(पञ्च) 1/2 वि	पंच
	महव्वय	(महव्वय) 1/2	महाव्रत
8.	कें	(क) 3/1 स	किसके द्वारा
	किउ	(कि→किअ) भूकृ 1/1	किया गया
	पञ्चहुँ	(पञ्च) 6/2 वि	पाँचों
	विसयहुँ	(विसय) 6/2	विषयों का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिग्गहु	(णिग्गह) 1/1	निग्रह
कें	(क) 3/1 स	किसके द्वारा
परिसेसिउ	(परिसेस→परिसेसिअ) भूकृ 1/1 अनि	समाप्त किया गया
सयलु	(सयल) 1/1 वि	सकल
परिग्गहु	(परिग्गह) 1/1	परिग्रह
9. को	(क) 1/1 सवि	कौन
दुम–मूले	[(दुम)–(मूल) 7/1]	वृक्ष के समीप/नीचे
वसिउ	(वस→वसिअ) भूकृ 1/1	बसा
वरिसालए	(वरिसालअ) 7/1 'अ' स्वार्थिक	वर्षाकाल में
को	(क) 1/1 स	कौन
एक्कंगें	[(एक्क)+(अंगें)] [एक्क) वि–(अङ्ग) 3/1]	केवलमात्र शरीर से
थिउ	(थिअ) भूकृ 1/1 अनि	रहा
सीयालए	(सीयालअ) 7/1	शीतकाल में
10. कें	(क) 3/1 स	किसके द्वारा
उण्हालए	(उण्हालअ) 7/1	ग्रीष्मकाल में
किउ	(कि) भूकृ 1/1	किया गया
अत्तावणु	[(अत्त)+(तावणु)] [(अत्त)–(तावण) 1/1]	शरीर का तपन
एउ	(एअ) 1/1 सवि	यह
तव–चरणु	[(तव)–(चरण) 1/1]	तप का आचरण
होइ	(हो) व 3/1 अक	होता है
भीसावणु	(भीसावण) 1/1 वि	भीषण
11. भरह	(भरह) 8/1	हे भरत
म	अव्यय	मत
वड्ढिउ	(वड्ढ+इउ) संकृ	बढ़कर
वोल्लि	(वोल्ल) विधि 2/1 सक	बोल
तुहुँ	(तुम्ह) 1/1 स	तू
सो	(त) 1/1 सवि	वह
अज्ज	अव्यय	आज
वि	अव्यय	भी
वालु	(वाल) 1/1	बालक
भुञ्जहि	(भुञ्ज) विधि 2/1 सक	भोग
विसय-सुहाइँ	[(विसय)–(सुह) 2/2]	विषय सुखों को
को	(क) 1/1 सवि	कौनसा
पव्वज्जहे	(पव्वज्जा) 6/1	प्रव्रज्या का
कालु	(काल) 1/1	काल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

1.	तं	(त) 2/1 स	उसको
	णिसुणेवि	(णिसुण+एवि) संकृ	सुनकर
	भरहु	(भरह) 1/1	भरत
	आरुट्ठउ	(आरुट्ठअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	क्रुद्ध (रुष्ट) हुआ
	मत्त-गइन्दु	[(मत्त) भूकृ अनि-(गइन्द) 1/1]	मस्त हाथी
	व	अव्यय	जैसे (की तरह)
	चित्तें	(चित्त)[1] 7/1	चित्त में
	दुट्ठउ	(दुट्ठअ) भूकृ 1/1 अनि	दुःखी हुआ
2.	विरुयउ	(विरुयअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	प्रतिकूल
	ताव	अव्यय	तब
	वयणु	(वयण) 1/1	वचन
	पइँ	(तुम्ह) 3/1 स	आपके द्वारा
	वुत्तउ	(वुत्तअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	कहे गये
	किं	अव्यय	क्या
	बालहों	(बाल) 4/1	बालक के लिए
	तव-चरणु	[(तव)-(चरण)] 1/1	तप का आचरण
	ण	अव्यय	नहीं
	जुत्तउ	(जुत्तअ) भूकृ 1/1 अनि	उचित, युक्त
3.	किं	अव्यय	क्या
	बालत्तणु	(बालत्तण) 1/1	बालपन
	सुहेहिँ	(सुह) 3/2	सुखों के द्वारा
	ण	अव्यय	नहीं
	मुच्चइ	(मुच्चइ) व कर्म 3/1 सक अनि	ठगा जाता है
	किं	अव्यय	क्या
	बालहों	(बाल) 4/1	बालक के लिए
	दय-धम्मु	[(दया→दय)-(धम्म) 1/1]	दया एवं धर्म
	ण	अव्यय	नहीं
	रुच्चइ	(रुच्च) व 3/1 अक	रुचिकर होता है
4.	किं	अव्यय	क्या
	बालहों	(बाल) 4/1	बालक के लिए
	पव्वज्ज	(पव्वज्जा) 1/1	प्रव्रज्या
	म	अव्यय	नहीं

1. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 146।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होओ	(हो→होअ) भूकृ 1/1	हुई
किं	अव्यय	क्या
वालहों	(वाल) 4/'	बालक के लिए (का)
दूसिउ	(दूस→दूसिअ) भूकृ 1/1	दूषित
पर–लोग्रो	[(पर) वि–(लोअ) 1/1]	पर-लोक
5. किं	अव्यय	क्या
वालहों	(वाल) 4/1	बालक के लिए
सम्मत्तु	(सम्मत्त) 1/1	सम्यक्त्व
म	अव्यय	नहीं
होग्रो	(हो) भूकृ 1/1	हुग्रा
किं	अव्यय	क्या
वालहों	(वाल) 4/1	बालक के लिए
णउ	अव्यय	नहीं
इट्ठ–विओग्रो	[(इट्ठ) भूकृ अनि–(विओअ) 1/1]	इष्ट-वियोग
6. किं	अव्यय	क्या
वालहों	(वाल) 4/1	बालक के लिए
जर–मरणु	[(जरा)–(मरण) 1/1]	जरा–मरण
ण	अव्यय	नहीं
ढुक्कइ	(ढुक्क) व 3/1 अक	आता है
किं	अव्यय	क्या
वालहों	(वाल) 4/1	बालक के लिए
जमु	(जम) 1/1	यमराज
दिवसु	(दिवस) 2/1	दिन (को)
वि	अव्यय	पादपूरक
चुक्कइ	(चुक्क) व 3/1 सक	भूल जाता है
7. तं	(त) 2/1 स	उसको
णिसुणेवि	(णिसुण+एवि) संकृ	सुनकर
भरहु	(भरह) 1/1	भरत
णिब्भच्छिउ	(णिब्भच्छ) भूकृ 1/1	झिड़का गया
तो	अव्यय	तब
किं	अव्यय	क्यों
पहिलउ	(पहिलअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	पहले
पट्टु	(पट्ट) 1/1	राज-पट्ट
पडिच्छिउ	(पडिच्छ) भूकृ 1/1	स्वीकार किया गया
8. एवहिं	अव्यय	इस समय
सयलु	(सयल) 1/1 वि	सम्पूर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि	अव्यय	ही
रज्जु	(रज्ज) 1/1	राज
करेवउ	(कर+एवउ) विधिकृ 1/1	किया जाना चाहिए
पच्छले	(पच्छल) 7/1	पिछले भाग में
पुणु	अव्यय	फिर
तव-चरणु	[(तव)-(चरण) 1/1]	तप का आचरण
चरेवउ	(चर+एवउ) विधिकृ 1/1	किया जाना चाहिए

9.

एम	अव्यय	इस प्रकार
भणेप्पिणु	(भण+एप्पिणु) संकृ	कहकर
राउ	(राअ) 1/1	राजा
सच्चु	(सच्च) 2/1	वचन को
समप्पेवि	(समप्प+एवि) संकृ	समर्पित करके (पूरा करके)
भज्जहे	(भज्जा) 6/1	पत्नी के
भरहहो	(भरह) 6/1	भरत के (को)
बन्धेवि	(बन्ध+एवि) संकृ	बांधकर
पट्टु	(पट्ट) 2/1	पट्ट
दसरहु	(दसरह) 1/1	दशरथ
गउ	(गअ) भूकृ 1/1 अनि	चले गये
पव्वज्जहे	(पव्वज्जा) 4/1	प्रव्रज्या के लिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ-3

पउमचरिउ

सन्धि-27

27.14

9.	वरि	अव्यय	अधिक अच्छा
	पहरिउ	(पहर→पहरिअ) भूकृ 1/1	प्रहार किया गया
	वरि	अव्यय	अधिक अच्छा
	किउ	(कि→किअ) भूकृ 1/1	किया गया
	तवचरणु	[(तव)-(चरण) 1/1]	तप का आचरण
	वरि	अव्यय	अधिक अच्छा
	विसु	(विस) 1/1	विष
	हालाहलु	(हालाहलु) 1/1	हालाहल
	वरि	अव्यय	अधिक अच्छा
	मरणु	(मरण) 1/1	मरना
	वरि	अव्यय	अधिक अच्छा
	अच्छिउ	(अच्छ→अच्छिअ) भूकृ 1/1	टिके हुए
	गम्पिणु[1]	[गम+एप्पिणु=गमेप्पिणु→गम्पिणु] संकृ	जाकर
	गुहिल-वणे	[(गुहिल) वि-(वण) 7/1]	गहन वन में
	णवि	अव्यय	नहीं
	णिविसु→णिमिस	अव्यय	पल भर
	वि	अव्यय	किन्तु
	णिवसिउ	(णिवस→णिवसिअ) भूकृ 1/1	ठहरे हुए
	अवुहयणें	[(अवुह=अबुह)वि-(यण) 7/1]	मूर्खजन में

27.15

1.	तो	अव्यय	तब
	तिण्णि	(ति) 1/2 वि	तीनों
	वि	अव्यय	ही
	एम	अव्यय	इस प्रकार से
	चवन्ताइँ	(चव→चवन्त) वकृ 1/2	कहते हुए

1. गम् में सम्बन्धक-कृदन्त अर्थक प्रत्यय 'एप्पिणु' और 'एप्पि' को लगाने पर आदिस्वर 'एकार' का विकल्प से लोप होता है। यहाँ बनना चाहिए 'गमेप्पिणु' पर 'गम्पिणु' प्रयोग पाया जाता है, (हे. प्रा. व्या. 4-442)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	उम्माहउ	(उम्माहअ) 2/1 'अ' स्वार्थिक	अतिपीड़ा को
	जणहो[1]	(जण) 6/1	जन (समूह) में
	जणन्ताइं	(जण→जणन्त) वकृ 1/2	उत्पन्न करते हुए
2.	दिण-पच्छिम-पहरे	[(दिण)-(पच्छिम)वि-(पहर) 7/1]	दिन के अन्तिम-प्रहर में
	विणिग्गयाइँ[2]=विणिग्गयाइं	(विणिग्गय) भूकृ 1/2 अनि	बाहर निकल गए
	कुञ्जर	(कुञ्जर) 1/1	हाथी
	इव	अव्यय	की तरह
	विउल-वणहो[3]	[(विउल) वि-(वण) 6/1]	घने वन को
	गयाइँ[2]=गयाइं	(गय) भूकृ 1/2 अनि	चले गए
3.	वित्थिण्णु[4]	(वित्थिण्ण) भूकृ 2/1 अनि	विशाल (फैले हुए)
	रण्णु[4]	(रण्ण) 2/1	वन को (में)
	पइसन्ति	(पइस→पइसन्त(स्त्री)→पइसन्ति) वकृ 1/2	प्रवेश करते हुए
	जाव	अव्यय	ज्योंहि
	णग्गोहु	(णग्गोह) 1/1	बरगद
	महादुमु	[(महा)-(दुम) 1/1]	महावृक्ष
	दिट्ठु	(दिट्ठ) भूकृ 1/1 अनि	देखा गया
	ताव	अव्यय	त्योंहि
4.	गुरु-वेसु	[(गुरु)-(वेस) 2/1]	शिक्षक के रूप को
	करेंवि	(कर+एवि) संकृ	धारण करके
	सुन्दर-सराइं	[(सुन्दर)-(सर) 2/2]	सुन्दर स्वरों को
	णं	अव्यय	मानो
	विहय	(विहय) 2/2	पक्षियों को
	पढावइ	(पढ+आव) व प्रे. 3/1 सक	पढ़ाता है
	अक्खराइँ	(अक्खर) 2/2	अक्षरों को
5.	वुक्कण-किसलय	[(वुक्कण=वुक्कण)-(किसलय)[5] 2/2]	कौए, नये कोमल पत्तों (वाली टहनी) पर
	कक्का	(कक्का) 2/2	क-का (ध्वनि) को
	रवन्ति	(रव)व 3/2 सक	बोलते हैं (वे)

1. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी का प्रयोग पाया जाता है (हेम प्राकृत व्याकरण 3–134)।
2. मात्रा को ह्रस्व करने के लिए यहाँ अनुस्वार के स्थान पर 'ँ' लगाया गया है (हे.प्रा.व्या. 4–410)।
3. कभी-कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी का प्रयोग पाया जाता है (हेम प्राकृत व्याकरण 3–134)।
4. 'गमन' अर्थ में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है।
5. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हेम प्राकृत व्याकरण 3–137)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	वाउलि-विहङ्ग	[(वाउलि=वाउलि)-(विहङ्ग) 1/2]	वाउलि-पक्षी
	कि-क्की	(कि-क्की) 2/2	किक्की (ध्वनि) को
	भणन्ति	(भण) व 3/2 सक	कहते हैं (वे)
6.	वण-कुक्कुड	[(वण)-(कुक्कुड) 1/2]	जल-मुर्गे
	कु-क्कू	(कु-क्कू) 2/2	कु-क्कू (ध्वनि) को
	आयरन्ति	(आयर) व 3/2 सक	कहते हैं (वे)
	अण्णु	(अण्ण) 1/1 वि	और
	वि	अव्यय	भी
	कलावि	(कलावि) 1/2	मोर
	के-क्कइ	(के-क्कई) 2/2	के-क्कइ (ध्वनि)
	चवन्ति	(चव) व 3/2 सक	बोलते हैं (वे)
7.	पियमाहविय	[(पिय)-(माहविया) 1/2]	कोयलें
	उ	अव्यय	पादपूर्ति
	को-क्कउ	(को-क्कउ) 2/2	को-क्कउ (ध्वनि) को
	लवन्ति	(लव) व 3/2 सक	बोलती हैं
	कं-का	(कं-का) 2/2	कं-का (ध्वनि)
	बप्पीह	(बप्पीह=बप्पीह) 1/2	पपीहे
	समुल्लवन्ति	(समुल्लव) व 3/2 सक	बोलते हैं (वे)
8.	सो	(त) 1/1 सवि	वह
	तरुवरु	[(तरु)-(वर) 1/1 वि]	श्रेष्ठ वृक्ष
	गुरु-गणहर-समाणु	[(गुरु)-(गणहर)-(समाण) 1/1 वि]	गुरुगणधर के समान
	फल-पत्त-वन्तु	[(फल)-(पत्त)-(वन्त) 1/1 वि]	फल-पत्तों-वाला
	अक्खर-णिहाणु	[(अक्खर)-(णिहाण) 1/1]	अक्षरों का भण्डार
9.	पइसन्तेहिँ	(पइस→पइसन्त) वकृ 3/2	प्रवेश करते हुए (के द्वारा)
	असुर-विमद्दणेहिँ	[(असुर)-(विमद्दण) 3/2 वि]	असुरों का नाश करनेवाले
	सिरु	(सिर) 2/1	सिर को
	णामेवि	(णाम+एवि) संकृ	नमाकर
	राम-जणद्दणेहिँ	[(राम)-(जणद्दण) 3/2]	राम-लक्ष्मण के द्वारा
	परिअञ्चेवि	(परिअञ्च+एवि) संकृ	परिक्रमा करके
	दुमु	(दुम) 1/1	वृक्ष
	दसरह-सुएहिँ	[(दसरह)-(सुअ) 3/2]	दशरथ के पुत्र (द्वारा)
	अहिणन्दिउ	(अहिणन्द→अहिणन्दिअ) भूकृ 1/1	अभिनन्दन किया गया
	मुणि	(मुणि) 1/1	मुनि
	व	अव्यय	की तरह
	सइंभुएहिँ	(सइंभुअ) 3/2	अपनी भुजाओं से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सीय	(सीया) 1/1	सीता
स-लक्खणु	(स-लक्खण) 1/1 वि	लक्ष्मण के साथ
दासरहि	(दासरहि) 1/1	राम
तरुवर-मूलें	[(तरु)-(वर) वि-(मूल) 7/1]	श्रेष्ठ वृक्ष के नीचे के भाग में
परिट्ठिय	(परिट्ठिय) भूकृ 1/1 अनि	बैठे
जावेंहि	अव्यय	ज्योंही
पसरइ	(पसर) व 3/1 अक	फैलता है (फैल गये)
सुकइहे[1]	(सु-कइ) 6/1	सुकवि के
कव्वु	(कव्व) 1/1	काव्य
जिह	अव्यय	की भाँति
मेह-जालु	[(मेह)-(जाल) 1/1]	बादलों के सघन समूह
गयणङ्गणे	[(गयण)+(अङ्गणे)] [(गयण)-(अङ्गण)7/1]	आकाश के आँगन में
तावेहिं=तावेंहि	अव्यय	त्योंही

28.1

1.	पसरइ	(पसर) व 3/1 अक	फैलता है
	मेह-विन्दु	[(मेह)-(विन्द) 1/1]	जलकणों का समूह
	गयणङ्गणे	[(गयण)+(अङ्गणे)] [(गयण)-(अङ्गण)7/1]	आकाश के क्षेत्र में
	पसरइ	(पसर) व 3/1 अक	फैलती है
	जेम	अव्यय	जिस प्रकार
	सेण्णु	(सेण्ण) 1/1	सेना
	समरङ्गणे	[(समर)+(अङ्गणे)] [(समर)-(अङ्गण)7/1]	युद्ध के क्षेत्र में
2.	पसरइ	(पसर) व 3/1 अक	फैलता है
	जेम	अव्यय	जिस प्रकार
	तिमिरु	(तिमिर) 1/1	अंधकार
	अण्णाणहो	(अण्णाण) 6/1	अज्ञान का
	पसरइ	(पसर) व 3/1 अक	फैलती है
	जेम	अव्यय	जिस प्रकार
	वुद्धि	(वुद्धि) 1/1	बुद्धि
	बहु-जाणहो	(बहु-जाण) 6/1 वि	बहुत प्रकार का ज्ञान रखनेवाले की
3.	पसरइ	(पसर) व 3/1 अक	फैलता है
	जेम	अव्यय	जिस प्रकार

---

1. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 156।
2. इट्ठ=इष्ट (तुलनात्मक विशेषण के लिए लगाया जाता है) अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृष्ठ 261।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाउ	(पाअ) 1/1	पाप
पाविट्ठहों	(पावि+इट्ठ[1]→पाविट्ठ) 6/1 वि	अत्यन्त पापी का
पसरइ	(पसर) व 3/1 अक	फैलता है,
जेम	अव्यय	जिस प्रकार
धम्मु	(धम्म) 1/1	धर्म
धम्मिट्ठहो	(धम्म+इट्ठ[1]→धम्मिट्ठ) 6/1 वि	अत्यन्त धार्मिक का
4. पसरइ	(पसर) व 3/1 अक	फैलता है
जेम	अव्यय	जिस प्रकार
जोण्ह	(जोण्हा) 1/1	ज्योत्स्ना (प्रकाश)
मयवाहहो	[(मय)-(वाह) 6/1 वि]	मृग को धारण करनेवाले का
पसरइ	(पसर) व 3/1 अक	फैलती है
जेम	अव्यय	जिस प्रकार
कित्ति	(कित्ति) 1/1	महिमा
जगणाहहो	[(जग)-(णाह) 6/1]	जिनदेव की
5. पसरइ	(पसर) व 3/1 अक	फैलती है (उभरती है)
जेम	अव्यय	जिस प्रकार
चिन्त	(चिन्ता) 1/1	चिन्ता
धण-हीणहो	[(धण)-(हीण) 6/1]	धन से रहित की
पसरइ	(पसर) व 3/1 अक	फैलता है
जेम	अव्यय	जिस प्रकार
कित्ति	(कित्ति) 1/1	यश
सु-कुलीणहो	(सु-कुलीण) 6/1	अत्यधिक शालीन का
6. पसरइ	(पसर) व 3/1 अक	फैलता है
जेम	अव्यय	जिस प्रकार
सद्दु	(सद्द) 1/1	शब्द
सुर-तूरहो	[(सुर)-(तूर) 6/1]	देवों की तुरही (वाद्य) का
पसरइ	(पसर) व 3/1 अक	फैलती है (हैं)
जेम	अव्यय	जिस प्रकार
रासि	(रासि) 1/2	किरणें
णहे	(णह) 7/1	आकाश में
सूरहो	(सूर) 6/1	सूर्य की
7. पसरइ	(पसर) व 3/1 अक	फैलती है
जेम	अव्यय	जिस प्रकार
दवग्गि	(दवग्गि) 1/1	दावाग्नि

1. इट्ठ=इष्ट (तुलनात्मक विशेषण के लिए लगाया जाता है) अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृष्ठ 261।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वणन्तरे	[(वण) + (अन्तरे)] [(वण)-(अन्तर)7/1]	जंगल के अन्दर
पसरइ	(पसर) व 3/1 अक	फैलता है (फैला है)
मेह-जालु	[(मेह)-(जाल) 1/1]	बादलों का समूह
तिह	अव्यय	उसी प्रकार
अम्बरें	(अम्बर) 7/1	आकाश में
8. तडि	(तडि) 1/1	बिजली (ने)
तडयडइ	(तडयड) व 3/1 अक	तड़तड़ करती है (किया)
पडइ	(पड) व 3/1 अक	पड़ती है (पड़ी)
घणु	(घण) 1/1	बादल
गज्जइ	(गज्ज) व 3/1 अक	गरजता है (गर्जा)
जाणइ	(जाणई) 6/1	जानकी (की)
रामहों	(राम) 6/1	राम की
सरणु[1]	(सरण) 2/1	शरण में (को)
पवज्जइ	(पवज्ज) व 3/1 सक	जाती है (गई)
9. अमर-महाधणु-गहिय-कर	[(अमर)-(महा) वि-(धणु)-(गहिय) भूकृ-(कर) 1/1]	इन्द्रधनुष को, पकड़े हुए, हाथ
मेह-गइन्दे	[(मेह)-(गइन्द) 7/1]	मेघरूपी हाथी पर
चडेवि	(चड+एवि) संकृ	चढ़कर
जस-लुद्धउ	[(जस)-(लुद्धअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक]	यश का इच्छुक
उप्परि	अव्यय	ऊपर
गिम्भ-णराहिवहो	[(गिम्भ)-(णराहिव) 6/1]	ग्रीष्मराजा के
पाउस-राउ	[(पाउस)-(राअ) 1/1]	पावसराजा
णाइँ=णाइं	अव्यय	मानो
सण्णद्धउ	(सण्णद्धअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	आक्रमण के लिए तैयार

28.2

1. जं	अव्यय	जब
पाउस-णरिन्दु	[(पाउस)-(णरिन्द) 1/1]	पावस-राजा
गलगज्जिउ	[(गलगज्ज→गलगज्जिअ) भूकृ 1/1]	गरजा
धूली-रउ	[(धूली)-(रय→रअ[2]) 1/1]	धूल-वेग
गिम्भेण	(गिम्भ) 3/1	ग्रीष्म द्वारा
विसज्जिउ	(विसज्ज) भूकृ 1/1	भेजा गया

1. 'गमन' अर्थ में द्वितीया का प्रयोग होता है।

2. रअ=वेग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

2	गम्पिणु[1]	[गम+एप्पिणु=गमेप्पिणु→गम्पिणु] संकृ	जाकर
	मेह–विन्दे	[(मेह)–(विन्द)[2] 7/1]	मेघ-समूह को
	आलग्गउ	(आलग्ग→आलग्गअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वा.	चिपक गई
	तडि-करवाल-पहारेहिँ	[(तडि)–(करवाल)–(पहार) 3/2]	बिजलीरूपी तलवार के प्रहारों से
	भग्गउ	(भग्गअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	छिन्न-भिन्न कर दी गई
3.	जं	अव्यय	जब
	विवरम्मुहु	(विवरम्मुह) 2/1 वि	विमुख (विपरीत मुख) को
	चलिउ	(चल→चलिअ) भूकृ 1/1	चली
	विसालउ	(विसाल अ) 1/1 वि 'अ' स्वा.	भयंकर
	उट्ठिउ	(उट्ठ) भूकृ 1/1	उठी
	हणु	(हण) विधि 2/1 सक	मारो
	भणन्तु	(भण→भणन्त) वकृ 1/1	कहती हुई
	उण्हालउ	(उण्ह+आल=उण्हाल→उण्हालअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	उष्ण/ग्रीष्म ऋतु
4.	धग–धग–धग–धगन्तु	(धग-धग-धग-धग) वकृ 1/1	खूब (धग–धग) जलती हुई
	उद्धाइउ	(उद्धाइअ) भूकृ 1/1 अनि	ऊँची दौड़ी (उठी)
	हस–हस–हस–हसन्तु	(हस हस हस हस) वकृ 1/1	उत्तेजित होती हुई
	संपाइउ	(संपाइअ) भूकृ 1/1 अनि	प्रवृत्त हुई
5.	जल जल जल जल जल	(जल जल जल जल जल) व 3/1 अक	तेजी से जलती है (जली)
	पचलन्तउ	(प-चल→पचलन्त→पचलन्तअ) वकृ 1/1 'अ' स्वार्थिक	चलती हुई (कूच करती हुई)
	जालावलि-फुलिङ्ग	[(जाला)+(आवलि)+(फुलिङ्ग)] [(जाला)–(आवलि)–(फुलिङ्ग) 2/2]	लपट की, शृंखला से, चिंगारियों को
	मेल्लन्तउ	(मेल्ल→मेल्लन्त→मेल्लन्तअ) वकृ 1/1 'अ' स्वा.	छोड़ते हुए
6.	धूमावलि–धयदण्डुब्भेप्पिणु	[(धूम)+(आवलि)+(धय)+(दण्ड)+(उब्भेप्पिणु)] [(धूम)–(आवलि)–(धय)–(दण्ड)–(उब्भ+एप्पिणु) संकृ]	धूम को, शृंखला के, ध्वजदण्डों को, ऊँचा करके
	वर–वाउलि–खग्गु	[(वर) वि–(वाउलि)–(खग्ग) 2/1]	श्रेष्ठ, तूफानरूपी, तलवार को
	कड्ढेप्पिणु	(कड्ढ+एप्पिणु) संकृ	खींचकर

1. देखें पृष्ठ 31, 27.14.9, पाद टिप्पणी।

2. कभी–कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण 3–137)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

7.	**झड झड झड झडन्तु**	(झड झड झड झड) वकृ 1/1	**झपट मारते हुए**
	पहरन्तउ	(पहर→पहरन्त→पहरन्तअ)वकृ 1/1 'अ' स्वा.	**प्रहार करते हुए**
	तरुवर-रिउ-भड-थड	[(तरु)-(वर)वि-(रिउ)-(भड)-(थड) 2/1]	**श्रेष्ठ वृक्षोंरूपी, शत्रु के, योद्धा, समूह को**
	भज्जन्तउ	(भज्ज→भज्जन्त→भज्जन्तअ)वकृ 1/1 'अ' स्वा.	**नष्ट करते हुए**
8.	**मेह-महागय-घड**	[(मेह)-(महा) वि-(गय)-(घडा) 2/1]	**मेघरूपी, महा-हाथियों को, टोली को**
	विहडन्तउ	(विहड→विहडन्त→विहडन्तअ)वकृ 1/1 'अ' स्वा.	**खण्डित करते हुए**
	जं	अव्यय	**जब**
	उण्हालउ	(उण्हालअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	**ग्रीष्मऋतु**
	दिट्ठु	(दिट्ठ) भूकृ 1/1 अनि	**दिखाई दी**
	भिडन्तउ	(भिड→भिडन्त→भिडन्तअ)वकृ 1/1 'अ' स्वा.	**भिड़ती हुई**
9.	**धणु**	(धणु) 1/1	**धनुष**
	अप्फालिउ	[(अप्फल)(प्रे)→अप्फाल→(अप्फालिअ)भूकृ 1/1]	**ताना गया (वृद्धि प्राप्त)**
	पाउसेण	(पाउस) 3/1	**पावस के द्वारा**
	तडि-टंकार-फार	[(तडि)-(टङ्कार)-(फार) 2/1]	**बिजली की, टङ्कार और चमक**
	दरिसन्तें	(दरिस→दरिसन्त) वकृ 3/1	**दिखाते हुए**
	चोएवि	(चोअ+एवि) संकृ	**प्रेरित करके**
	जलहर-हत्थि-हड	[(जलहर)-(हत्थि)-(हड) 2/2 वि]	**बादलरूपी हाथी-घटा को**
	णीर-सरासणि	[(णीर)-(सरासण(स्त्री)→सरासणी) 1/2]	**जलरूपी तीर**
	मुक्क	(मुक्क) भूकृ 1/2 अनि	**छोड़े गये**
	तुरन्तें	अव्यय	**तुरन्त**

28.3

1.	**जल-वाणासणि घायहिँ**	[(जल)-(वाणासण (स्त्री)→वाणासणी→वाणासणि[1])-(घाय) 3/2]	**जलरूपी, तीरों के, प्रहारों से**
	घाइउ	(घाय=घाअ→घाइअ) भूकृ 1/1	**चोट पहुँचाया हुआ**
	गिम्भ-णराहिउ	[(गिम्भ)-(णराहिअ) 1/1]	**ग्रीष्मराजा**
	रणे	(रण) 7/1	**युद्ध में**
	विणिवाइउ	(विणिवाइअ) भूकृ 1/1 अनि	**गिरा दिया गया**
2.	**दद्दुर**	(दद्दुर) 1/2	**मेंढक**

1. समास में रहे हुए स्वर परस्पर में अक्सर ह्रस्व के स्थान पर दीर्घ और दीर्घ के स्थान पर ह्रस्व हो जाया करते हैं (हे. प्रा. व्या. 1-4)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रडे	(रड) 7/1	रोने
वि	अव्यय	इसलिए
लग्ग	(लग्ग) भूकृ 1/2 अनि	लगे
णं	अव्यय	की तरह
सज्जण	(सज्जण) 1/2	सज्जनों
णं	अव्यय	की तरह
णच्चन्ति	(णच्च) व 3/2 अक	नाचते हैं (नाचे)
मोर	(मोर) 1/2	मोर
खल	(खल) 1/2 वि	शरारती
दुज्जण	(दुज्जण) 1/2 वि	दुष्टों
3. णं	अव्यय	मानो
पूरन्ति	(पूर) व 3/2 सक	भरती हैं (भरा)
सरिउ	(सरि) 1/2	नदियों ने
अक्कन्दें	(अक्कन्द) 3/1	रोने के कारण
णं	अव्यय	मानो
कइ	(कइ) 1/2	कवि
किलिकिलन्ति	(किलिकिल) व 3/2 अक	प्रसन्न होते हैं (हुए)
आणन्दें	(आणन्द) 3/1	आनन्द से
4. णं	अव्यय	मानो
परहुय	(परहुय) 1/2	कोयलें
विमुक्क	(विमुक्क) भूकृ 1/2 अनि	स्वतन्त्र की गई
उग्घोसें[1]	(उग्घोस) 3/1	ऊँची आवाज में
णं	अव्यय	मानो
वरहिण	(वरहिण) 1/2	मोर
लवन्ति	(लव) व 3/2 सक	बोलते हैं (बोले)
परिओसें	(परिओस) 3/1	सन्तोष से
5. णं	अव्यय	मानो
सरवर	[(सर)-(वर) 1/2 वि]	बड़े तालाब
बहु-अंसु-जलोल्लिय	[(बहु) वि - (अंसु) - (जल) - (उल्लिय) 1/2 वि]	विपुल, आँसूरूपी, जल से, भरे हुए
णं	अव्यय	मानो
गिरिवर	[(गिरि)-(वर) 1/2 वि]	बड़े पर्वत

1. कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हेम प्राकृत व्याकरण 3-137)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	हरिसें	(हरिस) 3/1	हर्ष से
	गञ्जोल्लिय	(गञ्जोल्लिय) 1/2 वि	पुलकित
6.	णं	अव्यय	वाक्यालंकार के लिए
	उण्ह	(उण्ह) 6/1 वि	तप्त
	विअ	अव्यय	मानो
	दवग्गि	(दवग्गि) 6/1	दावाग्नि के
	विओएं	(विओअ) 3/1	वियोग से
	णं	अव्यय	वाक्यालंकार
	णच्चिय	(णच्च) भूकृ 1/1	नाची
	महि	(महि) 1/1	धरती
	विविह-विणोएं	[(विविह) वि –(विणोअ) 3/1]	विविध विनोद के कारण
7.	णं	अव्यय	मानो
	अत्थमिउ	(अत्थमिअ) 1/1 वि	अस्त हुआ
	दिवायरु	(दिवायर) 1/1	सूर्य
	दुक्खें	(दुक्ख) 3/1	दुःख के कारण
	णं	अव्यय	मानो
	पइसरइ	(पइसर) व 3/1 अक	व्याप्त होती है (हो गई)
	रयणि	(रयणि) 1/1	रात
	सइँ=सइं	अव्यय	स्वयं
	सुक्खें	(सुक्ख) 3/1	सुख के कारण
8.	रत्त-पत्त	[(रत्त) भूकृ अनि – (पत्त) 1/2]	सुहावने हुए, पत्ते
	तरु	(तरु) 6/1	वृक्ष के
	पवणाकम्पिय	[(पवण)+(आकम्पिय)] [(पवण) – (आकम्पिय) भूकृ 1/1]	पवन से हिले डुले
	केण	(क) 3/1 स	किसके द्वारा
	वि	अव्यय	पादपूरक
	वहिउ	(वह→वहिअ) भूकृ 1/1	नष्ट किया गया (मारा गया)
	गिम्भु	(गिम्भ) 1/1	ग्रीष्म
	णं	अव्यय	मानो
	जम्पिय	(जम्प→जम्पिय) भूकृ 1/1	बोला गया
9.	तेहए	(तेहअ) 7/1 वि 'अ' स्वार्थिक	उस जैसे
	काले	(काल) 7/1	समय में
	भयाउरए	[(भय)+(आउरए)] [(भय)-(आउरअ) 7/1 वि 'अ' स्वार्थिक]	भयातुर
	वेण्णि	(वे) 1/2 वि	दोनों
	मि	अव्यय	ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वासुएव-बलएव	[(वासुएव)-(बलएव) 1/2]	**राम और लक्ष्मण**
तरुवर-मूले	[(तरु)-(वर) वि-(मूल) 7/1]	**वृक्ष के नीचे के भाग में**
स-सीय	[(स) वि-(सीया) 1/1]	**सीता-सहित**
थिय	(थिय) भूकृ 1/2	**बैठ गये**
जोगु	(जोग) 2/1	**योग**
लएविणु	[(लअ)+(एविणु) संकृ]	**ग्रहण करके**
मुणिवर	[(मुणि)-(वर) 1/1 वि]	**महामुनि**
जेम	अव्यय	**की भांति**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ-4

पउमचरिउ

सन्धि-76

76.3

1.	रुअइ	(रुअ) व 3/1 अक	रोता है (रोया)
	विहीसणु	(विहीसण) 1/1	विभीषण
	सोयक्कमियउ	[(सोय)-(क्कम→क्कमिय→क्कमियअ) भूकृ 1/1 'अ' स्वार्थिक]	शोक से युक्त
	तुहुँ	(तुम्ह) 1/1 स	तुम
	णत्थमिउ	[(ण)+(अत्थमिउ)] ण=अव्यय (अत्थम→अत्थमिअ) भूकृ 1/1	 नहीं, समाप्त हुए
	वंसु	(वंस) 1/1	वंश
	अत्थमियउ	(अत्थम) भूकृ 1/1 'अ' स्वार्थिक	समाप्त हो गया
2.	तुहुँ	(तुम्ह) 1/1 स	तुम
	ण	अव्यय	नहीं
	जिओऽसि	[(जिओ)+(असि)] जिओ (जिअ) भूकृ 1/1 अनि असि (अस) व 2/1 अक	 जीते गए, हो
	सयलु	(सयल) 1/1 वि	सकल
	जिउ	(जिअ) भूकृ 1/1 अनि	जीत लिया गया
	तिहुअणु	(तिहुअण) 1/1	त्रिभुवन
	तुहुँ	(तुम्ह) 1/1 स	तुम
	ण	अव्यय	नहीं
	मुओऽसि	[(मुओ)+(असि)] मुओ (मुअ) भूकृ 1/1 अनि असि (अस) व 2/1 अक	 मरे, हो
	मुअउ	(मुअ→मुअअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	मर गया
	वन्दिय-जणु	[(वन्द) भूकृ - (जण) 1/1]	सम्मानित जन-समुदाय
3.	तुहुँ	(तुम्ह) 1/1 स	तुम
	पडिओऽसि	[(पडिओ)+(असि)] पडिओ (पड→पडिअ) भूकृ 1/1 असि (अस) व 2/1 अक	 पड़े, हो
	ण	अव्यय	नहीं
	पडिउ	(पड→पडिअ) भूकृ 1/1	पड़ा
	पुरन्दरु	(पुरन्दर) 1/1	इन्द्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मउडु	(मउड) 1/1	मुकुट
ण	अव्यय	नहीं
भग्गु	(भग्ग) भूकृ 1/1 अनि	टुकड़े-टुकड़े किया गया
भग्गु	(भग्ग) भूकृ 1/1 अनि	टुकड़े-टुकड़े कर दिया गया
गिरि-मन्दरु	[(गिरि)-(मन्दर) 1/1]	सुमेरु पर्वत
4. दिट्ठि	(दिट्ठि) 1/1	विचार-पद्धति
ण	अव्यय	नहीं
णट्ठ	(णट्ठ) भूकृ 1/1 अनि	समाप्त हुई
णट्ठ	(णट्ठ) भूकृ 1/1 अनि	समाप्त हो गई
लङ्काउरि	(लङ्काउरी) 1/1	लंकापुरी
वाय	(वाया) 1/1	वाणी
ण	अव्यय	नहीं
णट्ठ	(णट्ठ) भूकृ 1/1 अनि	नष्ट हुई
णट्ठ	(णट्ठ) भूकृ 1/1 अनि	नष्ट हो गई
मन्दोयरि	(मन्दोयरी) 1/1	मन्दोदरी
5. हारु	(हार) 1/1	हार
ण	अव्यय	नहीं
तुट्टु	(तुट्ट) भूकृ 1/1 अनि	टूटा
तुट्टु	(तुट्ट) भूकृ 1/1 अनि	टूट गए
तारायणु	[(तारा)-(अण→यण) 1/1]	तारागण
हियउ	(हियअ) 1/1	हृदय
ण	अव्यय	नहीं
भिण्णु	(भिण्ण) भूकृ 1/1 अनि	भंग किया गया
भिण्णु	(भिण्ण) भूकृ 1/1 अनि	भंग कर दिया गया
गयणङ्गणु	[(गयण)+(अङ्गणु)][(गयण)-(अङ्गण) 1/1]	आकाश प्रदेश
6. चक्कु	(चक्क) 1/1	चक्र
ण	अव्यय	नहीं
ढुक्कु	(ढुक्क) भूकृ 1/1 अनि	आया (पहुँचा)
ढुक्कु	(ढुक्क) भूकृ 1/1 अनि	आ पहुँचो
एक्कन्तरु	[(एक्क)+(अन्तरु)] एक्क (एक्क) 1/1	एक,
	अन्तरु (अन्तर) 1/1	परिवर्तित दशा
आउ	(आउ) 1/1	आयु
ण	अव्यय	नहीं
खुट्टु	(खुट्ट) भूकृ 1/1 अनि	क्षीण हुई
खुट्टु	(खुट्ट) भूकृ 1/1 अनि	क्षीण हो गया
रयणायरु	(रयणायर) 1/1	सागर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

7.	जीउ	(जीअ) 1/1	जीवन
	ण	अव्यय	नहीं
	गउ	(गअ) भूकृ 1/1 अनि	विदा हुआ
	गउ	(गअ) भूकृ 1/1 अनि	विदा हो गई
	आसा-पोट्टलु	[(आसा)-(पोट्टल) 1/1]	आशाओं की पोटली
	तुहुँ	(तुम्ह) 1/1 स	तुम
	ण	अव्यय	नहीं
	सुत्तु	(सुत्त) भूकृ 1/1 अनि	सोये
	सुत्तउ	(सुत्तअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	सो गया
	महि-मण्डलु	[(महि)-(मण्डल) 1/1]	पृथ्वीमण्डल
8.	सीय	(सीया) 1/1	सीता
	ण	अव्यय	नहीं
	आणिय	(आण→आणिय (स्त्री)→आणिया) भूकृ 1/1	लायी गई
	आणिय	(आण→आणिय (स्त्री)→आणिया) भूकृ 1/1	लाई गई
	जमउरि	(जमउरी) 1/1	यमपुरी
	हरि-बलु	[(हरि)-(बल) 1/1]	राम की सेना
	कुद्ध	(कुद्ध) भूकृ 1/1 अनि	कुपित हुई
	ण	अव्यय	नहीं
	कुद्धा	(कुद्ध) भूकृ 1/1 अनि	कुपित हुआ
	केसरि	(केसरि) 1/1	सिंह
9.	सुरवर-सण्ढ-वराइएण	[(सुरवर)-(सण्ढ)-(वराई) 3/1 वि]	बेचारे देवताओं के समूह द्वारा
	सयल-काल[1]	[(सयल)-(काल) 7/1]	सभी काल में
	जे	(ज) 1/2 सवि	जो
	मिग	(मिग) 1/2	हरिण
	सम्भूया	(सम्भूय) भूकृ 1/2 अनि	रहे
	रावण	(रावण) 8/1	हे रावण
	पइँ	(तुम्ह) 3/1 स	तेरे
	सीहेण	(सीह) 3/1	सिंह के
	विणु	अव्यय	बिना
	ते	(त) 1/2 सवि	वे
	वि	अव्यय	ही
	अज्जु	अव्यय	आज
	सच्छन्दीहूया	[(सच्छन्द(स्त्री)→सच्छन्दी) – (हूय) भूकृ 1/2 अनि]	स्वच्छन्दी, हुए

1. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति में भी शून्य प्रत्यय का प्रयोग पाया जाता है। श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 147।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

1.	दिट्ठु	(दिट्ठ) भूकृ 1/1 अनि	देखा गया
	पुणो वि	अव्यय	फिर
	णाहु	(णाह) 1/1	पति
	पिय-णारिहिँ	[(पिय)-(णारी) 3/2]	प्रिय पत्नियों द्वारा
	सुत्तु	(सुत्त) भूकृ 1/1 अनि	सोया हुआ
	मत्त-हत्थि	[(मत्त) वि -(हत्थि) 1/1]	मतवाला हाथी
	व	अव्यय	जैसे
	गणियारिहिँ	(गणियारि) 3/2	हथिनियों के द्वारा
2.	वाहिणिहिँ	(वाहिणी) 3/2	नदियों द्वारा
	व	अव्यय	जैसे
	सुक्कउ	(सुक्कअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	सूखा हुआ
	रयणायरु	(रयणायर) 1/1	समुद्र
	कमलिणिहिँ	(कमलिणी) 3/2	कमलिनियों के द्वारा
	व	अव्यय	जैसे
	अत्थवण-दिवायरु	[(अत्थवण)[1] -(दिवायर) 1/1]	डूबने से (समाप्त हुआ) सूर्य
3.	कुमुइणिहिँ	(कुमुइणी) 3/2	कुमुदनियों द्वारा
	व्व	अव्यय	जैसे
	जरढ-मयलञ्छणु	[(जरढ) वि-(मयलञ्छण) 1/1]	क्षीण चन्द्रमा
	विज्जुहि	(विज्जु) 3/2	बिजलियों द्वारा
	व्व	अव्यय	जैसे
	छुडु-छुडु	अव्यय	पुनः पुनः
	वरिसिय-घणु	[(वरिस→वरिसिय) भूकृ -(घण) 1/1]	बरसा हुआ बादल
4.	अमर-वहूहिँ	[(अमर)-(वहू) 3/2]	देवताओं की स्त्रियों द्वारा
	व	अव्यय	जैसे
	चवण-पुरन्दरु	[[(चवण)-(पुरन्दर) 1/1] वि]	मरण को प्राप्त इन्द्र
	गिम्भ-दिसाहिँ	[(गिम्भ)-(दिसा) 3/2]	ग्रीष्म में दिशाओं द्वारा
	व	अव्यय	जैसे
	अञ्जण-महिहरु	[(अञ्जण)-(महिहर) 1/1]	वृक्षों से युक्त पर्वत
5.	भमरावलिहि	[(भमर) + (आवलिहि)] [(भमर)-(आवलि) 3/2]	भँवरों की पंक्तियों द्वारा
	व्व	अव्यय	जैसे
	सूडिय-तरुवरु	[(सूड→सूडिय) भूकृ-(तरुवर) 1/1]	नाश को प्राप्त, श्रेष्ठ वृक्ष

1. अस्तमन→अत्थवण=डूबना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कलहंसीहि	[(कलहंस→(स्त्री)कलहंसी) 3/2]	राजहंसनियों द्वारा
व्व	अव्यय	जैसे
अजलु	(अजल) 1/1 वि	जलरहित
महासरु	[(महा) वि-(सर) 1/1]	बड़ा तालाब
6. कलयण्ठीहि	(कलयण्ठी) 3/2	कोकिलों द्वारा
व्व	अव्यय	जैसे
माहव-णिग्गमु	[(माहव)-(णिग्गम) 1/1]	वसन्त ऋतु का जाना
णाइणिहिँ	(णाइणी) 3/2	नागिनियों द्वारा
व	अव्यय	जैसे
हय-गरुड-भुयङ्गमु	[(हय) भूकृ अनि-(गरुड)-(भुयङ्गम) 1/1]	गरुड से मारा हुआ सर्प
7. वहुल-पओसु	[(वहुल)-(पओस) 1/1 वि]	कृष्णपक्ष, दोषों से युक्त
व	अव्यय	जैसे
तारा-पन्तिहिँ	[(तारा)-(पन्ति) 3/2]	तारों की पंक्तियों द्वारा
तेम	अव्यय	उसी प्रकार
दसास-पासु	[(दस)+(आस)+(पासु)]	दसमुखवाले के पास
	[(दस) वि -(आस)-(पास) 1/1]	
ढुक्कन्तिहिँ	(ढुक्क→ढुक्कंत→ढुक्कंती) वकृ 3/2	जाती हुई (रानियों) के द्वारा
8. दस-सिरु	[(दस) वि-(सिर) 1/1]	दससिर
दस-सेहरु	[(दस) वि-(सेहर) 1/1]	दसशिखा
दस-मउडउ	[(दस) वि-(मउड-अ) 1/1 'अ' स्वार्थिक]	दसमुकुट
गिरि	(गिरि) 1/1	पर्वत
व	अव्यय	मानो
स-कन्दरु	(स-कन्दर) 1/1 वि	गुफा-सहित
स-तरु	(स-तरु) 1/1 वि	वृक्ष-सहित
स-कूडउ	(स-कूडअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	शिखर-सहित
9. णिएवि	(णिअ+एवि) संकृ	देखकर
अवत्थ	(अवत्था) 2/1	अवस्था को
दसाणणहो	(दसाणण) 6/1	रावण की
हा हा	अव्यय	हाय-हाय
सामि	(सामि) 1/1	स्वामी
भणन्तु	(भण→भणन्त) वकृ 1/1	कहते हुए
स-वेयणु	(स-वेयण) 1/1 वि	पीड़ा सहित
अन्तेउरु	(अन्तेउर) 1/1	अन्तःपुर
मुच्छा-विहलु	[(मुच्छा)-(विहल) 1/1]	मूर्च्छा से व्याकुल
णिवडिउ	(णिवड→णिवडिअ) भूकृ 1/1	गिरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महिहिँ	(महि) 7/1	पृथ्वी पर
झत्ति	अव्यय	शीघ्र
णिच्चेयणु	(णिच्चेयण) 1/1 वि	चेतना-रहित

सन्धि–77

भाइ-विप्रोएं	[(भाइ)-(विओअ) 3/1]	भाई के वियोग से
जिह्-जिह	अव्यय	जैसे-जैसे
करइ	(कर) व 3/1 सक	करता
विहीसणु	(विहीसण) 1/1	विभीषण
सोउ	(सोअ) 2/1	शोक
तिह्-तिह	अव्यय	वैसे-वैसे
दुक्खेण	(दुक्ख) 3/1	दुःख के कारण
रुवइ	(रुव) व 3/1 अक	रोते
स-हरि-बल-वाणर-लोउ	[(स)-(हरि)-(बल)-(वाणर)-(लोअ) 1/1]	राम, लक्ष्मण सहित वानर जाति के लोग

77.1

1.	दुम्मणु	(दुम्मण) 1/1 वि	दुःखी मन
	दुम्मण-वयणउ	[[(दुम्मण) वि-(वयणअ) 1/1 'अ' स्वा.]वि]	उदास मुखवाला
	अंसु-जलोल्लिय-णयणउ	[(अंसु)+(जल)+(उल्लिय)+(णयणउ)] [[(अंसु)-(जल)-(उल्ल→उल्लिय) भूकृ-(णयणअ) 1/1 'अ' स्वार्थिक] वि]	आँसु के जल से गीली हुई आँखोंवाला
	ढुक्कु	(ढुक्क) 1/1 वि (दे)	पहुँचा
	कइद्धय-सत्थउ	[(कइद्धय)-(सत्थअ) 1/1 'अ' स्वार्थिक]	कपि (चिह्नयुक्त) ध्वज (लिए हुए) जन-समूह
	जहिँ	अव्यय	जहाँ
	रावणु	(रावण) 1/1	रावण
	पल्हत्थउ	(पल्हत्थअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	मार गिराया गया
2.	तेण[1]	(त) 3/1 स	उसके
	समाणु	अव्यय	साथ
	विणिग्गय-णामेहिँ	[[(विणिग्गय) भूकृ अनि-(णाम) 3/2] वि]	फैले हुए नामवाले (विख्यात)
	दिट्ठु	(दिट्ठ) भूकृ 1/1 अनि	देखा गया
	दसाणणु	(दसाणण) 1/1	रावण
	लक्खण-रामेहिँ	[(लक्खण)-(राम) 3/2]	राम और लक्ष्मण द्वारा

1. साथ (समाणु) के योग में तृतीया विभक्ति का प्रयोग किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

3.	विट्ठइँ	(दिट्ठ) भूक 1/2 अनि	देखे गए
	स-मउड-सिरइँ	[(स-मउड) वि-(सिर) 1/2]	मुकुटसहित सिर
	पलोट्टइँ	(पलोट्ट) भूक 1/2 अनि	जमीन पर गिरे हुए
	णाइँ	अव्यय	मानो
	स-केसराइँ	(स-केसर) 1/2 वि	पराग-सहित
	कन्दोट्टइँ	(कन्दोट्ट) 1/2	कमल
4.	दिट्ठइँ	(दिट्ठ) भूक 1/2 अनि	देखे गए
	भालयलइँ[1]	(भालयल) 1/2	भाल, ललाट
	पायडियइँ	(पायड→पायडिय) भूक 1/2	खुले हुए
	अद्धयन्द-बिम्बाइँ	[(अद्धयन्द)-(बिम्ब) 1/2]	अर्द्धचन्द्र के प्रतिबिम्ब
	व	अव्यय	मानो
	पडियइँ	(पड→पडिय) भूक 1/2	पड़े हुए
5.	दिट्ठइँ	(दिट्ठ) भूक 1/2 अनि	देखे गए
	मणि-कुण्डलइँ	[(मणि)-(कुण्डल) 1/2]	मणियों से (बने हुए) कुण्डल
	स-तेयइँ	(स-तेय) 1/2 वि	कान्ति-युक्त
	णं	अव्यय	मानो
	खय-रवि-मण्डलइँ	[(खय) भूक-(रवि)-(मण्डल) 1/2]	गिरे हुए, रवि-चक्र
	अणेयइँ	(अणेय) 1/2 वि	अनेक
6.	दिट्ठउ	(दिट्ठ→(स्त्री) दिट्ठा) भूक 1/2 अनि	देखी गई
	भउहउ	(भउहा) 1/2	भौंहें
	भिउडि-करालउ	[(भिउडि)-(करालअ) 1/1 वि 'अ' स्वा.]	भौंह के विकार से भयंकर
	णं	अव्यय	मानो
	पलयग्गि-सिहउ	[(पलय)+(अग्गि)+(सिहउ)]	प्रलय की आग
		[(पलय)-(अग्गि)-(सिहा) 1/2]	की ज्वालाएँ
	धूमालउ	[(धूम) + (आलउ)]	धुएँ के आश्रयवाली
		[[(धूम)-(आलअ) 1/1] वि]	
7.	दिट्ठइँ	(दिट्ठ) भूक 1/2 अनि	देखे गए
	दीह-विसालइँ	[(दीह) वि-(विसाल) 1/2 वि]	लम्बे और चौड़े
	णेत्तइँ	(णेत्त) 1/2	नेत्र
	मिहुणा	(मिहुण) 1/2	स्त्री-पुरुष के जोड़े
	इव	अव्यय	मानो
	आमरणासत्तइँ	[(आमरण)+(आसत्तइँ)]	मृत्यु तक आसक्त
		[(आमरण) – (आसत्त) भूक 1/2 अनि]	

1. कभी-कभी समास के अन्त में 'यल' लगाने से अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

8. मुह-कुहरइँ	[(मुह)-(कुहर) 1/2]	मुख-विवर
दट्ठोट्ठइँ	[(दट्ठ)+(ओट्ठइँ)][(दट्ठ)भूकृ अनि-(ओट्ठ)1/2]	दाँतों से काटे गए होठ
दिट्ठइँ	(दिट्ठ) भूकृ 1/2 अनि	देखे गये
जमकरणाइँ	[(जम)-(करण) 1/2]	मृत्यु के साधन
व	अव्यय	मानो
जमहो	(जम) 6/1	यम के
अणिट्ठइँ	(अणिट्ठ) भूकृ 1/2 अनि	अप्रीतिकर
9. दिट्ठ	(दिट्ठ) भूकृ 1/2 अनि	देखी गईं
महब्भुव[1]	(महब्भुव) 1/2	महा-भुजाएँ
भड-सन्दोहें	[(भड)-(सन्दोह) 3/1]	योद्धाओं के समूह द्वारा
णं	अव्यय	मानो
पारोह	(पारोह) 1/2	शाखाएँ
मुक्क	(मुक्क) भूकृ 1/2 अनि	निकाली हुई
णग्गोहें	(णग्गोह) 3/1	बड़ के पेड के द्वारा
10. दिट्ठु	(दिट्ठ) भूकृ 1/2 अनि	देखी गई
उरत्थलु	(उरत्थल) 1/1	छाती
फाडिउ	(फाड) भूकृ 1/1	फाड़ी हुई
चक्कें	(चक्क) 3/1	चक्र के द्वारा
दिण-मज्झु	[(दिण)-(मज्झ) 1/1]	दिन का बीच
अ	अव्यय (दे)	मानो
मज्झत्थें	(मज्झत्थ) 3/1 वि	मध्य में स्थित
अक्कें	(अक्क) 3/1	सूर्य के द्वारा
11. अवणियलु	[(अवणि)-(यल) 1/1]	पृथ्वीतल
व	अव्यय	मानो
विञ्झेण	(विञ्झ) 3/1	विंध्य के द्वारा
विहञ्जिउ	(विहञ्ज) भूकृ 1/1	विभक्त कर दिया गया
णं	अव्यय	मानो
विहिँ	(वि) 3/2 वि	विविध
भाएहिँ	(भाअ) 3/2	भागों द्वारा
तिमिरु	(तिमिर) 1/1	अंधकार
व	अव्यय	मानो
पुञ्जिउ	(पुञ्ज) भूकृ 1/1	इकट्ठा किया गया
12 पेक्खेवि	(पेक्ख+एवि) संकृ	देखकर

1. मह+भुव=महब्भुव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रामेण	(राम) 3/1	राम के द्वारा
समरङ्गणें	[(समर)+(अङ्गणे)] [(समर)-(अङ्गण) 7/1]	युद्धस्थल में
रामणहो	(रामण) 6/1	रावण के
मुहाइँ	(मुह) 2/2	मुखों को
आलिंगेप्पिणु	(आलिङ्ग+एप्पिणु) संकृ	छाती से लगाकर
धीरिउ	(धीर→धीरिअ) भूकृ 1/1	धीरज बंधाया गया
रुवहि	(रुव) व 2/1 अक	रोते हो
विहीसण	(विहीसण) 8/1	हे विभीषण
काइँ	अव्यय	क्यों

77.2

1.	सो	(त) 1/1 सवि	वह
	मुउ	(मुअ) भूकृ 1/1 अनि	मरा हुआ
	जो	(ज) 1/1 सवि	जो
	मय-मत्तउ	[(मय)-(मत्तअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वा.]	अहंकार के नशे में चूर
	जीव-दया-परिचत्तउ	[[(जीव)-(दया)-(परिचत्तअ) भूकृ 1/1 अनि] वि]	जीव-दया छोड़ दी गई (जिसके द्वारा)
	वय-चारित्त-विहूणउ	[(वय)-(चारित)-(विहूणअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक]	व्रत और चारित्र से हीन
	दाण-रणङ्गणे	[(दाण)-(रणङ्गण) 7/1]	दान और युद्धस्थल में
	दीणउ	(दीणअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	भीरु
2.	सरणाइय-वन्दिग्गहे	[(सरण)+(आइय)+(वन्दिग्गहे)] [(सरण)-(आइय) भूकृ अनि-(वन्दिग्गह) 7/1]	शरण में आए हुए के लिए, (दोषियों को) कैदीरूप में पकड़ने में
	गोग्गहे	[(गो)-(ग्गह) 7/1]	गाय के संरक्षण में
	सामिहे	(सामि) 6/1	स्वामी के
	अवसरे	(अवसर) 7/1	समय में
	मित्त-परिग्गहे	[(मित्त)-(परिग्गह) 7/1]	मित्र की सहायता में
3.	णिय-परिहवे	[(णिय) वि-(परिहव) 7/1]	निज का अपमान होने पर
	पर-विहुरे	[(पर) वि-(विहुर) 7/1]	दूसरे के दुःख में
	ण	अव्यय	नहीं
	जुज्जइ	(जुज्जइ) व कर्म 3/1 सक अनि	लगा जाता है
	तेहउ	(तेहअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	वैसा
	पुरिसु	(पुरिस) 1/1	पुरुष
	विहीसण	(विहीसण) 8/1	हे विभीषण
	रुज्जइ	(रुज्जइ) व भाव 3/1 अक अनि	रोया जाता है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

4.	अण्णु	(अण्ण) 1/1 वि	अन्य
	इ	अव्यय	भी
	दुक्किय-कम्म जणेरउ	[(दुक्किय) – (कम्म) – (जणेरअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक]	पाप-कर्म का उत्पादक
	गरुअउ	(गरुअअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	बहुत भारी
	पाव-भारु	[(पाव)–(भार) 1/1]	पाप का बोझ
	जसु	(ज) 6/1 स	जिसके
	केरउ	(केरअ) 1/1	सम्बन्धार्थक परसर्ग
7.	सव्वंसह	(सव्वंसहा) 1/1	पृथ्वी
	वि	अव्यय	भी
	सहेवि	(सह+एवि) हेकृ	सहने के लिए
	ण	अव्यय	नहीं
	सक्कइ	(सक्क) व 3/1 अक	समर्थ होती है
	अहो	अव्यय	पादपूरक
	अण्णाउ	(अण्णाअ) 2/1	अन्याय को
	भणन्ति	(भण→(स्त्री)भणन्ती) वकृ 1/1	कहती हुई
	ण	अव्यय	नहीं
	थक्कइ	(थक्क) व 3/1 अक	थकती है
6.	वेवइ	(वेव) व 3/1 अक	काँपती है
	वाहिणि	(वाहिणी) 1/1	नदी
	कि	अव्यय	क्यों
	मइँ	(अम्ह) 2/1 स	मुझको
	सोसहि	(सोस) व 2/1 सक	सुखाते हो
	धाहावइ	(धाहाव) व 3/1 अक	हाहाकार मचाती है
	खज्जन्ती	(खज्ज→खज्जन्त→खज्जन्ती) वकृ 1/1	खाई जाती हुई
	ओसहि	(ओसहि) 1/1	औषधि
7.	छिज्जमाण	(छिज्ज→छिज्जमाण→(स्त्री)छिज्जमाणा) वकृ कर्म 1/1	काटी जाती हुई
	वणसइ	(वणसइ) 1/1	वनस्पति
	उग्घोसइ	(उग्घोस) व 3/1 सक	घोषणा करती है
	कइयहुँ	अव्यय	कब
	मरणु	(मरण) 1/1	मरण
	णिरासहो	(णिर+आस=णिरास) 6/1 वि	दुष्ट चित्तवाले का
	होसइ	(हो) भवि 3/1 अक	होगा
8.	पवणु	(पवण) 1/1	पवन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ण[1]	(ण) 6/1 स	उससे
भिडइ	(भिड) व 3/1 अक (दे)	भिड़ता है
भाणु	(भाणु) 6/1	सूर्य की
कर	(कर) 1/2	किरणें
खञ्चइ	(खञ्च) व 3/1 सक	परास्त करती है (परास्त कर देती हैं)
धणु	(धण) 2/1	धन
राउल-चोरग्गिहुँ	[(राउल)-(चोर)-(ग्गी) स्त्री 5/1]	राजकुल के चोरों की स्तुति से
सञ्चइ	(सञ्च) व 3/1 सक	इकट्ठा करता है
9. विन्धइ	(विन्ध) व 3/1 सक	बींध देता है
कण्टेहिँ	(कण्ट) 3/2	काँटों से
व	अव्यय	पादपूरक
दुव्वयणेहिँ	(दुव्वयण) 3/2	दुर्वचनरूपी
विस-रुक्खु	[(विस)-(रुक्ख) 1/1]	विष-वृक्ष
व	अव्यय	की तरह
मण्णिज्जइ	(मण्ण) व कर्म 3/1 सक	माना जाता है
सयणेहिँ	(सयण) 3/2	स्वजनों द्वारा
10. धम्म-विहूणउ	[(धम्म)-(विहूणअ) भूकृ 1/1 'अ' स्वार्थिक]	धर्म-रहित
पाव-पिण्डु	[(पाव)-(पिण्ड) 1/1]	पाप का पिण्ड
अणिहालिय-थामु	[(अण)+(इह)+(आलिय)+(थामु)] [(अण)-(इह)-(आलि→आलिय) भूकृ - (थाम) 1/1 (दे)]	नहीं, यहाँ, निवास किया हुआ, स्थान
सो	(त) 1/1 सवि	वह
रोवेवउ	(रोव+एवउ) विधि कृ 1/1	रोया जाना चाहिए
जासु	(ज) 6/1 स	जिसका
महिस-विस-मेसहिँ	[(महिस)-(विस)-(मेस) 3/2]	महिष, वृष और मेष के द्वारा
णामु	(णाम) 1/1	नाम

77.4

1. तं	(त) 2/1 सवि	उसको
णिसुणेवि	(णिसुण+एवि) संकृ	सुनकर
पहाणउ	(पहाणअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	प्रधान
भणइ	(भण) व 3/1 सक	कहता है (कहा)
विहीसण-राणउ	[(विहीसण)-(राणअ) 1/1 'अ' स्वार्थिक]	विभीषण राजा

1. कभी-कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हे.प्रा.व्या. 3-134)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एत्तिउ	अव्यय	इतना
रुअमि	(रुअ) व 1/1 अक	रोता हूँ
दसासहो[1]	[(दस)+(आसहो)] [[(दस) वि-(आस)6/1] वि]	दसमुखवाले (रावण) के द्वारा
भरिउ	(भर) भूकृ 1/1	भर दिया गया
भुवणु	(भुवण) 1/1	जगत
जं	अव्यय	कि
अयसहो[1]	(अयस) 6/1	अपयश से
2. एण	(ण→णेण→एण) 3/1 सवि (प्रा.)	इस
सरीरें	(सरीर) 3/1	शरीर के द्वारा
अविणय-थाणें	[[(अविणय)-(थाण) 3/1] वि]	दोष के घर
दिट्ठ-णट्ठ-जल-विन्दु-समाणें	[(दिट्ठ) भूकृ अनि-(णट्ठ) भूकृ अनि-(जल)-(विन्दु)-(समाण) 3/1]	देखा गया, नाश को प्राप्त, जल-बिन्दु के समान
3. सुरचावेण[2]	[(सुर)-(चाव) 3/1]	इन्द्र धनुष के
व	अव्यय	समान
अथिर-सहावें	[[(अथिर) वि-(सहाव) 3/1] वि]	अस्थिर-स्वभाववाले
तडि-फुरणेण	[(तडि)-(फुरण) 3/1]	बिजली की चमक के
व	अव्यय	समान
तक्खण-भावें	[(तक्खण)-(भावें)] तक्खण=अव्यय (भाव) 3/1	शीघ्र (परिवर्तनशील) अवस्था होने से
4. रम्भा-गब्भेण	[(रम्भा)-(गब्भ) 3/1]	केले के पेड़ के भीतर (के भाग) के
व	अव्यय	समान
णीसारें	(णीसार) 3/1 वि	साररहित
पक्क-फलेण	[(पक्क) वि-(फल) 3/1]	पके फल के
व	अव्यय	समान
सउणाहारें	[(सउण)+(आहारें)] [(सउण)-(आहार)3/1 वि]	पक्षियों के (प्रिय) भोजन
11. तउ	(तअ) 1/1	तप
ण	अव्यय	नहीं
चिण्णु	(चिण्ण) भूकृ 1/1 अनि	किया गया
मण-तुरउ	[(मण)-(तुरअ) 1/1]	मनरूपी घोड़ा

1. कभी-कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे. प्रा. व्या. 3-134)।
2. तुल्य (समान) का अर्थ बतानेवाले शब्दों के साथ तृतीया या षष्ठी विभक्ति होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ण	अव्यय	नहीं
खञ्चिउ	(खञ्च) भूकृ 1/1	वश में किया गया
मोक्खु	(मोक्ख) 1/1	मोक्ष
ण	अव्यय	नहीं
साहिउ	(साह) भूकृ 1/1	साधा गया
णाहु	(णाह) 1/1	परमेश्वर
ण	अव्यय	नहीं
अञ्चिउ	(अञ्च) भूकृ 1/1	पूजा गया
12. वउ	(वअ) 1/1	व्रत
ण	अव्यय	नहीं
धरिउ	(धर) भूकृ 1/1	धारण किया गया
महु	(मह) 1/1	विनाश
ए	(इम) 1/1 सवि	यह
किउ	(कि) भूकृ 1/1	किया गया
णिवारिउ	(णिवार) भूकृ 1/1	रोका हुआ
अप्पउ	(अप्पअ) 1/1 'अ' स्वार्थिक	अपना
किउ	(कि) भूकृ 1/1	बनाया गया
तिण-समउ	[(तिण)-(समअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक]	तिनके के समान
णिरारिउ	अव्यय	निश्चय ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ-5

पउमचरिउ

सन्धि-83

83.2

9. एत्तडउ	(एत्त+अडअ) 1/1 वि	इतना
दोसु	(दोस) 1/1	दोष
पर	अव्यय	किन्तु
रहुवइ	(रहुवइ) 8/1	रघुपति
हे	अव्यय	हे
जं	अव्यय	कि
परमेसरि	(परमेसरी) 1/1	परमेश्वरी
णाहिँ	अव्यय	नहीं
घरे	(घर) 7/1	घर में
ण	अव्यय	नहीं
पमायहि	(पमाय) विधि 2/1 अक	भटकें
लोयहुँ	(लोय) 6/2	लोगों के
छन्देण	(छन्द) 3/1	छल से
आणेवि	(आण+एवि) संकृ	जानकर, समझकर
कावि	(का) 1/1 सवि	कोई भी
परिक्ख	(परिक्खा) 2/1	परीक्षा
करे	(कर) विधि 2/1 सक	करें

83.3

1. तं	(त) 2/1 स	उसको
णिसुणेवि	(णिसुण+एवि) संकृ	सुनकर
चवइ	(चव) व 3/1 सक	कहता है (कहा)
रहुणन्दणु	(रहुणन्दण) 1/1	रघुनन्दन
जाणमि	(जाण) व 1/1 सक	जानता हूँ
सीयहे	(सीया) 6/1	सीता के
तणउ	अव्यय	सम्बन्धक परसर्ग
सइत्तणु	(सइत्तण) 2/1	सतीत्व को
2. जाणमि	(जाण) व 1/1 सक	जानता हूँ
जिह	अव्यय	जिस प्रकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हरिवंसुप्पण्णी	[(हरि)+(वंस)+(उप्पण्णी)] [(हरि)-(वंस)-(उप्पण्ण→(स्त्री)उप्पण्णी) भूकृ 1/1 अनि]	हरिवंश में उत्पन्न हुई
जाणमि	(जाण) व 1/1 सक	जानता हूँ
जिह	अव्यय	जिस प्रकार
वय-गुण-संपण्णी	[(वय)-(गुण)-(संपण्ण→(स्त्री) संपण्णी) भूकृ 1/1 अनि]	व्रत और गुण से युक्त
3. जाणमि	(जाण) व 1/1 सक	जानता हूँ
जिह	अव्यय	जिस प्रकार
जिण-सासणे	[(जिण)-(सासण) 7/1]	जिनशासन में
भत्ती	(भत्ति) 1/1	भक्ति
जाणमि	(जाण) व 1/1 सक	जानता हूँ
जिह	अव्यय	जिस प्रकार
महु	(अम्ह) 4/1 स	मेरे लिए
सोक्खुप्पत्ती	[(सोक्ख)+(उप्पत्ती)] [(सोक्ख)-(उप्पत्ति) 2/1]	सुख की उत्पत्ति को
4. जा	(जा) 1/1 सवि	जो
अणुगुणसिक्खावयधारी	[(अणु)-(गुण)-(सिक्खा)-(वय)-(धार→(स्त्री) धारी) 1/1 वि]	अणुव्रत, गुणव्रत व शिक्षाव्रतों को धारण करनेवाली
जा	(जा) 1/1 सवि	जो
सम्मत्तरयणमणिसारी	[(सम्मत)-(रयण)-(मणि)-(सार→(स्त्री) सारी) 1/1 वि]	सम्यक्त्वरूपीरत्नों और मणियों का सार(निचोड़)
5. जाणमि	(जाण) व 1/1 सक	जानता हूँ
जिह	अव्यय	जिस प्रकार
सायर-गम्भीरी	[(सायर)-(गम्भीर→(स्त्री)गम्भीरी)2/1 वि]	सागर के समान गम्भीर को
जाणमि	(जाण) व 1/1 सक	जानता हूँ
जिह	अव्यय	जिस प्रकार
सुरमहिहर-धीरी	[(सुर)-(महिहर)-(धीर→(स्त्री) धीरी) 2/1 वि]	मेरु (देवताओं के) पर्वत के समान धैर्यवाली को
6. जाणमि	(जाण) व 1/1 सक	जानता हूँ
अंकुस-लवण-जणेरी	[(अंकुस)-(लवण)-(जणेर→(स्त्री) जणेरी) 2/1 वि]	अंकुश और लवण की माता को
जाणमि	(जाण) व 1/1 सक	जानता हूँ
जिह	अव्यय	जिस प्रकार
सुय	(सुया) 2/1	पुत्री को
जणयहो	(जणय) 6/1	जनक की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	केरो	अव्यय	सम्बन्धसूचक परसर्ग
7.	जाणमि	(जाण) व 1/1 सक	जानता हूँ
	सस	(ससा) 2/1	बहन को
	भामण्डलरायहो	[(भामण्डल)-(राय) 6/1]	भामण्डल राजा की
	जाणमि	(जाण) व 1/1 सक	जानता हूँ
	सामिणि	(सामिणी) 2/1	स्वामिनी को
	रज्जहो	(रज्ज) 6/1	राज्य की
	आयहो	(आय) 6/1 सवि	इस (की)
8.	जाणमि	(जाण) व 1/1 सक	जानता हूँ
	जिह	अव्यय	जिस प्रकार
	अन्तेउर-सारी	[(अन्तेउर)-(सार→(स्त्री) सारी) 1/1 वि]	अन्तःपुर में श्रेष्ठ
	जाणमि	(जाण) व 1/1 सक	जानता हूँ
	जिह	अव्यय	जिस प्रकार
	महु	(अम्ह) 4/1 स	मेरे लिए
	पेसण-गारी	[(पेसण)-(गार→(स्त्री) गारी) 1/1 वि]	आज्ञा (पालन) करनेवाली
9.	मेल्लेप्पिणु	(मेल्ल+एप्पिणु) संकृ	मिलकर
	णायरलोएण	[(णायर)-(लोअ) 3/1]	नगर के लोगों द्वारा
	महु	(अम्ह) 4/1 स	मेरे लिए
	घरे	(घर) 7/1	घर में
	उब्भा	(उब्भ) 2/2 वि	ऊँचे
	करेवि	(कर+एवि) संकृ	करके
	कर	(कर) 2/2	हाथों को
	जो	(ज) 1/1 सवि	जो
	दुज्जसु	(दुज्जस) 1/1	अपयश
	उप्परे	अव्यय	ऊपर
	घित्तउ	(घित्तअ) भूकृ 1/1 अनि	डाला गया
	एउ	(एअ) 1/1 सवि	यह
	ण	अव्यय	नहीं
	जाणहो	(जाण) 4/1	समझने (जानने) के लिए
	एक्कु	(एक्क) 1/1 वि	एक
	पर	अव्यय	किन्तु

83.4

1.	तहिँ	(त) 7/1 स	उस (पर)
	अवसरे	(अवसर) 7/1	अवसर पर
	रयणासव-जाएं	[(रयणासव)-(जाअ) भूकृ 3/1 अनि]	रत्नाश्रव के पुत्र (द्वारा)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	कोक्किय	(कोक्क→कोक्किया) भूकृ 1/1	बुलायी गई
	तियड	(तियडा) 1/1	त्रिजटा
	विहिसण–राएं	[(विहीसण)–(राअ) 3/1]	विभीषण राजा के द्वारा
2.	बोल्लाविय	[(बोल्ल+आवि) प्रे. भूकृ 1/1]	बुलवाई गयी
	एत्तहे	अव्यय	यहाँ पर
	वि	अव्यय	ही
	तुरन्तें	क्रिविअ	तुरन्त
	लङ्कासुन्दरि	(लंकासुन्दरी) 1/1	लंकासुन्दरी
	तो	अव्यय	तब
	हणुवन्तें	(हणुवन्त) 3/1	हनुमान के द्वारा
3.	विण्णि	(विण्ण→विण्णी) 1/1 वि	दोनों
	वि	अव्यय	ही
	विण्णवन्ति	(विण्णव) व 3/2 सक	कहती हैं
	पणमन्तिउ	(पणम→पणमन्त→पणमन्ती) वकृ 1/2	प्रणाम करती हुई
	सीय–सइत्तण	[(सीया)–(सइत्तण) 6/1]	सीता के सतीत्व के
	गव्वु	(गव्व) 2/1	गर्व को
	वहन्तिउ	(वह→वहन्त→वहन्ती) वकृ 1/2	धारण करती हुई
4.	देव देव	(देव) 8/1	हे देव, हे देव
	जइ	अव्यय	यदि
	हुअवहु	(हुअवह) 1/1	अग्नि
	डज्झइ	(डज्झइ) व कर्म 3/1 सक अनि	जलाई जाती है
	जइ	अव्यय	यदि
	मारुउ	(मारुअ) 1/1	हवा
	पड–पोट्टले	[(पड)–(पोट्टल) 7/1]	कपड़े की पोटली में
	वज्झइ	(वज्झइ) व कर्म 3/1 सक अनि	बाँधी जाती है
5.	जइ	अव्यय	यदि
	पायाले	(पायाल) 7/1	पाताल में
	णहङ्गणु	[(णह+अङ्गणु)] [(णह)–(अङ्गण) 1/1]	नभ-आंगन (आकाश)
	लोट्टइ	(लोट्ट) व 3/1 अक	लोटता है
	कालान्तरेण	[(काल)+(अन्तरेण)] [(काल)–(अन्तर) 3/1]	समय बीतने से
	कालु	(काल) 1/1	काल
	जइ	अव्यय	यदि
	तिट्टइ	(णिट्ट→तिट्ट) व 3/1 अक	नष्ट होता है
6.	जइ	अव्यय	यदि
	उप्पज्जइ	(उप्पज्ज) व 3/1 अक	उत्पन्न होता है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मरणु	(मरण) 1/1	मरण
कियन्तहो	(कियन्त) 6/1	यमराज का
जइ	अव्यय	यदि
णासइ	(णास) व 3/1 अक	नष्ट होता है
सासणु	(सासण) 1/1	शासन
अरहन्तहो	(अरहन्त) 6/1	अरहन्त का
7. जइ	अव्यय	यदि
अवरें	(अवर) 3/1[1]	पश्चिम दिशा में
उग्गमइ	(उग्गम) व 3/1 अक	उगता है
दिवायरु	(दिवायर) 1/1	सूर्य
मेरु-सिहरे	[(मेरु)-(सिहर) 7/1]	पर्वत के शिखर पर
जइ	अव्यय	यदि
णिवसइ	(णिवस) व 3/1 अक	रहता है
सायरु	(सायर) 1/1	सागर
8. एउ	(एअ) 1/1 सवि	यह
असेसु	(असेस) 1/1 वि	सब
वि	अव्यय	ही
सम्भाविज्जइ	(सम्भ+आव (प्रे)→सम्भाव→ सम्भाविज्ज) प्रे. व कर्म 3/1 सक	संभावना कराई जा सकती है
सीयहे	(सीया) 6/1	सीता का
सीलु	(सील) 1/1	शील, आचरण
ण	अव्यय	नहीं
पुणु	अव्यय	किन्तु
मइलिज्जइ	(मइल) व कर्म 3/1 सक	मलिन किया जाता(सकता) है
9. जइ	अव्यय	यदि
एव	अव्यय	इस प्रकार
वि	अव्यय	भी
णउ	अव्यय	नहीं
पत्तिज्जहि	(पत्ति+ज्ज[2]) व 2/1 सक	विश्वास होता है
तो	अव्यय	तो
परमेसर	(परमेसर) 8/1	हे परमेश्वर
एउ	(एअ) 2/1 स	इसको (यह)

1. कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हेम प्राकृत व्याकरण 3-137)।
2. 'ज्ज' पादपूरक है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करे	(कर) विधि 2/1 सक	कर
तुल-चाउल-विस-जल-जलणहँ	[(तुल)-(चाउल)-(विस)-(जल)-(जलण) 6/2]	तिल, चावल, विष, जल, अग्नि में से
पञ्चहँ	(पञ्च) 6/2 वि	पाँचों में से
एक्कु	(एक्क) 2/1 वि	एक
जि	अव्यय	ही
दिव्वु	(दिव्व) 2/1 वि	आरोप की शुद्धि के लिए की-जानेवाली परीक्षा को
धरे	(धर) विधि 2/1 सक	धारण करें

83.5

1. तं	(त) 2/1 सवि	उसको
णिसुणेवि	(णिसुण+एवि) संकृ	सुनकर
रहुवइ	(रहुवइ) 1/1	रघुपति (राम)
परिओसिउ	(परिओस) भूकृ 1/1	संतुष्ट हुए
एव	अव्यय	इसी प्रकार
होउ	(हो) विधि 3/1 अक	होवे
हक्कारउ	(हक्कारअ) 1/1	हरकारा (बुलानेवाला)
पेसिउ	(पेस→पेसिअ) भूकृ 1/1	भेजा गया
9. चडु	(चड) विधि 2/1 सक	चढ़ें
पुप्फ-विमाणें	[(पुप्फ)-(विमाण) 7/1]	पुष्पक विमान पर
भडारिए	(भडारिआ) 8/1 अनि	हे पूजनीया
मिलु	(मिल) विधि 2/1 सक	मिलो
पुत्तहँ[1]	(पुत्त) 6/2	पुत्रों का (पुत्रों को)
पइ-देवरहँ[1]	[(पइ)-(देवर) 6/2]	पति और देवरों को
सहुँ	अव्यय	साथ
अच्छहिँ[2]	(अच्छ) व 3/2 अक	रहती है
मज्झे	(मज्झ) 7/1	मध्य में
परिट्ठिय	(परिट्ठिय) भूकृ 1/1 अनि	स्थित
पिहिमि	(पिहिमि) 1/1	पृथ्वी
जेम	अव्यय	जिस प्रकार
चउ-सायरहँ	[(चउ)-(सायर) 6/2]	चारों सागरों के

1. कभी-कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हेम प्राकृत व्याकरण 3-134)।

2. यहाँ बहुवचन का एकवचन के अर्थ में प्रयोग किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

1.	तं	(त) 2/1 सवि	उसको
	णिसुणेवि	(णिसुण+एवि) संकृ	सुनकर
	लवणंकुस–मायए	[(लवण)+(अंकुस)+(मायए)] [(लवण)–(अंकुस)–(माया) 3/1]	लवण और अंकुश की माता के द्वारा
	वुत्तु	(वुत्त) भूकृ 1/1 अनि	कहा गया
	विहीसणु	(विहीसण) 1/1	विभीषण
	गग्गिरवायए	[(गग्गिर)-(वाया) 3/1]	भरी हुई वाणी से
2	णिट्ठुर-हियमहो	[(णिट्ठुर) वि–(हियय) 6/1]	निष्ठुर हृदय के
	अ-लइय-णामहो[1]	[(अ)+(लइ)+(अ)+(णामहो)] [(अ–लइय)–(णाम) 6/1]	नाम को मत लो
	जाणमि	(जाण) व 1/1 सक	जानती हूँ
	तत्ति	(तत्ति) 1/1	तृप्ति (संतोष)
	ण	अव्यय	नहीं
	किज्जइ	(कि) व कर्म 3/1 सक	की जाती है (की गई)
	रामहो	(राम)6/1	राम के
3.	घल्लिय	(घल्ल) भूकृ 1/1	डाली गई
	जेण	(ज) 3/1 स	जिनके द्वारा
	रुवन्ति	(रुव→रुवन्त→(स्त्री) रुवन्ती) वकृ 1/1	रोती हुई
	वणन्तरे	[(वण)+(अन्तरे)][(वण)–(अन्तर) 7/1]	वन के अन्दर में
	डाइणि-रक्खस-भूय-भयङ्करे	[(डाइणि)–(रक्खस) – (भूय) – (भयङ्कर) 7/1 वि]	डाकिनियों, राक्षसों, भूतोंवाले डरावने (वन) में
6.	जहिँ	अव्यय	जहाँ पर
	माणुसु	(माणुस) 1/1	मनुष्य
	जीवन्तु	(जीव) वकृ 1/1	जीता हुआ
	वि	अव्यय	भी
	लुच्चइ	(लुच्चइ) व कर्म 3/1 सक अनि	काटा जाता है
	विहि	(विहि) 1/1	विधि (विधाता)
	कलिकालु	[(कलि)(दे)–(काल) 1/1]	कालरूपी शत्रु
	वि	अव्यय	भी
	पाणहुँ	(पाण) 5/2	प्राणों से
	मुच्चइ	(मुच्चइ) व कर्म 3/1 सक अनि	छुटकारा पा जाता है
7.	तहिँ	(त) 7/1 सवि	उस(में)

---

1. कभी–कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हे.प्रा.व्या. 3–134)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वणे	(वण) 7/1	वन में
घल्लाविय	[(घल्ल)+(आवि) प्रे भूकृ 1/1]	डलवा दी गई
अण्णाणें	(अण्णाण) 3/1	अज्ञान से
एवहिँ	अव्यय	अब
किं	(क) 1/1 सवि	क्या
तहो	(त) 4/1 स	उसके लिए
तणेण	अव्यय	संप्रदानार्थक परसर्ग
विमाणें	(विमाण) 3/1	विमान से

8. जो	(ज) 1/1 सवि	जो
तेण	(त) 3/1 स	उसके द्वारा
डाहु	(डाह) 1/1	ईर्ष्या
उप्पाइयउ	(उप्पाअ→उप्पाइयअ) भूकृ 1/1 'अ' स्वार्थिक	उत्पन्न की गई
पिसुणालाव-भरीसिएण	[(पिसुण)+(आलाव)+(भर)+(ईसिएण)] [(पिसुण)-(आलाव)-(भर) वि-(ईसिअ)3/1]	चुगलखोरों के ईर्ष्या से भरे हुए आलाप से
सो	(त) 1/1 सवि	वह
दुक्करु	क्रिविअ	कठिनाई से
उल्हाविज्जइ	[(उल्हा→उल्हाव→उल्हाविज्ज) प्रे व कर्म 3/1 सक]	शान्त किया जाता है
मेह-सएण	[(मेह)-(सअ) 3/1]	सैंकड़ों मेहों से
वि	अव्यय	भी
वरिसिएण	(वरिस) 3/1 'इअ' स्वार्थिक	बरसने से (द्वारा)

83.8

7. सीय	(सीया) 1/1	सीता
ण	अव्यय	नहीं
भीय	(भीय) भूकृ 1/1 अनि	डरी
सइत्तण-गव्वें	[(सइत्तण)-(गव्व) 3/1]	सतीत्व के गर्व के कारण
वलेवि	(वल+एवि) संकृ	मुड़कर
पवोल्लिय	(प-वोल्ल) भूकृ 1/1	कहा गया
मच्छर-गव्वें	[(मच्छर)-(गव्व) 3/1]	ईर्ष्या और गर्व से

8. पुरिस	(पुरिस) 1/2	पुरुष
णिहीण	(णिहीण) 1/2 वि	तुच्छ
होन्ति	(हो) व 3/2 अक	हों
गुणवन्त	(गुणवन्त) 1/2 वि	गुणवान
वि	अव्यय	चाहे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तियहे[1]	(तिया) 6/1	स्त्री के द्वारा
ण	(ण) 1/2 सवि (प्रा)	वे
पत्तिज्जन्ति	(पत्ति→पत्तिज्ज) व कर्म 3/2 सक	विश्वास किये जाते हैं
मरन्त	(मर→मरन्त→(स्त्री)मरन्ता) वकृ 1/1	मरती हुई
वि	अव्यय	चाहे
9. खडु	(खड) 2/1	घास-फूस को
लक्कडु	(लक्कड) 2/1	लकड़ी को
सलिलु	(सलिल) 1/1	पानी
वहन्तियहे	(वह→वहन्त→(स्त्री)वहन्ति→वहन्तिय) वकृ 6/1 'अ' स्वार्थिक	ले जाती हुई
पउराणियहे	(पउराण→पउराणिय) 6/1 वि 'य' स्वार्थिक	प्राचीन (का)
कुलुग्गयहे	[(कुल)+(उग्गयहे)] [(कुल)-(उग्गया)6/1 वि]	पवित्र (का)
रयणायरु	(रयणायर) 1/1	समुद्र
खारइं	(खार) 2/2	खार को
देन्तउ	(दा→देन्त→देन्तअ) वकृ 1/1 'अ' स्वार्थिक	देता हुआ
तो वि	अव्यय	तो भी
ण	अव्यय	नहीं
थक्कइ	(थक्क) व 3/1 अक	थकता है
णम्मयहे	(णम्मया) 6/1	नर्मदा का

83.9

1. साणु	(साण) 1/1	कुत्ता
ण	अव्यय	नहीं
केण	(क) 3/1 स	किसी के द्वारा
वि	अव्यय	भी
जणेण	(जण) 3/1	जन के द्वारा
गणिज्जइ	(गण) व कर्म 3/1 सक	आदर किया जाता है
गङ्गा-णइहिँ	[(गङ्गा)-(णइ) 7/1]	गंगा नदी में
तं	(त) 1/1 स	वह
जि	अव्यय	भी
ण्हाइज्जइ	(ण्हा) प्रे व कर्म 3/1 सक	नहलाया जाय
2. ससि	(ससि) 1/1	चन्द्रमा
स-कलंकु	(स-कलंक) 1/1	कलंक-सहित

1. कभी-कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हेम प्राकृत व्याकरण 3-134)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तहिँ[1]	(त) 6/1 स	उससे
जि	अव्यय	पादपूरक
पह	(पहा) 1/1	प्रभा
णिम्मल	(णिम्मला) 1/1 वि	निर्मल
कालउ	(कालअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	काला
मेहु	(मेह) 1/1	बादल, मेघ
तहिँ[1]	(त) 6/1 स	उससे
जे	अव्यय	पादपूरक
तडि	(तडि) 1/1	बिजली
उज्जल	(उज्जल) 1/1 वि	श्वेत/उज्ज्वल
3. उवलु	(उवल) 1/1	पत्थर
अपुज्जु	(अपुज्ज) 1/1 वि	अपूज्य
ण	अव्यय	नहीं
केण	(क) 3/1 स	किसी के द्वारा
वि	अव्यय	भी
छिप्पइ	(छिप्पइ) व कर्म 3/1 सक अनि	छुआ जाता है
तहिँ[1]	(त) 6/1 स	उससे
जि	अव्यय	ही
पडिम	(पडिमा) 1/1	प्रतिमा
चन्दणेण	(चन्दण) 3/1	चन्दन से
विलिप्पइ	(विलिप्पइ) व कर्म 3/1 सक अनि	लीपी जाती है
4. धुज्जइ	(धुज्जइ) व कर्म 3/1 सक अनि	धोया जाता है
पाउ	(पाअ) 1/1	पाँव
पंकु	(पङ्क) 1/1	कीचड़
जइ	अव्यय	यदि
लग्गइ	(लग्ग) व 3/1 अक	लगता है
कमलमाल	[(कमल)-(माला) 1/1]	कमल की माला
पुणु	अव्यय	किन्तु
जिणहो	(जिण) 6/1	जिनेन्द्र के
वलग्गइ	(वलग्ग) व 3/1 अक	चढ़ती है
5. दीवउ	(दीवअ) 1/1	दीपक
होइ	(हो) व 3/1 अक	होता है
सहावें	(सहाव) 3/1	स्वभाव से
कालउ	(कालअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	काला

1. कभी-कभी षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पंचमी विभक्ति के स्थान पर किया जाता है (हे. प्रा. व्या. 3-134)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वट्टि-सिहए	[(वट्टि)-(सिहा) 3/1]	बत्ती (वर्तिका) की शिखा से
मण्डिज्जइ	(मण्ड) व कर्म 3/1 सक	सुशोभित किया जाता है
आलउ	(आलअ) 1/1	घर, आलय
6. णर-णारिहिं	[(णर)-(णारी) 7/2]	नर और नारी में
एवड्डुउ	(एवड्ड+अ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	इतना
अन्तरु	(अन्तर) 1/1 वि	अन्तर
मरणे	(मरण) 7/1	मरने पर
वि	अव्यय	भी
वेल्लि	(वेल्लि) 1/1	बेल
ण	अव्यय	नहीं
मेल्लइ	(मेल्ल) व 3/1 सक	छोड़ती है
तरुवरु	(तरुवर) 2/1	वृक्ष को
7. एह	(एता) 1/1 सवि	ये
पइं	(तुम्ह) 3/1 स	तुम्हारे द्वारा
कवण	(कवण) 4/1 स	किसलिए
बोल्ल	(बोल्ला) 1/1	बोल
पारंभिय	(पारम्भ→पारम्भिया) भूकृ 1/1	आरम्भ किया गया
सइ-वडाय	[(सइ)-(वडाया) 1/1]	सतीत्व की पताका
मइं	(अम्ह) 3/1 स	मेरे द्वारा
अज्जु	अव्यय	आज
समुब्भिय	(समुब्भ→समुब्भिया) भूकृ 1/1	भली प्रकार से ऊँची की गई
8. तुहुं	(तुम्ह) 1/1 स	तुम
पेक्खन्तु	(पेक्ख→पेक्खन्त) वकृ 1/1	देखते हुए
अच्छु	(अच्छ) 1/1 (दे)	अत्यन्त
वीसत्थउ	(वीसत्थ-अ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	विश्वासयुक्त
डहउ	(डह) विधि 3/1 अक	जलावे
जलणु	(जलण) 1/1	अग्नि
जइ	अव्यय	यदि
डहेंवि	(डह+एवि) हेकृ	जलाने के लिए
समत्थउ	(समत्थअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	समर्थ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ-6

महापुराण

सन्धि-16

16.3

13. थिउ	(थिअ) भूकृ 1/1 अनि	ठहर गया
चक्कु	(चक्क) 1/1	चक्र
ण	अव्यय	नहीं
पुरवरि	(पुरवर) 7/1	श्रेष्ठ नगर में
पइसरइ	(पइसर) व 3/1 सक	प्रवेश करता है (किया)
णावइ	अव्यय	मानो
केण	(क) 3/1 स	किसी के द्वारा
वि	अव्यय	पादपूरक
धरियउ	(धर→धरियअ) भूकृ 1/1 'अ' स्वार्थिक	पकड़ लिया गया
ससिबिंबु	[(ससि)-(बिंब) 1/1]	चन्द्रमण्डल
व	अव्यय	मानो
णहि	(णह) 7/1	आकाश में
तारायणहिं	(तारायण) 3/2	तारागणों द्वारा
सुरवरेंहिं	(सुरवर) 3/2	श्रेष्ठ देवताओं के द्वारा
परियरियउ	(परियर→परियरियअ) भूकृ 1/1 'अ' स्वा.	घेरा गया

16.4

1. ता	अव्यय	तब
भणियं	(भण→भणिय) भूकृ 1/1	कहा गया
णिराइणा[1]	(णिराइ) 3/1 वि	निर्भय (के द्वारा)
रूढराइणा	[(रूढ) वि-(राअ) 3/1]	प्रसिद्ध राजा के द्वारा
चंडवाउवेयं	[[(चंड)-(वाउ)-(वेय) 1/1]वि]	प्रचण्ड वायु के वेगवाला
किं	अव्यय	क्यों
थियमिह	[(थियं)+(इह)] (थिय) भूकृ 1/1 अनि इह=अव्यय	ठहरा, यहां
रहंगयं	(रहंग-य) 1/1 'य' स्वार्थिक	चक्र
णिच्चलंगयं	[(णिच्चल)+(अंगयं)] [[(णिच्चल) वि-(अंगयं) 1/1 'य' स्वा.] वि]	दृढ़ अंगवाला

1. निराधि→निराहि→निराइ→णिराइ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	तरुणतरणितेयं	[[(तरुण)-(तरणि)-(तेय) 1/1] वि]	युवा सूर्य के तेजवाला
2.	तं	(त) 2/1 स	उसको
	णिसुणेप्पिणु	(णिसुण+एप्पिणु) संकृ	सुनकर
	भणइ	(भण) व 3/1 सक	कहता है (कहा)
	पुरोहिउ	(पुरोहिअ) 1/1	पुरोहित
	जेणेयहु	[(जेण)+(इयहु)] जेण (ज) 3/1 स	जिस कारण से,
		इयहु (इम→इअ→इय) 6/1 स	इसकी
	गइपसरु	[(गइ)-(पसर) 1/1]	गति का प्रवाह
	णिरोहिउ	(णिरोहिअ) भूकृ 1/1 अनि	रोका गया
3.	अक्खमि	(अक्ख) व 1/1 सक	बताता हूँ
	तं	(त) 2/1 स	उसको
	णिसुणहि	(णिसुण) विधि 2/1 सक	सुनो (सुनें)
	परमेसर	(परमेसर) 8/1	हे परमेश्वर
	देवदेव	[(देव)-(देव) 8/1]	हे देवों के देव
	दुज्जय	(दुज्जय) 8/1 वि	दुर्जेय
	भरहेसर	(भरहेसर) 8/1	हे भरतेश्वर
4.	भुयजुयबलपडिबलविद्दवणहं	[[(भुय)-(जुय)वि-(बल)-(पडिबल)-(वि-द्दवण) 6/2] वि]	भुजाओं के, जोड़ा (दोनों), बल से, शत्रु की सेना का, दमन करनेवाले
	पयभरथिरमहियलकंपवणहं	[(पय)-(भर)-(थिर)-(महियल)-(कंपवण) 6/2 वि]	पैरों के, भार से, स्थिर, पृथ्वीतल को, कंपानेवाले
5.	तेओहामियचंददिणेसहं	[(तेअ)+(ओहामिय)+(चंद)+(दिणेसहं)] [(तेअ)-(ओहामिय)(दे) वि-(चंद)-(दिणेस)6/2]	तेज, तिरस्कृत, चाँद, सूर्य का
	जणणदिण्णमहिलच्छि-विलासहं	[(जणण)-(दिण्ण) भूकृ अनि-(महि)-(लच्छि)-(विलास) 4/2]	पिता के द्वारा, दी गई, पृथ्वी (रूपी) लक्ष्मी, मनोविनोद के लिए
6.	कित्तिसत्तिजणमेत्तिसहायहं	[(कित्ति)-(सत्ति)-(जण)-(मेत्ति)-(सहाय) 4/2]	कीर्ति, शक्ति, जनता से मित्रता, सहायता के लिए
	को	(क) 1/1 सवि	कौन
	पडिमल्लु	(पडिमल्ल) 1/1 वि	जोड़वाला (प्रतिद्वन्द्वी)
	एत्थु	अव्यय	यहाँ
	तुह	(तुम्ह)6/1 स	तुम्हारे
	भायहं	(भाय) 4/2	भाइयों का
7.	सेव	(सेवा) 2/1	सेवा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करंति	(कर) व 3/2 सक	करते हैं
ण	अव्यय	नहीं
णहभाईवइं	[(णह)+(भा)+(अईवइं)] [(णह)-(भा)-(अईव) 2/2]	नखवाले, कान्ति से, अत्यधिक
णउ	अव्यय	नहीं
णवंति	(णव) व 3/2 सक	प्रणाम करते हैं
तुह	(तुम्ह) 6/1 स	तुम्हारे
पयराईवइं	[(पय)-(राईव) 2/2]	चरण (रूपी) कमलों को
8. देंति	(दा) व 3/2 सक	देते हैं
ण	अव्यय	नहीं
करभरु	[(कर)-(भर) 2/1]	कर की राशि
केसरिकंधरु	[[(केसरि)-(कंधर) 1/1] वि]	सिंह के समान गर्दनवाले
पर	अव्यय	किन्तु
मुहिय	(मुहिय) 6/1 (दे)	बिना मूल्य के
इ	अव्यय	ही
भुंजंति	(भुंज) व 3/2 सक	भोगते हैं
वसुंधर	(वसुंधरा) 2/1	पृथ्वी को
9. अज्ज	अव्यय	आज
वि	अव्यय	भी
ते	(त) 1/2 स	वे
सिज्झंति	(सिज्झ) व 3/2 सक	जीते जाते हैं
ण	अव्यय	नहीं
जेण	(ज) 3/1 स	जिस कारण से
जि	अव्यय	ही
पइसइ	(पइस) व 3/1 सक	प्रवेश करता है
पट्टणि	(पट्टण) 7/1	नगर में
चक्कु	(चक्क) 1/1	चक्र
ण	अव्यय	नहीं
तेण	(त) 3/1 स	उस कारण से
जि	अव्यय	ही

16.7

1. ता	अव्यय	तब
विगया	(विगय) भूकृ 1/1 अनि	गया
बहुयरा	(बहुयर) 1/1	दूत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	जणमणोहरा	[(जण)-(मणोहर) 1/1 वि]	मनुष्यों के मन को हरनेवाला
	णिवकुमारवासं	[(णिव)-(कुमार)-(वास) 2/1]	राजपुत्रों के घर
	दुमदलललियतोरणं	[[(दुम)-(दल)-(ललिय)-(तोरण)2/1]वि]	वृक्ष-समूह से (निर्मित) सुन्दर तोरणवाला
	रसियवारणं	[[(रसिय)-(वारण) 2/1] वि]	घोड़े और हाथीवाला
	छिण्णभूमिदेसं	[[(छिण्ण)भूकृ अनि-(भूमि)-(देस)2/1]वि]	बाँटी हुई जमीन के भागवाला
2.	तेहिं	(त) 3/2 स	उनके (उसके) द्वारा
	भणिय	(भण→भणिय) भूकृ 1/2	कहे गये
	ते	(त) 1/2 सवि	वे
	विणउ	(विणअ) 2/1	विनय
	करेप्पिणु	(कर+एप्पिणु) संकृ	करके
	सामिसालतणुरुह	[(सामि)-(साल)-(तणुरुह) 2/2 वि]	स्वामी, श्रेष्ठ, पुत्रों को (सन्तान को)
	पणवेप्पिणु	(पणव+एप्पिणु) संकृ	प्रणाम करके
3.	सुरणरविसहरभय	[(सुर)-(णर)-(विसहर[1])-(भय) 2/1]	देवता, मनुष्य, धार्मिक (जन में) भय को
	इं	अव्यय	निश्चय ही
	जणेरी	(जणेर→(स्त्री) जणेरी) 2/1 वि	उत्पन्न करनेवाली
	करहु	(कर) विधि 2/1 सक	करो
	केर	परसर्ग	सम्बन्धवाचक
	णरणाहहु	[(णर)-(णाह) 6/1]	नरनाथ की
	केरी	(केर→(स्त्री) केरी) 2/1 (दे)	सेवा
4.	पणवहु	(पणव) विधि 2/1 सक	प्रणाम करो
	किं	(क) 1/1 सवि	क्या
	बहुएण	(बहुअ) 3/1 वि	बहुत
	पलावें	(पलाव) 3/1	प्रलाप से
	पुहइ	(पुहई) 1/1	पृथ्वी
	ण	अव्यय	नहीं
	लब्भइ	(लब्भइ) व कर्म 3/1 सक अनि	प्राप्त की जाती है
	मिच्छागावें	[(मिच्छा) वि-(गाव) 3/1]	मिथ्या गर्व से
5.	तं	(त) 2/1 स	उसको
	णिसुणेवि	(णिसुण+एवि) संकृ	सुनकर
	कुमारगणु	[(कुमार)-(गण) 1/1]	कुमारगण

1. विसहर=वृषधर=धर्म धारण करनेवाला=धार्मिक।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	घोसइ	(घोस) व 3/1 सक	कहता है (कहा)
	तो	अव्यय	तब
	पणवहुं	(पणव) व 1/2 सक	प्रणाम करते हैं
	जइ	अव्यय	यदि
	वाहि	(वाहि) 1/1	व्याधि
	ण	अव्यय	नहीं
	दीसइ	(दीसइ) व कर्म 3/1 सक अनि	देखी जाती है
6.	तो	अव्यय	तब (तो)
	पणवहुं	(पणव) व 1/2 सक	प्रणाम करते हैं
	जइ	अव्यय	यदि
	सुसुइ	(सु-सुइ) 1/1 वि	अत्यन्त पवित्र
	कलेवरु	(कलेवर) 1/1	शरीर
	तो	अव्यय	तब (तो)
	पणवहुं	(पणव) व 1/2 सक	प्रणाम करते हैं
	जइ	अव्यय	यदि
	जीविउ	(जीविअ) 1/1	जीवन
	सुंदरु	(सुंदर) 1/1 वि	सुन्दर
7.	तो	अव्यय	तब (तो)
	पणवहुं	(पणव) व 1/2 सक	प्रणाम करते हैं
	जइ	अव्यय	जो
	जरइ	(जर) व 3/1 अक	जीर्ण होता है
	ण	अव्यय	न
	झिज्जइ	(झिज्ज) व 3/1 अक	क्षीण होता है
	तो	अव्यय	तो
	पणवहुं	(पणव) व 1/2 सक	प्रणाम करते हैं
	जइ	अव्यय	यदि
	पुट्ठिं	(पुट्ठि) 2/1	पीठ
	ण	अव्यय	नहीं
	भज्जइ	(भज्ज) व 3/1 सक	भंग करता है
8.	तो	अव्यय	तो
	पणवहुं	(पणव) व 1/2 सक	प्रणाम करते हैं
	जइ	अव्यय	यदि
	बलु	(बल) 1/1	बल
	णोहट्टइ	[(ण)+(ओहट्टइ)] ण=अव्यय	नहीं,
		(ओहट्ट) व 3/1 अक	कम होता है
	तो	अव्यय	तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पणवहुं	(पणव) व 1/2 सक	प्रणाम करते हैं
जइ	अव्यय	यदि
सुइ	(सुइ) 1/1	पवित्रता
ण	अव्यय	नहीं
विहट्टइ	(विहट्ट) व 3/1 अक	नष्ट होती है
9. तो	अव्यय	तो
पणवहुं	(पणव) व 1/2 सक	प्रणाम करते हैं
जइ	अव्यय	यदि
मयणु	(मयण) 1/1	प्रेम
ण	अव्यय	नहीं
तुट्टइ	(तुट्ट) व 3/1 अक	खण्डित होता है
तो	अव्यय	तो
पणवहुं	(पणव) व 1/2 सक	प्रणाम करते हैं
जइ	अव्यय	यदि
कालु	(काल) 1/1	उम्र
ण	अव्यय	नहीं
खुट्टइ	(खुट्ट) व 3/1 अक	क्षीण होती है
10. कंठि	(कंठ) 7/1	गले में
कयंतवासु	[(कयंत)-(वास) 1/1]	यम का फंदा
ण	अव्यय	नहीं
चुहुट्टइ→चहुट्टइ	(चहुट्ट) व 3/1 अक (दे)	चिपकता है
तो	अव्यय	तो
पणवहुं	(पणव) व 1/2 सक	प्रणाम करते हैं
जइ	अव्यय	यदि
रिद्धि	(रिद्धि) 1/1	वैभव
ण	अव्यय	नहीं
तुट्टइ	(तुट्ट) व 3/1 अक	घटता है
11. जइ	अव्यय	यदि
जम्मजरामरणइं	[(जम्म)-(जरा)-(मरण) 2/2]	जन्म, जरा और मरण को(का)
हरइ	(हर) व 3/1 सक	हरण करता है
चउगइदुक्खु	[(चउ) वि-(गइ)-(दुक्ख) 2/1]	चार गति के दुःख को
णिवारइ	(णिवार) व 3/1 सक	दूर करता है
तो	अव्यय	तो
पणवहुं	(पणव) व 1/2 सक	प्रणाम करते हैं
तासु	(त) 4/1 सवि	उस (के लिए)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	णरेसहो	(णरेस) 4/1	राजा को (के लिए)
	जइ	अव्यय	यदि
	संसारहु	(संसार) 5/1	संसार से
	तारइ	(तार) व 3/1 अक	पार लगाता है

16.8

1.	पुणरवि	अव्यय	फिर
	तेहिं	(त) 3/2 स	उनके द्वारा
	गहिरयं	(गहिर–य) 1/1 वि 'य' स्वार्थिक	महत्वपूर्ण
	सवणमहुरयं	[(सवण)–(महुर–य) 1/1 वि]	सुनने में मधुर
	एरिसं	(एरिस) 1/1 वि	इस प्रकार
	पउत्तं	(पउत्त) भूकृ 1/1 अनि	कहा गया (कहे गये)
	आणापसरधारणे	[(आणा)–(पसर)–(धारण[1]) 7/1]	आज्ञा-प्रसार के पालन करने के प्रयोजन से
	धरणिकारणे	[(धरणि)–(कारण[1]) 7/1]	पृथ्वी के निमित्त से
	पणविउं	(पणव) हेकृ	प्रणाम करना (करने के लिए)
	ण	अव्यय	नहीं
	जुत्तं	(जुत्त) भूकृ 1/1 अनि	उपयुक्त
2.	पिंडिखंडु	[(पिंडि)–(खंड) 2/1]	शरीर-खण्ड को
	महिखंडु	[(महि)–(खंड) 2/1]	भू-खण्ड को, पृथ्वी को
	महेप्पिणु	(मह+एप्पिणु) संकृ	महत्त्व देकर
	किह	अव्यय	क्यों
	पणविज्जइ	(पणव+इज्ज) व कर्म 3/1 सक	प्रणाम किया जाता है (जाए)
	माणु	(माण) [illegible]/1	आत्मसम्मान को
	मुएप्पिणु	(मुअ+एप्पिणु) संकृ	छोड़कर
3.	वक्कलणिवसणु	[(वक्कल)–(णिवसण) 1/1]	वृक्ष की छाल का वस्त्र
	कंदरमंदिरु	[(कंदर)–(मंदिर) 1/1]	गुफा में घर
	वणहलभोयणु	[(वण)–(हल)–(भोयण) 1/1]	जंगल के फलों का भोजन
	वर	(वर) 1/1 वि	श्रेष्ठ
	तं	अव्यय	पादपूरक
	सुन्दरु	(सुन्दर) 1/1 वि	अच्छा
4.	वर	(वर) 1/1 वि	श्रेष्ठ

1. कभी-कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3–135)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	दालिद्दु	(दालिद्द) 1/1	निर्धनता
	सरीरहु	(सरीर) 4/1	शरीर के लिए
	दंडणु	(दंडण) 1/1	दंड देना
	णउ	अव्यय	नहीं
	पुरिसहु	(पुरिस) 6/1	व्यक्ति के
	अहिमाणविहंडणु	[(अहिमाण)-(विहंडण) 1/1]	स्वाभिमान का खंडन
5.	परपयरयधूसर	[(पर) वि-(पय)-(रय)-(धूसर→धूसरा) 1/1 वि]	दूसरे के पैरों की धूल से पीले रंगवाली
	किंकरसरि	[(किंकर)-(सरि) 1/1]	सेवकरूपी नदी
	असुहावणि	(असुहावणी) 1/1 वि	असुन्दर
	णं	अव्यय	मानो
	पाउससिरिहरि	[(पाउस)-(सिरिहर→सिरिहरी) 1/1 वि]	वर्षाऋतु की शोभा को हरनेवाली
6.	णिवपडिहारदंडसंघट्टणु	[(णिव)-(पडिहार)-(दंड)-(संघट्टण) 2/1]	राजा के द्वारपालों के डंडों का संघर्षण
	को	(क) 1/1 सवि	कौन
	विसहइ	(वि-सह) व 3/1 सक	सहता है (सहेगा)
	करेण	(कर) 3/1	हाथ से
	उरलोट्टणु	[(उर)-(लोट्टण) 1/1]	छाती पर प्रहार
7.	को	(क) 1/1 सवि	कौन
	जोयइ	(जोय) व 3/1 सक	देखता है (देखे)
	मुहुं	अव्यय	बार-बार
	भूभंगालउ	[(भू)+(भंग)+(आलउ)] [(भू)-(भंग)-(आलअ) 2/1]	भौंहों की सिकुड़न का स्थान
	किं	अव्यय	क्या
	हरिसिउ	(हरिस→हरिसिअ) भूकृ 1/1	प्रसन्न हुआ
	किं	अव्यय	क्या
	रोसें	(रोस) 3/1	क्रोध से
	कालउ	(काल-अ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	काला
8.	पहु	(पहु) 6/1	राजा के
	आसण्णु	(आसण्ण) 1/1 वि	समीप
	लहइ	(लह) व 3/1 सक	पाता है/प्राप्त होता है
	धिट्ठत्तणु	(धिट्ठत्तण) 2/1	ढीठता, निर्लज्जता को
	पविरलदंसणु	[[(प-विरल) वि-(दंसण) 1/1] वि]	बहुत थोड़ा दर्शन करनेवाला
	णिण्णेहत्तणु	(णिण्णेहत्तण) 2/1	स्नेहरहितता को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

9. मोणें	(मोण) 3/1	मौन के कारण
जडु	(जड) 1/1 वि	आलसी
भडु	(भड) 1/1 वि	वीर
खंतिइ	(खंति→खंतिए→खंतिइ) (स्त्री) 3/1	क्षमा के कारण
कायरु	(कायर) 1/1 वि	कायर
अज्जवु	(अज्जव) 1/1	सरलता
पसु	(पसु) 6/1	पशु का
पंडियउ	(पंडियअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	पंडित
पलाविरु	(पलाविर) 1/1 वि	बकवास करनेवाला
10. अमुणियहिययचारुगरुयत्तें	[(अमुणिय) भूकृ-(हियय)-(चारु) वि-(गरुयत्त) 3/1 वि]	न समझे हुए, हृदय में, सुन्दर, महान
कलहसीलु	(कलहसील) 1/1 वि	कलहकारी
भण्णइ	(भण्णइ) व कर्म 3/1 सक अनि	कहा जाता है
सुहडत्तें	(सुहडत्त) 3/1	योद्धापन के कारण
11. महुरपयंपिरु	[(महुर)-(पयंपिर) 1/1 वि]	मधुर बोलनेवाला
चाडुयगारउ	(चाडुयगारअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	खुशामदी
केम वि	अव्यय	किसी प्रकार भी
गुणि	(गुणि) 1/1 वि	गुणी
ण	अव्यय	नहीं
होइ	(हो) व 3/1 अक	होता है
सेवारउ	[(सेवा)-(रअ) 1/1 वि]	सेवा में लीन

16.9

1. अहवा	अव्यय	अथवा
तेहिं	(त) 3/2 स	उनसे (उससे)
किं	(क) 1/1 सवि	क्या
हयं	(हय) भूकृ 1/1 अनि	नष्ट किया गया
जं	अव्यय	पादपूरक
समागयं	(समागय) भूकृ 1/1 अनि	प्राप्त (आया हुआ)
दुल्लहं	(दुल्लह) 1/1 वि	दुर्लभ
णरत्तं	(णरत्त) 1/1	मनुष्यत्व
तं	अव्यय	तो
जो	(ज) 1/1 सवि	जो
विसयविसरसे	[(विसय)-(विस)-(रस) 7/1]	विषयरूपी विष के रस में
घिवइ	(घिव) व 3/1 सक	डालता है
परवसे	[(पर) वि-(वस) 7/1]	दूसरे के वश में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्स	(त) 6/1 स	उसकी
किं	(क) 1/1 सवि	क्या
बुहत्तं	(बुहत्त) 1/1	विद्वत्ता
2. कंचणकंडें	[(कंचण)-(कंड) 3/1]	सोने के तीर से
जंबुउ	(जंबुअ) 2/1 'अ' स्वार्थिक	सियार को
विंधइ	(विंध) व 3/1 सक	आहत करता है
मोत्तियदामें	[(मोत्तिय)-(दाम) 3/1]	मोती की रस्सी से
मंकडु	(मंकड) 2/1	बन्दर को
बंधइ	(बंध) व 3/1 सक	बाँधता है
3. खीलयकारणिं	[(खीलय)-(कारण[1]) 3/1]	खम्भे के प्रयोजन से
देउलु	(देउल) 2/1	देवमन्दिर को
मोडइ	(मोड) व 3/1 सक	तोड़ता है
सुत्तणिमित्तु	[(सुत्त)-(णिमित्त) 1/1]	सूत के निमित्त
दित्तु	(दित्त) भूकृ 2/1 अनि	दीप्त
मणि	(मणि) 2/1	मणि को
फोडइ	(फोड) व 3/1 सक	फोड़ता है
4. कप्पूरायररुक्खु	[(कप्पूर)+(आयर)+(रुक्खु)]	कपूर के श्रेष्ठ वृक्ष को
	[(कप्पूर)-(आयर[2])-(रुक्ख) 2/1]	
णिसुंभइ	(णिसुंभ) व 3/1 सक	नष्ट करता है
कोद्दवछेत्तहुं	[(कोद्दव)-(छेत्त) 6/1]	कोदों के खेत की
वइ	(वइ) 2/1	बाड़
पारंभइ	(पारंभ) व 3/1 सक	बनाता है
5. तिलखलु	[(तिल)-(खल) 2/1]	तिलों की खल को
पयइ	(पय) व 3/1 सक	पकाता है
डहिवि	(डह+इवि) संकृ	जलाकर
चंदणतरु	[(चंदण)-(तरु) 2/1]	चन्दन के वृक्ष को
विसु	(विस) 2/1	विष
गेण्हइ	(गेण्ह) व 3/1 सक	ग्रहण करता है
सप्पहु	(सप्प[3]) 6/1	सर्प को
छोयवि	(छोय+अवि) संकृ	छोकर

1. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 144 ।

2. आयर→आकर=श्रेष्ठ, संस्कृत-हिन्दी-कोश, आप्टे ।

3. कभी-कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-134) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करु	(कर[1]) 2/1	हाथ में
6. पीयइँ	(पीय) 2/2 वि	पीले
कसणइं	(कसण) 2/2 वि	काले
लोहियसुक्कइँ	[(लोहिय) वि-(सुक्क) 2/2 वि]	लाल और सफेद
तक्कें[2]	(तक्क) 3/1	छाछ के प्रयोजन से
विक्कइ	(विक्क) व 3/1 सक	बेचता है
सो	(त) 1/1 सवि	वह
माणिक्कइँ	(माणिक्क) 2/2	माणिक्यों को
7. जो	(ज) 1/1 सवि	जो
मणुयत्तणु	(मणुयत्तण) 2/1	मनुष्यत्व को
भोएं	(भोअ) 3/1	भोग के प्रयोजन से
णासइ	(णास) व 3/1 सक	नष्ट करता है
तेण	(त) 3/1 स	उसके
समाणु	(समाण) 1/1	समान
हीणु	(हीण) 1/1 वि	हीन
को	(क) 1/1 सवि	कौन
सीसइ	(सीसइ) व कर्म 3/1 सक अनि	कहा जाता है
8. चित्तु	(चित्त) 2/1	चित्त को
समत्तणि	(समत्तण) 7/1	समत्व में
णेय	अव्यय	नहीं
णियत्तइ	(णियत्त) व 3/1 सक	लगाता है
पुत्तु	(पुत्त) 2/1	पुत्र को (की)
कलत्तु	(कलत्त) 2/1	स्त्री (पत्नी) को
वित्तु	(वित्त) 2/1	धन को
संचितइ	(सं-चित) व 3/1 सक	अत्यन्त चिन्ता करता है
9. मरइ	(मर) व 3/1 अक	मरता है
रसणफंसणरसदड्डउ	[(रसण)-(फंसण)-(रस)-(दड्डअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक]	रसना (जिह्वा) और स्पर्शन इन्द्रियों के रस से सताया हुआ
मे-मे-मे	अव्यय	मे-मे (शब्द)
करन्तु	(कर) वकृ 1/1	करता हुआ
जिह	अव्यय	जिस प्रकार
मेंढउ	(मेंढअ) 1/1 'अ' स्वार्थिक	मेंढ़ा

1. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-137)।
2. प्रयोजन के अर्थ में तृतीया विभक्ति होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

10. खज्जइ	(खज्ज) व कर्म 3/1 सक अनि	खाया जाता है
पलयकालसद्दूलें	[(पलय)-(काल)-(सद्दूल) 3/1]	प्रलयकालरूपी बाघ के द्वारा
डज्झइ	(डज्झइ) व कर्म 3/1 सक अनि	जलाया जाता है
दुक्खहुयासणजालें	[(दुक्ख)-(हुयासण)-(जाल) 3/1]	दुःखरूपी अग्नि की ज्वाला के द्वारा
11. मंजरु	(मंजर) 1/1	बिलाव
कुंजरु	(कुंजर) 1/1	हाथी
महिसउ	(महिस-अ) 1/1 'अ' स्वार्थिक	भैंसा
मंडलु	(मंडल) 1/1 (दे)	कुत्ता
होइ	(हो) व 3/1 अक	होता है
जीउ	(जीअ) 1/1	जीव
मक्कडु	(मक्कड) 1/1	बन्दर
माहुंडलु	(माहुंडल) 1/1 (दे)	सर्प
12. केलासहु	(केलास[1]) 6/1	कैलाश पर्वत को (पर)
जाइवि	(जाअ) संकृ	जाकर
तवयरणु	[(तव)-(यरण) 1/1]	तप का आचरण
ताएं	(ताअ) 3/1	पिता के द्वारा
भासिउ	(भास→भासिअ) भूकृ 1/1	कहा हुआ (बताया हुआ)
किज्जइ	(किज्जइ) व कर्म 3/1 सक अनि	किया जाता है
जेणेह	[(जेण)+(इह)] जेण (ज) 3/1 स	जिसके द्वारा
	इह=अव्यय	यहाँ
सुदूसहतावयरि	[(सु)-(दूसह)-(तावयर→(स्त्री)तावयरि) 1/1]	अत्यन्त दुसह्य-दुःखकारी
संसारिणि	(संसारिणी[2]) 6/1 वि	संसारी जीव के द्वारा
तिस	(तिसा) 1/1	प्यास
छिज्जइ	(छिज्जइ) व कर्म 3/1 सक अनि	छेदी जाती है

1. कभी-कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है, (हे.प्रा.व्या. 3-134)।
2. कभी-कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है, (हे. प्रा. व्या. 3-134)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ–7

महापुराण

सन्धि–16

16.11

1. ता	अव्यय	तो
पत्तो	(पत्त) भूकृ 1/1 अनि	पहुँचा
चरो	(चर) 1/1	दूत
पुरं	अव्यय	पहले
णिवइणो	(णिवइ) 6/1	राजा के
घरं	(घर) 2/1	घर
भणइ	(भण) व 3/1 सक	कहता है (बोला)
सुण	(सुण) विधि 2/1 सक	सुनो
सुराया	(सु-राय) 8/1	हे श्रेष्ठ राजन
इसिणो	(इसि) 1/2	मुनि
तुह	(तुम्ह) 6/1 स	तुम्हारे
सहोयरा	(सहोयर) 1/2	भाई
सीलसायरा	[(सील)-(सायर) 1/2]	शील के सागर
अज्जु	अव्यय	आज
देव	(देव) 8/1	हे देव
जाया	(जाय) भूकृ 1/2 अनि	हो गये
2. एक्कु	एक्क 1/1 वि	एक
जि	अव्यय	ही
पर	अव्यय	किन्तु
बाहुबलि	(बाहुबलि) 1/1	बाहुबलि
सुदुम्मइ	(सुदुम्मइ) 1/1 वि	अत्यन्त दुर्मति
णउ	अव्यय	न
तउ	(तअ) 2/1	तप
करइ	(कर) व 3/1 सक	करता है
ण	अव्यय	न
तुम्हहं	(तुम्ह) 4/2	तुमको (तुम्हारे लिए)
पणवइ	(पणव) व 3/1 सक	प्रणाम करता है

16.19

1. जं	(ज) 1/1 सवि	जो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	दिण्णं	(दिण्ण) भूकृ 1/1 अनि	दिया गया है (दिये गये हैं)
	महेसिणा	(महेसि) 3/1	महर्षि के द्वारा
	दुरियणासिणा	[(दुरिय)-(णासि) 3/1 वि]	पाप के नाशक
	णयरदेसमेत्तं	[(णयर)-(देस)-(मेत्त) 1/1]	नगर, देश, केवल
	तं	(त) 1/1 सवि	वह
	मह	(अम्ह) 4/1 स	मेरे लिए
	लिहियसासणं	[(लिह→लिहिय) भूकृ-(सासण) 1/1]	लिखित आदेश
	कुलविहूसणं	[(कुल)-(विहूसण) 1/1]	कुल की शोभा
	हरइ	(हर) व 3/1 सक	छीन (सकता) है
	को	(क) 1/1 सवि	कौन
	पहुत्तं	(पहुत्त) 2/1	प्रभुता को
2.	केसरिकेसरु	[(केसरि)-(केसर) 2/1]	सिंह के बाल को
	वरसइथणयलु	[(वर) वि-(सइ)-(थणयल) 2/1]	श्रेष्ठ सती के वक्षस्थल को
	सुहडहु	(सुहड) 6/1	सुभट की
	सरणु	(सरण) 2/1	शरण को
	मज्झु	(अम्ह) 6/1 स	मेरी
	धरणीयलु	(धरणीयल) 2/1	जमीन को
3.	जो	(ज) 1/1 सवि	जो
	हत्थेण	(हत्थ) 3/1	हाथ से
	छिवइ	(छिव) व 3/1 सक	छूता है
	सो	(त) 1/1 सवि	वह
	केहउ	(केह-अ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	कैसा
	किं	अव्यय	क्या
	कयंतु	(कयंत) 1/1	यम
	कालाणलु	[(काल)+(अणलु)] [(काल)-(अणल) 1/1]	कालरूपी अग्नि
	जेहउ	(जेहअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	जैसा
4.	हउं	(अम्ह) 1/1 स	मैं
	सो[1]	(त) 2/1 सवि	उसको
	पणवमि	(पणव) व 1/1 सक	प्रणाम करता हूँ (करूँ)
	को	(क) 1/1 सवि	कौन
	सो	(त) 1/1 सवि	वह
	भण्णइ	(भण्णइ) व कर्म 3/1 सक अनि	कही जाती है
	महिखंडेण	(महिखंड) 3/1	पृथ्वीखंड के कारण
	कवण	(कवण) 6/1 स	किसकी
	परमुण्णइ	[(परम)+(उण्णइ)] [(परम) वि-(उण्णइ) 1/1]	परम उन्नति

1. द्वितीया विभक्ति के अर्थ में 'सो' का प्रयोग विचारणीय है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

5.	किं	अव्यय	क्या
	जम्मणि	(जम्मण) 7/1	जन्म पर
	देवहिं	(देव) 3/2	देवताओं के द्वारा
	अहिसिंचिउ	(अहिसिंच) भूकृ 1/1	अभिषेक किया गया
	किं	अव्यय	क्या
	मंदरगिरिसिहरि	[(मंदर)-(गिरि)-(सिहर) 7/1]	सुमेरु पर्वत के शिखर पर
	समच्चिउ	(समच्च) भूकृ 1/1	पूजा गया
6.	किं	अव्यय	क्या
	तहु	(त) 6/1 स	उसके
	अग्गइ	अव्यय	आगे
	सुरवइ	(सुरवइ) 1/1	इन्द्र
	णच्चिउ	(णच्च→णच्चिअ) भूकृ 1/1	नाचा
	सिरिसइरिणियइ	[(सिरि)+(सइरिणी)+(यइ)] [(सिरि)-(सइरिणी) 6/1[1]] यइ→अइ=अव्यय	लक्ष्मी, स्वेच्छाचारिणी के द्वारा, अरे
	किं	अव्यय	क्यों
	रोमंचिउ	(रोमंचिअ) 1/1 वि	पुलकित
7.	चक्कु	(चक्क) 1/1	चक्र
	दंडु	(दंड) 1/1	दंड
	तं	(त) 1/1 सवि	वह
	तासु	(त) 4/1 स	उसके लिए
	जि	अव्यय	ही
	सारउ	(सार-अ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	महत्वपूर्ण
	महु	(अम्ह) 4/1 स	मेरे लिए
	पुणु	अव्यय	किन्तु
	णं	(ण) 1/1 स	वह
	कुंभारहु	(कुंभार) 6/1	कुम्हार का
	केरउ	परसर्ग	सम्बन्धार्थक
8	करिसूयररहवरडिंभयरहं	[(करि)-(सूयर)-(रहवर)-(डिंभय)-(रह) 6/1][2]	हाथीरूपी सूअरों पर, श्रेष्ठ रथों पर, छोटे रथ (समूह) पर
	णर	(णर) 2/2	मनुष्य
	णिहणमि	(णिहण) व 1/1 सक	मारता हूं (मारूंगा)
	रणि	(रण) 7/1	रण में
	जे	(ज) 2/2 सवि	जो

1. कभी-कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है, (हे.प्रा.व्या. 3-134)।
2. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है, (हे.प्रा.व्या. 3-134)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि	अव्यय	भी
महारह	(महारह) 2/2 वि	योद्धा
9. भरहु	(भरह) 1/1	भरत
हरइ	(हर) व 3/1 सक	हरता है (हरेगा)
किं	अव्यय	क्या
मज्झु	(अम्ह) 6/1 स	मेरे
भुयाभरु	[(भुया)-(भर) 2/1]	भुजाबल को
तइ	अव्यय	तभी (उसी समय)
चुक्कइ	(चुक्क) व 3/1 अक	चूकता है (बच निकलेगा)
जइ	अव्यय	यदि
सुमरइ	(सुमर) व 3/1 सक	स्मरण करता है
जिणवरु	(जिणवर) 2/1	जिनवर को (का)
10. तहु	(त) 6/1 स	तुम्हारी
मेइणि	(मेइणी) 1/1	पृथ्वी
महु	(अम्ह) 6/1 स	मेरा
पोयणणयरु	[(पोयण)-(णयर) 1/1]	पोदनपुर नगर
आइजिणिंदें	[(आइ)-(जिणिंद) 3/1]	आदि जिनेन्द्र के द्वारा
दिण्णउं	(दिण्ण) भूकृ 1/1 अनि	दिये हुये
अब्भिडउ	(अब्भिड) विधि 3/1 सक	मिले
पडउ	(पड) विधि 3/1 सक	पड़े
असि	(असि) 2/1	तलवार को
सिहिसिहहिं	[(सिहि)-(सिहा) 7/1]	अग्नि की ज्वाला में
जइ	अव्यय	यदि
ण	अव्यय	नहीं
सरइ	(सर) व 3/1 सक	मानता है
पडिपवण्णउं	(पडिपवण्णअ) 2/1	स्वीकार किए हुए को

16.20

1. ता	अव्यय	तब
दूएण	(दूअ) 3/1	दूत के द्वारा
जंपियं	(जंप→जंपिय) भूकृ 1/1	कहा गया
किं	(क) 1/1 सवि	क्या
सुविप्पियं	(सु-विप्पिय) 2/1 वि	अप्रिय
भणसि	(भण) व 2/1 सक	कहते हो
भो	अव्यय	हे
कुमारा	(कुमार) 1/1	कुमार
वाणा	(वाण) 1/2	बाण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	भरहपेसिया	[(भरह)-(पेस→पेसिय) भूकृ 1/2]	भरत के द्वारा भेजे हुए
	पिछभूसिया	[(पिछ)-(भूसिय) भूकृ 1/2 अनि]	पंख से विभूषित
	होंति	(हो) व 3/2 अक	होते हैं
	दुण्णिवारा	(दु-णिवार) 1/2 वि	कठिनाईपूर्वक हटाये जानेवाले
2.	पत्थरेण	(पत्थर) 3/1	पत्थर से
	किं	अव्यय	क्या
	मेरु	(मेरु) 1/1	मेरु (पर्वत)
	दलिज्जइ	(दल) व कर्म 3/1 सक	टुकड़े-टुकड़े किया जाता है
	किं	अव्यय	क्या
	खरेण	(खर) 3/1	गधे के द्वारा
	मायंगु	(मायंग) 1/1	हाथी
	खलिज्जइ	(खल) व कर्म 3/1 सक	गिराया जाता है
3.	खज्जोएं	(खज्जोअ) 3/1	जुगनू द्वारा
	रवि	(रवि) 1/1	सूर्य
	णित्तेइज्जइ	(णित्तेअ) व कर्म 3/1 सक	तेजरहित किया जाता है
	किं	अव्यय	क्या
	घुट्टेण	(घुट्ट) 3/1	घूंट के द्वारा
	जलहि	(जलहि) 1/1	समुद्र
	सोसिज्जइ	(सोस) व कर्म 3/1 सक	सुखाया जाता है
4.	गोप्पएण	(गोप्पअ) 3/1	गौ के पैर के द्वारा
	किं	अव्यय	क्या
	णहु	(णह) 1/1	आकाश
	माणिज्जइ	(माण) व कर्म 3/1 सक	मापा जाता है
	अण्णाणें	(अण्णाण) 3/1	अज्ञान के द्वारा
	किं	अव्यय	क्या
	जिणु	(जिण) 1/1	जिनेन्द्र
	जाणिज्जइ	(जाण) व कर्म 3/1 सक	समझा जाता है
5.	वायसेण	(वायस) 3/1	कौए के द्वारा
	किं	अव्यय	क्या
	गरुडु	(गरुड) 1/1	गरुड़
	णिरुज्झइ	(णिरुज्झइ) व कर्म 3/1 सक अनि	रोका जाता है
	णवकमलेण	[(णव) वि-(कमल) 3/1]	नूतन कमल के द्वारा
	कुलिसु	(कुलिस) 1/1	वज्र
	किं	अव्यय	क्या
	विज्झइ	(विज्झइ) व कर्म 3/1 सक अनि	बेधा जाता है
6.	करिणा	(करि) 3/1	हाथी के द्वारा

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

	कि	अव्यय	क्या
	मयारि	(मयारि) 1/1	सिंह
	मारिज्जइ	(मार) व कर्म 3/1 सक	मारा जाता है
	किं	अव्यय	क्या
	वसहेण	(वसह) 3/1	बैल के द्वारा
	वग्घु	(वग्घ) 1/1	शेर
	दारिज्जइ	(दार) व कर्म 3/1 सक	चीरा जाता है
7.	किं	अव्यय	क्या
	हंसें	(हंस) 3/1	धोबी के द्वारा
	ससंकु	(ससंक) 1/1	चन्द्रमा
	धवलिज्जइ	(धवल) व कर्म 3/1 सक	सफेद किया जाता है
	किं	अव्यय	क्या
	मणुएण	(मणुअ) 3/1	मनुष्य के द्वारा
	कालु	(काल) 1/1	काल
	कवलिज्जइ	(कवल) व कर्म 3/1 सक	निगला जाता है
8.	डेंडुहेण	(डेंडुह) 3/1	मेंढक के द्वारा
	किं	अव्यय	क्या
	सप्पु	(सप्प) 1/1	साँप
	डसिज्जइ	(डस) व कर्म 3/1 सक	काटा जाता है
	किं	अव्यय	क्या
	कम्मेण	(कम्म) 3/1	कर्म के द्वारा
	सिद्धु	(सिद्ध) 1/1	सिद्ध
	वसि	(वसि) 7/1	वश में
	किज्जइ	(कि) व कर्म 3/1 सक	किया जाता है
9.	किं	अव्यय	क्या
	णीसासें	(णीसास) 3/1	श्वांस से
	लोउ	(लोअ) 1/1	लोक
	णिहिप्पइ	(णिहिप्पइ) व कर्म 3/1 सक अनि	स्थापित किया जाता है
	किं	अव्यय	क्या
	पइं	(तुम्ह) 3/1 स	तुम्हारे द्वारा
	भरहणराहिउ	[(भरह)-(णराहिअ) 1/1]	भरत नराधिप
	जिप्पइ	(जिप्पइ) व कर्म 3/1 सक अनि	जीता जाता है
10.	हो	अव्यय	आश्चर्य
	होउ	(हो) विधि 3/1 अक	होवे
	पहुप्पइ	(पहुप्प) व 3/1 अक	समर्थ होता है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जंपिएण	(जंपिअ) भूकृ 3/1	प्रलाप किया हुआ होने के कारण
राउ	(राअ) 1/1	राजा
तुहुप्परि	[(तुह)+(उप्परि)]तुह (तुम्ह) 6/1 स उप्परि=अव्यय	तुम्हारे, ऊपर
वग्गइ	(वग्ग) व 3/1 अक	चौकड़ी भरेगा (कूदता है)
करवालहिं	(करवाल) 3/2	तलवारों के साथ
सूलहिं	(सूल) 3/2	त्रिशूलों के साथ
सव्वलहिं	(सव्वल) 3/2	बर्छों के साथ
परइ	(पर) व 3/1सक	भ्रमण करता है (करेगा)
रणंगणि	[(रण)+(अंगणि)][(रण)-(अंगण) 7/1]	रण के आँगन में
लग्गइ	(लग्गअ) भूकृ 7/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	निकटवर्ती

16.21

1.	ता	अव्यय	तब
	भणियं	(भण→भणिय) भूकृ 1/1	कहा गया
	स-हेउणा	(स-हेउ) 3/1 वि	युक्तिसहित
	मयरकेउणा	(मयरकेउ) 3/1	कामदेव के द्वारा
	एत्थ	अव्यय	यहाँ
	कहिं	अव्यय	कहीं
	मि	अव्यय	भी
	जाया	(जाय) भूकृ 1/2 अनि	हुए
	जे	(ज) 1/2 सवि	जो
	परदविणहारिणो	[(पर) वि-(दविण)-(हारी) 1/2 वि]	परद्रव्य को हरनेवाला
	कलहकारिणो	(कलहकारी) 1/2 वि	कलह करनेवाले (कलहकारी)
	ते	(त) 1/2 सवि	वे
	जयम्मि	(जय) 7/1	जगत में
	राया	(राय) 1/2	राजा
2.	वुड्डउ	(वुड्डअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	बूढ़ा
	जंबुउ	(जंबुअ) 1/1 'अ' स्वार्थिक	सियार
	सिव	(सिव) 1/1	समृद्धि
	सद्दिज्जइ	(सद्द) व कर्म 3/ सक	बुलाई जाती है
	एण	(एअ) 3/1 स	इससे
	णाइं	अव्यय	मानो
	महु	(अम्ह) 4/1 स	मेरे लिए
	हासउ	(हासअ) 1/1 'अ' स्वार्थिक	हँसी
	दिज्जइ	(दा+इज्ज) व कर्म 3/1 सक	दी जाती है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

3. जो	(ज) 1/1 सवि	जो
बलवंतु	(बलवंत) 1/1 वि	बलवान
चोरु	(चोर) 1/1	चोर
सो	(त) 1/1 सवि	वह
राणउ	(राणअ) 1/1 'अ' स्वार्थिक	राजा
णिब्बलु	(णिब्बल) 1/1 वि	निर्बल
पुणु	अव्यय	फिर
किज्जइ	(कि) व कर्म 3/1 सक	किया जाता है
णिप्राणउ	(णिप्राणअ) 1/1 वि	निष्प्राण
4. हिप्पइ	(हिप्पइ) व कर्म 3/1 सक अनि	छीना जाता है
मृगहु	(मृग) 6/1	पशु का
मृगेण	(मृग) 3/1	पशु के द्वारा
जि	अव्यय	ही
आमिसु	(आमिस) 1/1	मांस
हिप्पइ	(हिप्पइ) व कर्म 3/1 सक अनि	छीना जाता है
मणुयहु	(मणुय) 6/1	मनुष्य का
मणुएण	(मणुअ) 3/1	मनुष्य के द्वारा
जि	अव्यय	ही
वसु	(वस) 1/1	प्रभुत्व
5. रक्खाकंखइ	[(रक्खा)-(कंखा→कंखाए→कंखाइ) 3/1]	रक्षा की इच्छा से
जूहु	(जूह→वूह) 2/1	व्यूह
रएप्पिणु	(रअ) संकृ	रचकर
एक्कहु	(एक्क) 6/1 वि	एक की
केरी	परसर्ग	सम्बन्धार्थक
आण	(आणा) 1/1	आज्ञा
लएप्पिणु	(लअ) संकृ	लेकर
6. ते	(त) 1/2 सवि	वे
णिवसंति	(णिवस) व 3/2 अक	निवास करते हैं
तिलोइ	(तिलोअ) 7/1	त्रिलोक में
गविट्ठउ	(गविट्ठअ) भूकृ 1/1 अनि	खोज किया हुआ
सीहहु	(सीह) 6/1	सिंह का
केरउ	परसर्ग	सम्बन्धार्थक
वंदु	(वंद) 1/1	समूह
ण	अव्यय	नहीं
दिट्ठउ	(दिट्ठअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	देखा गया
7. माणभंगि	[(माण)-(भंग) 7/1]	मान के भंग होने पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर	(वर) 1/1 वि	श्रेष्ठ
मरणु	(मरण) 1/1	मरण
ण	अव्यय	नहीं
जीविउ	(जीविअ) 1/1	जीवन
एहउ	(एहअ) 1/1 वि	ऐसा
दूय	(दूय) 8/1	हे दूत
सुद्दु	अव्यय	सचमुच
मइं	(अम्ह) 3/1 स	मेरे द्वारा
भाविउ	(भाव) भूकृ 1/1	विचारा गया
8. आवउ	(आव) विधि 3/1 सक	आवे
भाउ	(भाअ) 1/1	भाई
घाउ	(घाअ) 2/1	घात को
तहु	(त) 6/1 स	उसके
दंसमि	(दंस) व 1/1 सक	दिखाता हूँ (दिखाऊँगा)
संझाराउ	(संझाराअ) 1/1	संध्याराग
व	अव्यय	की तरह
खणि	(खण) 7/1	एक क्षण में
विद्धंसमि	(विद्धंस) व 1/1 सक	नष्ट करता हूँ(नष्ट कर दूंगा)
9. सिहिसिहाहं[1]	[(सिहि)-(सिहा) 6/2]	अग्नि की ज्वालाओं को
देविंदु	(देविंद) 1/1	देवेन्द्र
वि	अव्यय	भी
ण	अव्यय	नहीं
सहइ	(सह) व 3/1 सक	सह सकता है
महु	(अम्ह) 6/1 स	मुझ
मणसियहु	(मणसिय) 6/1	कामदेव के
विसिह	(विसिह) 2/2	बाणों को
को	(क) 1/1 सवि	कौन
विसहइ	(विसह) व 3/1 सक	सहता है (सहेगा)
10. एक्कु	(एक्क) 1/1 वि	एक
जि	अव्यय	ही
परउव्वारु	[(पर) वि-(उव्वार) 1/1]	परम-भलाई
णरिंदहु	(णरिंद) 6/1	राजा की
जइ	अव्यय	यदि
पइसरइ	(पइसर) व 3/1 सक	जाता है (चला जाय)

1. कभी-कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-134)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सरणु	(सरण) 2/1	शरण को
	जिणयंदहु	(जिणयंद) 6/1	जिनदेव की
11.	संघट्टमि	(संघट्ट) व 1/1 सक	मारता हूँ (मारूँगा)
	लुट्टमि	(लुट्ट) व 1/1 सक	लूटता हूँ (लूटूंगा)
	गयघडहु[1]	[(गय)-(घडा) 6/2]	गजसमूह को
	दलमि	(दल) व 1/1 सक	चूर-चूर करता हूँ (करूँगा)
	सुहड	(सुहड) 2/2	योद्धाओं को
	रणमग्गइ	[(रण)-(मग्गअ) 7/1 'अ' स्वार्थिक]	रणपथ में
	पहु	(पहु) 1/1	राजा
	आवउ	(आव) विधि 3/1 सक	आवे
	दावउ	(दाव) विधि 3/1 सक	दिखाए
	बाहुबलु	(बाहुबल) 2/1	बाहुबल को
	महु	(अम्ह) 6/1 स	मुझ
	बाहुबलिहि[2]	(बाहुबलि) 6/1	बाहुबलि के
	अग्गइ	अव्यय	आगे

16.22

1.	ता	अव्यय	तब
	दूउ	(दूअ) 1/1	दूत
	विणिग्गओ	(विणिग्गअ) भूकृ 1/1 अनि	गया
	णियपुरं	[(णिय) वि-(पुर) 2/1]	निजनगर को
	गओ	(गअ) भूकृ 1/1 अनि	गया
	तम्मि	(त) 7/1 स	वहाँ पर
	णिवणिवासं	[(णिव)-(णिवास) 2/1]	राजा के घर
	सो	(त) 1/1 स	वह/उसने
	विण्णवइ	(विण्णव) व 3/1 सक	कहता है (कहा)
	सायरं	(सायर) 1/1 वि	आदरसहित
	सारसायरं	[(सार)-(सायर) 1/1]	बलरूपी सागर
	पणविउं	(पणव→पणविअ) भूकृ 1/1	प्रणाम किया गया
	महीसं	(महीस) 1/1	पृथ्वी का ईश
2.	विसमु	(विसम) 1/1	खतरनाक
	देव	(देव) 8/1	हे देव
	बाहुबलि	(बाहुबलि) 1/1	बाहुबलि
	णरेसरु	(णरेसर) 8/1	हे नरेश्वर

---

1. कभी-कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-134)।
2. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 151।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णेहु	(णेह) 2/1	स्नेह
ण	अव्यय	नहीं
संधइ	(संध) व 3/1 सक	रखता है
संधइ	(संध) व 3/1 सक	रखता है
गुणि	(गुण) 7/1	धनुष की डोरी पर
सरु	(सर) 2/1	बाण
3. कज्जु	(कज्ज) 2/1	कार्य
ण	अव्यय	नहीं
बंधइ	(बंध) व 3/1 सक	करता है
बंधइ परियरु→परियरु बंधइ	[(परियर) 2/1, (बंध) व 3/1 सक]	कमर कसता है
संधि	[संधि) 2/1	संधि
ण	अव्यय	नहीं
इच्छइ	(इच्छ) व 3/1 सक	चाहता है
इच्छइ	(इच्छ) व 3/1 सक	चाहता है
संगरु	(संगर) 2/1	युद्ध
4. पइं	(तुम्ह) 2/1 स	तुमको
णउ	अव्यय	नहीं
पेच्छइ	(पेच्छ) व 3/1 सक	देखता है
पेच्छइ	(पेच्छ) व 3/1 सक	देखता है
भुयबलु	[(भुय)-(बल) 2/1]	भुजाओं के बल को
आण	(आणा) 2/1	आज्ञा को
ण	अव्यय	नहीं
पालइ	(पाल) व 3/1 सक	पालता है
पालइ	(पाल) व 3/1 सक	पालता है
णियछलु	[(णिय) वि-(छल) 2/1]	अपनी दलील को
5. माणु	(माण) 2/1	स्वाभिमान
ण	अव्यय	नहीं
छंडइ	(छंड) व 3/1 सक	छोड़ता है
छंडइ	(छंड) व 3/1 सक	छोड़ता है
भयरसु	[(भय)-(रस) 2/1]	भय का भाव
दयवु	(दइव) 2/1	प्रारब्ध को
ण	अव्यय	नहीं
चिंतइ	(चिंत) व 3/1 सक	विचारता है
चिंतइ	(चिंत) व 3/1 सक	विचारता है
पोरिसु	(पोरिस) 2/1	पुरुषार्थ को
6. संति	(संति) 2/1	शान्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ण	अव्यय	नहीं
मण्णइ	(मण्ण) व 3/1 सक	विचारता है
मण्णइ	(मण्ण) व 3/1 सक	विचारता है
कुलकलि	[(कुल)-(कलि) 2/1]	कुटुम्ब का झगड़ा
पुहइ	(पुहइ) 2/1	पृथ्वी
ण	अव्यय	नहीं
देइ	(दा) व 3/1 सक	देता है
देइ	(दा) व 3/1 सक	देता है
बाणावलि	[(वाण)+(आवलि)]	बाणों की पंक्ति
	[(वाण)-(आवलि) 2/1]	
7. तुज्झु	(तुम्ह) 4/1 स	तुमको
ण	अव्यय	नहीं
णवइ	(णव) व 3/1 सक	प्रणाम करता है
णवइ	(णव) व 31/ सक	प्रणाम करता है
मुणितंडउ	[(मुणि)-(तण्डव[1]) 2/1]	मुनि समूह को
अंगु	(अंग) 2/1	अंग को
ण	अव्यय	नहीं
कड्डइ	(कड्ड) व 3/1 सक	बाहर निकालता (खींचता) है
कड्डइ	(कड्ड) व 3/1 सक	बाहर निकालता (खींचता) है
खंडउ	(खंड) 2 2	तलवारों को
8. देव	(देव) 8/1	हे देव
ण	अव्यय	नहीं
देइ	(दा) व 3/1 सक	देता है (देगा)
भाइ	(भाइ) 1/1	भाई
तुह	(तुम्ह) 4/1 स	तुम्हारे लिए
पोयणु	(पोयण) 2/1	पोदनपुर
पर	अव्यय	किन्तु
जाणमि	(जाण) व 1/1 सक	जानता हूँ
देसइ	(दा) भवि 3/1 सक	देगा
रणभोयणु	[(रण)-(भोयण) 2/1]	रण-रूपी भोजन
9 ढोयइ	(ढोय) व 3/1 सक	भेंट करता है (करेगा)
रयणइं	(रयण) 2/2	रत्नों को
णउ	अव्यय	नहीं

1. तण्डव = तण्डवु → तण्डउ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करिरयणइं	[(करि)-(रयण) 2/2]	हाथीरूपी रत्नों को
ढोएसइ	(ढुक्क→ढोअ) भवि 3/1 सक (दे)	भेंट करेगा
ध्रुवु	क्रिविअ	निश्चित रूप से
णरउररयणइं	[(णर)-(उर)-(रयण) 2/2]	मनुष्य के छातीरूपी रत्नों को
10. संताणु	(संताण) 2/1	वंश
कुलक्कमु	(कुलक्कम) 2/1	कुलाचार
गुरुकहिउ	[(गुरु)-(कह→कहिअ) भूकृ 2/1]	गुरु के द्वारा कथित
खत्तधम्मु	[(खत्त)-(धम्म) 2/1]	क्षत्रिय धर्म को
णउ	अव्यय	नहीं
वुज्झइ	(वुज्झ) व 3/1 सक	समझता है
मज्जायविवज्जिउ	[(मज्जा-य)-(विवज्जिअ) भूकृ 1/1 अनि]	मर्यादारहित
सामरिसु	(सामरिस) 1/1 वि	ईर्ष्यालु
अवसें	(अवस) 3/1 क्रिवि	अवश्य ही
दाइउ	(दाइअ) 1/1	समान गोत्रीय
जुज्झइ	(जुज्झ) व 3/1 सक	युद्ध करता है (करेगा)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ-8

महापुराण

सन्धि-17

17.7

11. छुडु-छुडु	अव्यय	अति शीघ्र
कारणि[1]	(कारण) 3/1	प्रयोजन से
वसुमइहि[2]	(वसुमइ) 6/1	धरती के
सेण्णइं	(सेण्ण) 1/2	सेनाएं
जाम	अव्यय	ज्योंही
हणंति	(हण) व 3/2 सक	प्रहार करती हैं
परोप्परु	(परोप्पर) 2/1 वि	एक दूसरे पर
अंतरि	(अन्तर) 7/1	बीच में
ताम	अव्यय	तब ही (त्योंही)
पइट्ठ	(पइट्ठ) भूकृ 1/2 अनि	प्रविष्ट हुए
तहिं	अव्यय	वहां
मंति	(मंति) 1/2	मंत्री
चवंति	(चव) व 3/2 सक	कहते हैं (कहा)
समुब्भिवि	(समुब्भ+इवि) संकृ	ऊँचा करके
णियकरु	[(णिय) वि-(कर) 2/1]	अपना हाथ

17.8

बिहिं	(बि[3]) 6/1	दोनों
बलहं	(बल) 6/2	सेनाओं के
मज्झि	(मज्झ) 7/1	बीच में
जो	(ज) 1/1 सवि	जो
मुयइ	(मुय) व 3/1 सक	छोड़ता है (छोड़ेगा)
बाण	(बाण) 2/2	बाण
तहु	(त) 4/1 स	उसके लिए
होसइ	(हो) भवि 3/1 अक	होगी

1. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 144 ।
2. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 157 ।
3. एकवचन का बहुवचन अर्थ में प्रयोग हुआ है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	रिसहहु	(रिसह) 6/1	ऋषभदेव की
	तणिय	(स्त्री) परसर्ग	सम्बन्धसूचक
	आण[1]	(आण) स्त्री 1/1	सौगन्ध
2.	तं	(त) 2/1 स	उसको
	णिसुणिवि	(णिसुण+इवि) संकृ	सुनकर
	सेण्णइं	(सेण्ण) 1/2	सेनाएं
	सारियाइं	(सार→सारिय) भूकृ 1/2	हटाई गईं
	चडियइं	(चड→चडिय) भूकृ 1/2	चढ़े हुए
	चावइं	(चाव) 1/2	धनुष
	उत्तारियाइं	(उत्तार→उत्तारिय) भूकृ 1/2	उतारे गए
3.	तं	(त) 2/1 स	उसको
	णिसुणिवि	(णिसुण+इवि) संकृ	सुनकर
	रहसाऊरियाइं	[(रहस)+(आऊरियाइं)] [(रहस)-(आऊर) भूकृ 1/2]	वेग से भरी हुईं
	वज्जंतइं	(वज्ज→वज्जंत) वकृ 1/2	बजती हुईं
	तूरइं	(तूर) 1/2	तुरहियां
	वारियाइं	(वार) भूकृ 1/2	रोकी गईं
4.	तं	(त) 2/1 स	उसको
	णिसुणिवि	(णिसुण+इवि) संकृ	सुनकर
	धारापहसियाइं	[(धारा)-(पहस) भूकृ 1/2]	धारों का उपहास की हुईं
	करवालइं	(करवाल) 1/2	तलवारें
	कोसि	(कोस) 7/1	म्यान में
	णिवेसियाइं	(णिवेस) भूकृ 1/2	रख दी गईं
5.	तं	(त) 2/1 स	उसको
	णिसुणिवि	(णिसुण+इवि) संकृ	सुनकर
	णिद्धंगइं	[(णिद्ध)+(अंगइं)] [[(णिद्ध) भूकृ अनि-(अंग) 1/2] वि]	कान्तियुक्त घटकवाले
	घणाइं	(घण) 1/2	घने
	णिम्मुक्कइं	(णिमुक्क) भूकृ 1/2 अनि	खोल दिए गए
	कवयणिबंधणाइं	[(कवय)-(णिबंधण) 1/2]	कवचों के बन्धन
6.	तं	(त) 2/1 स	उसको
	णिसुणिवि	(णिसुण+इवि) संकृ	सुनकर

1. वृहत् हिन्दी कोश।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	मय-मायंग	[(मय)-(मायंग) 1/2]	मदवाले हाथी
	रुद्ध	(रुद्ध) भूकृ 1/2 अनि	रोक लिये गए
	पडिगयवरगंधालुद्ध	[(पडिगय)-(वर)-(गंध→गंधा)-(लुद्ध) भूकृ 1/2 अनि]	प्रतिपक्षी, श्रेष्ठ, गंध के इच्छुक
	कुद्ध	(कुद्ध) भूकृ 1/2 अनि	क्रुद्ध
7.	तं	(त) 2/1 स	उसको
	णिसुणिवि	(णिसुण+इवि) संकृ	सुनकर
	मच्छरभावभरिय	[(मच्छर)-(भाव)-(भर) भूकृ 1/2]	ईर्ष्याभाव से भरे हुए
	हरि	(हरि) 1/2	घोड़े
	फुरुहुरंत	(फुरुहुर) वकृ 1/2	थरथराते हुए
	धावंत	(धाव) वकृ 1/2	दौड़ते हुए
	धरिय	(धर) भूकृ 1/2	पकड़ लिये गये
8.	रह	(रह) 1/2	रथ
	खंचिय	(खंच→खंचिय) भूकृ 1/2	खींच लिये गए
	कड्डिय	(कड्ड) भूकृ 1/2	खींच ली गईं
	पग्गहोह	[(पग्गह)+(ओह)] [(पग्गह)-(ओह) 1/2]	लगामें
	वारिय	(वार) भूकृ 1/2	रोक दिए गए
	विंधन्त	(विंध) वकृ 1/2	बेधते हुए
	अणेय	(अणेय) 1/2 वि	अनेक
	जोह	(जोह) 1/2	योद्धा

17.9

1.	पणमियसिरेंहि	[(पणमिय) संकृ-(सिर) 3/2]	प्रणाम करके, सिरों से
	मउलियकरेंहि	[(मउल→मउलिय) भूकृ-(कर) 3/2]	संकुचित किए हुए, हाथों से
	बाहुबलि	(बाहुबलि) 1/1	बाहुबलि
	भरहु	(भरह) 1/1	भरत
	महुरक्खरेंहि	[(महुर)+(अक्खरेंहि)] [(महुर)-(अक्खर) 3/2]	मधुर शब्दों से
2.	उग्गमियरोसपसमंतएंहि	[(उग्गमिय) भूकृ-(रोस)-(पसमंतअ) वकृ 3/1 'अ' स्वार्थिक]	उत्पन्न हुए, क्रोध को, शान्त करते हुए (के द्वारा)
	विण्णि	(वि) 1/2 वि	दोनों
	वि	अव्यय	ही
	विण्णविय	(विण्णव) भूकृ 1/2	कहे गये
	महंतएंहि	(महंतअ) 3/2 'अ' स्वार्थिक	मन्त्रियों द्वारा
3.	तुम्हइं	(तुम्ह) 1/2 स	आप
	विण्णि	(वि) 1/2 वि	दोनों
	वि	अव्यय	ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	जण	(जण) 1/2	मनुष्य
	चरमदेह	[[(चरम)-(देह) 1/2] वि]	अन्तिम देहवाले
	तुम्हइं	(तुम्ह) 1/2 स	आप
	विण्णि	(वि) 1/2 वि	दोनों
	वि	अव्यय	ही
	जयलच्छिगेह	[(जय)-(लच्छि)-(गेह) 1/2]	विजयरूपी लक्ष्मी के घर
4.	तुम्हइं	(तुम्ह) 1/2 स	आप
	विण्णि	(वि) 1/2 वि	दोनों
	वि	अव्यय	ही
	अखलियपयाव	[[(अखलिय)-(पयाव) 1/1] वि]	अबाधित प्रतापवाले
	तुम्हइं	(तुम्ह) 1/2 स	आप
	विण्णि	(वि) 1/2 वि	दोनों
	वि	अव्यय	ही
	गंभीरराव	[[(गंभीर)-(राव) 1/1] वि]	गंभीर वाणीवाले
5.	तुम्हइं	(तुम्ह) 1/2 स	आप
	विण्णि	(वि) 1/2 वि	दोनों
	वि	अव्यय	ही
	जगधरणथाम	[[(जग)-(धरण)-(थाम) 1/1] वि]	जगत को, धारण करने की, शक्तिवाले
	तुम्हइं	(तुम्ह) 1/2 स	आप
	विण्णि	(वि) 1/2 वि	दोनों
	वि	अव्यय	ही
	रामाहिराम	[(रामा)+(अहिराम)] [(रामा)-(अहिराम) 1/1]	स्त्रियों के लिए आकर्षक
6.	तुम्हइं	(तुम्ह) 1/2 स	आप
	विण्णि	(वि) 1/2 वि	दोनों
	वि	अव्यय	ही
	सुरहं	(सुर) 4/2	देवताओं के लिए
	मि	अव्यय	भी
	पयंड	(पयंड) 1/2 वि	प्रचण्ड
	महिमहिलहि[1]	[(महि)-(महिला) 6/1]	पृथ्वीरूपी महिला की
	केरा	परसर्ग	सम्बन्धवाचक
	बाहुदंड	[(बाहु)-(दंड) 1/2]	लम्बी भुजाएँ
7.	तुम्हइं	(तुम्ह) 1/2 स	आप

1. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 157।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विण्णि	(वि) 1/2 वि	दोनों
वि	अव्यय	ही
णिवणायकुसल	[(णिव)-(णाय)-(कुसल) 1/1 वि]	राजनीति में कुशल
णियतायपायपंकरुहभसल	[(णिय) वि-(ताय)-(पाय)-(पंकरुह)-(भसल) 1/2]	निज, पिता के, चरणरूपी, कमलों के भौंरें
8. तुम्हइं	(तुम्ह) 1/2 स	आप
विण्णि	(वि) 1/2 वि	दोनों
वि	अव्यय	ही
जण	(जण) 1/2	जन
जणहु	(जण) 6/1	जन के
चक्खु	(चक्खु) 1/2	चक्षु
इच्छहु	(इच्छ) विधि 2/2 सक	चाहें
अम्हारउ	(अम्हारअ) 2/1 वि	हमारे
धम्मपक्खु	[(धम्म)-(पक्ख) 2/1]	धर्मपक्ष को
9. खरपहरणधारादारिएण	[(खर)वि-(पहरण)-(धारा)-(दार→दारिअ) भूकृ 3/1]	प्रखर, आयुधों की, धारों से विदारित
किं	(क) 1/1 सवि	क्या
किंकरणियरें	[(किंकर)-(णियर) 3/1]	अनुचर समूह से
मारिएण	(मार→मारिअ) भूकृ 3/1	मारे गए
10. किर	अव्यय	पादपूरक
काइं	(काइं) 1/1 सवि	क्या
वराएं	(वराअ) 3/1 वि	बेचारों से
दंडिएण	(दंड→दंडिअ) भूकृ 3/1	सजा दिये हुये (से)
सीमंतिणिसत्थें	[(सीमंतिणी→सीमंतिणि)-(सत्थ) 3/1]	नारी समूह से
रंडिएण	(रंड→रंडिअ) भूकृ 3/1	विधवा किए हुए
11. दोहं	(दो) 6/2 वि	दोनों के
मि	अव्यय	ही
केरा	परसर्ग	सम्बन्धवाचक
मज्झत्थ	(मज्झत्थ) 1/1	मध्यस्थित
होवि	(हु+अवि) संकृ	होकर
आउहु	(आउह) 2/1	आयुध (को)
मेल्लिवि	(मेल्ल+इवि) संकृ	छोड़कर
खमभाउ	[(खम)-(भाअ) 2/1]	क्षमाभाव को
लेवि	(ले+एवि) संकृ	धारण करके
12. अवलोयंतु	(अवलोय) वकृ 1/1	समझते हुए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धराहिवइ	(धराहिवइ) 8/1	हे राजन्
एत्तिउ	(एत्तिअ) 1/1 वि	इतना
किज्जउ	(कि+इज्ज) विधि कर्म 3/1 सक	किया जाए
सुत्तु	(सुत्त) भूकृ 2/1 अनि	भली प्रकार कहे हुए को
सुजुत्तउ	(सुजुत्तअ) भूकृ 2/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	उपयुक्त
तुम्हहं[1]	(तुम्ह) 6/2 स	तुम
दोहं[1]	(दो) 6/2 वि	दोनों में
मि	अव्यय	ही
होउ	(हो) विधि 3/1 अक	हो
रणु	(रण) 1/1	युद्ध
तिविहु	(तिविह) 1/1 वि	तीन प्रकार का
धम्मणाएण	[(धम्म)-(णाअ) 3/1]	धर्म और न्याय से
णिउत्तउ	(णिउत्तअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	निर्धारित

17.10

1.	पहिलउ	(पहिल-अ) 1/1 वि (दे) 'अ' स्वार्थिक	पहले
	अवरोप्परु[2]	(अवरोप्पर) 2/1 वि	एक दूसरे पर
	दिट्ठि	(दिट्ठि) 2/1	दृष्टि
	धरहु	(धर) विधि 2/2 सक	डालो
	मा	अव्यय	मत
	पत्तलपत्तणचलणु	[(पत्तल)-(पत्तण)-(चलण) 2/1]	पलकों के बालरूपी, बालों के अग्रभाग का हलन-चलन
	करहु	(कर) विधि 2/2 सक	करो
2.	बीयउ	(बीयअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	दूसरा
	हंसावलिमाणिएण	[(हंस)+(आवलि)+(माणिएण)] [(हंस)-(आवलि)-(माण→माणिअ)]भूकृ 3/1]	हंस की, कतारों से, सम्मानित
	अवरोप्परु	(अवरोप्पर) 2/1 वि (क्रिवि)	एक दूसरे के विरुद्ध
	सिंचहु	(सिंच) विधि 2/2 सक	छिड़काव करो
	पाणिएण	(पाणिअ) 3/1	पानी से
4.	जुज्झहु	(जुज्झ) विधि 2/2 सक	युद्ध करें
	विण्णि	(वि) 1/2 वि	दोनों

---

1. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-134)।

2. इस शब्द (परस्पर) के 'आपस में' 'एक दूसरे के विरुद्ध' आदि अर्थ में कर्म, करण और अपादान के एकवचन के रूप क्रिया-विशेषण की भाँति प्रयुक्त होते हैं (आप्टे, संस्कृत-हिन्दी कोश)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि	अव्यय	ही
णिवमल्ल	[(णिव)-(मल्ल) 1/2]	राजारूपी, पहलवान
ताम	अव्यय	तब तक
एक्केण	(एक्क) 3/1 वि	एक के द्वारा
तुलिज्जइ	(तुल + इज्ज) व कर्म 3/1 सक	उठा लिया जाता है
एक्कु	(एक्क) 1/1 वि	एक
जाम	अव्यय	जब तक
5. अवरोप्पर	(अवरोप्पर) 2/1 वि	एक दूसरे को
जिणिवि	(जिण + इवि) संकृ	जीतकर
परक्कमेण	(परक्कम) 3/1	शूरवीरता से
गेण्हहु	(गेण्ह) व 2/2 सक	ग्रहण करें (करता है)
कुलहरसिरि	[(कुल)-(हर)-(सिरी) 2/1]	पितृ-गृह के वैभव को
विक्कमेण	(विक्कम) 3/1	सामर्थ्य से
6 तणुसोहाहसियपुरंदरेहिं	[(तणु)-(सोहा)-(हसिय) भूकृ-(पुरंदर[1]) 6/1]	शरीर की, शोभा के कारण, उपहास किया गया, इन्द्र का
ता	अव्यय	उस समय
चिंतिउ	(चिंत→चिंतिअ) भूकृ 1/1	विचारा गया
दोहिं	(दो) 3/2 वि	दोनों
मि	अव्यय	भी
सुन्दरेहिं	(सुन्दर) 3/2	सुन्दर (राजाओं) द्वारा
7. किं	(क) 1/1 सवि	क्या
दूहवियहिं[2]	(दूहव→दूहविय) भूकृ 7/1	दुःखी करनेवाले
णवजोव्वणेण	[(णव) वि-(जोव्वण) 3/1]	नवयौवन से
किं	(क) 1/1 सवि	क्या
फलिएण	(फल→फलिअ) भूकृ 3/1	फले हुए
वि	अव्यय	भी
कडुएं	(कडुअ) 3/1 वि 'अ' स्वार्थिक	कड़वे
वणेण	(वण) 3/1	वन से
10 जे	(ज) 1/2 सवि	जो
ण	अव्यय	नहीं
करंति	(कर) व 3/2 सक	करते हैं
सुहासियइं	(सुहासिय) 2/2	सुन्दर वचनों को

---

1. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 157।
2. कभी-कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-135)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंतिहिं	(मंति) 3/2	मन्त्रियों द्वारा
भासियाइं	(भास→भासिय) भूकृ 2/2	कहे हुए
णयवयणइं	[(णय)–(वयण) 2/2]	नीति-वचनों को
ताहं	(त) 6/2 सवि	उन
णरिंदहं	(णरिंद) 6/2	राजाओं की
रिद्धि	(रिद्धि) 1/1	रिद्धि
कओ	अव्यय	कहाँ से
कहिं	अव्यय	कहाँ
सीहासणछत्तइं	[(सीहासण)–(छत्त) 1/2]	सिंहासन, छत्र
रणयइं	(रयण) 1/2	रत्न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ–9

जंबूसामिचरिउ

सन्धि–9

9.8

1.	विणयसिरीए	(विणयसिरी) 3/1	विनयश्री के द्वारा
	कहाणउ	(कहाणअ) 1/1	कथानक
	सीसइ	(सीसइ) व कर्म 3/1 सक अनि	कहा जाता है (कहा गया)
	संखिणिनिहि	[(संखिणी)–(निहि) 6/1]	संखिणी की निधि की
	वरइत्तहो	(वरइत्त) 4/1	दूल्हे के लिए
	दीसइ	(दीसइ) व कर्म 3/1 सक अनि	बतलायी जाती है
2.	कम्मि	(क) 7/1 सवि	किसी
	पुरम्मि	(पुर) 7/1	नगर में
	दरिद्दें	(दरिद्द) 3/1	दरिद्र (स्थिति) के द्वारा
	ताडिउ	(ताड→ताडिअ) भूकृ 1/1	ताड़ा हुआ (प्रताड़ित)
	संखिणि	(संखिणी) 1/1	संखिणी
	नाम	अव्यय	नामक
	कोवि	(क) 1/1 सवि	कोई
	कव्वाडिउ	(कव्वाडिअ)[1] 1/1 वि (दे)	कबाड़ी
3.	दिणि-दिणि	(दिण)–(दिण) 7/1	प्रतिदिन
	वणे	(वण) 7/1	वन में
	कव्वाडहो	(कव्वाड) 4/1	कबाड़ीपन के लिए
	धावइ	(धाव) व 3/1 सक	भागता है (था)
	भोयणमत्तु	[(भोयण)–(मत्त) 2/1]	भोजनमात्र
	किलेसें	क्रिविअ	दुःखपूर्वक
	पावइ	(पाव) व 3/1 सक	पाता है (था)
4.	भुत्तसेसु	[(भुत्त)–(सेस) 1/1 वि]	भोजन में से बचा हुआ
	दिवसेसु	(दिवस) 7/2	कुछ दिनों में
	पवन्नउ	(पवन्नअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	प्राप्त किया गया
	रूवउ	(रूवअ) 1/1	रुपया
	एक्कु	(एक्क) 1/1 वि	एक

1. कव्वाडिअ=कावर उठानेवाला ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	रोक्कु	(रोक्क) 1/1 वि (दे)	रोकड़ी
	संपन्नउ	(संपन्नअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	प्राप्त (हासिल) किया गया
5.	महिलसहाएँ	[(महिल→महिला)-(सहाअ) 3/1]	पत्नी के सहयोग से
	रहसें	(रहस)[1] 7/1	एकान्त में
	चड्डिउ	(चड्डु→चड्डिअ) भूकृ 1/1	चढ़ा गया
	कलसें	(कलस) 7/1	कलश में
	छुहेवि	(छुह+एवि) संकृ	रखकर
	धरायलें	(धरायल) 7/1	धरती में
	गड्डिउ	(गड्डु→गड्डिअ) भूकृ 1/1	गाड़ दिया गया
6.	अह	अव्यय	बाद में
	रविगहणें	[(रवि)-(गहण) 7/1]	सूर्यग्रहण के अवसर पर
	कयावि	अव्यय	किसी भी समय
	विहाणइँ[2]	(विहाण) 7/1	प्रभात में
	चलियइँ	(चल→चलिय) 1/2	चले
	तित्थे[3]	(तित्थ) 7/1	तीर्थ-स्थान को
	चयवि	(चय+अवि) संकृ	छोड़कर
	नियथाणइँ	[(निय) वि-(थाण) 2/2]	निज निवासों को
7.	पुरिएहिँ	(पूर→पुरिअ) भूकृ 3/2	सम्पन्न (के द्वारा)
	मणिरयणसुवण्णहिँ	[(मणि)-(रयण)-(सुवण्ण) 3/2]	मणि, रत्न और सोने से
	अवलोइउ	(अवलोअ→अवलोइअ) भूकृ 1/1	देख ली गयी
	संखिणिनिहि	[(संखिणी)-(निहि) 1/1]	संखिणी की निधि
	अण्णहिँ	(अण्ण) 3/2 स	अन्य (व्यक्तियों) के द्वारा
8.	मंतिज्जए	(मंत+इज्ज) व कर्म 3/1 सक	सोचा जाता है (गया)
	आएण	(आअ) भूकृ 3/1 अनि	आये हुये के द्वारा
	असारें	(असार) 3/1	असार
	खडहडंतरूवयसंचारें	[(खडहडंत) वकृ-(रूवय)-(संचार) 3/1]	खड़खड़ करते हुए रुपये की गति के कारण
9.	जाणाविउ	(जाण+आवि+अ) प्रे. भूकृ 1/1	बतलाया गया
	लोयाण	(लोय) 4/2 (प्रा)	लोगों के लिए

1. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 146।
2. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 146।
3. कभी-कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-135)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समग्गा	[(स) वि–(मग्ग)[1] 7/1]	स्वमार्ग में
अम्हइँ	(अम्ह) 1/2 स	हम
गिण्हाविज्जहु	(गिण्ह+आवि+इज्ज) प्रे. व कर्म 1/2 सक	ग्रहण कराये जाते हैं
लग्गा	(लग्ग) भूकृ 4/2 अनि	लगे हुए
10. चिंतेवि	(चिंत+एवि) संकृ	सोचकर
तम्मि	(त) 7/1 स	उस (विषय) में
छुद्ध	(छुद्ध) 1/1 वि (दे)	डाल दिया गया
निउ	(निअ) 2/1 वि	निज
भल्लउ	(भल्लअ) 2/1 'अ' स्वार्थिक	भले को
एक्केक्कउ	[(एक्क)+(एक्कउ)]	एक-एक
	[(एक्क)–(एक्कअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक]	
मणिरयणु	[(मणि)–(रयण) 1/1]	मणिरत्न
गरिल्लउ	(गरिल्लअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	श्रेष्ठ
11. सो	(त) 1/1 सवि	वह
संपुण्णु	(संपुण्ण) भूकृ 1/1 अनि	पूर्ण कर दिया गया
करेवि	(कर+एवि) संकृ	करके
पवत्तइँ	(पवत्त) भूकृ 1/2 अनि	प्रवृत्त हुए
ण्हाएवि	(ण्हा+एवि) संकृ	स्नान करके
तित्थे	(तित्थ) 7/1	तीर्थ में
नियघरु	[(नियय)–(घर) 2/1]	अपने घर को
पत्तइँ	(पत्त) भूकृ 1/2 अनि	पहुँचे
12. अह	अव्यय	तब
छणदिणि	[(छण)–(दिण) 7/1]	उत्सव के दिन पर
महिलाए	(महिला) 3/1	पत्नी के द्वारा
कहिज्जइ	(कह) व कर्म 3/1 सक	कहा जाता है (गया)
रूवउ	(रूवअ) 1/1	रुपया
अज्जु	अव्यय	आज
नाह	(नाह) 8/1	हे नाथ
विलसिज्जइ	(विलस) व कर्म 3/1 सक	भोग किया जाता है (जाए)
13. संखिणि	(संखिणि) 1/1	संखिणी
खणइ	(खण) व 3/1 सक	खोदता है
कलसु	(कलस) 1/1	कलश
जहिँ	अव्यय	जहां पर

1. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 147।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धरियउ	(धर→धरिय→धरियअ) भूकृ 1/1 'अ' स्वा.	रखा गया
दिट्ठउ	(दिट्ठअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	देखा गया
ताम	अव्यय	तब
कणयमणिभरियउ	[(कणय)-(मणि)-(भर→भरिय→भरियअ) भूकृ 1/1 'अ' स्वार्थिक]	स्वर्ण तथा मणियों से भरा हुआ
14. सरहसु	[(स) वि-(रहस) 1/1 वि]	उत्साहसहित
रहसे[1]	(रहस) 1/1	एकान्त में
कहिउ	(कह) भूकृ 1/1	कहा गया
पिए	(पिअ) 8/1	हे प्रिय
पेक्खहि	(पेक्ख) विधि 2/1 सक	देख
मइं[2]	(अम्ह) 3/1	मेरे
सम	(सम) 1/1 वि	समान
पुण्णवंतु	(पुण्णवंत) 1/1 वि	पुण्यवान
को	(क) 1/1 सवि	कौन
लक्खहि	(लक्ख) विधि 2/1 सक	समझो
15. अज्जवि	अव्यय	आज ही
सिद्धिनएण	[(सिद्धि)-(नअ) 3/1]	योग शक्ति की युक्ति से
निहाणें	(निहाण) 7/1	खजाने में
रयमि	(रय) व 1/1 सक	रचता हूँ
उवाउ	(उवाअ) 2/1	उपाय
अवरु	(अवर) 2/1 वि	दूसरा
मइनाणें	[(मइ)-(नाण) 3/1]	बुद्धिज्ञान से
16 किंपि	(क) 1/1 सवि	कुछ भी
न	अव्यय	नहीं
लेमि	(ले) व 1/1 सक	लेता हूं (लूंगा)
करेमि	(कर) व 1/1 सक	करता हूँ (करूंगा)
न	अव्यय	नहीं
खोयणु	(खोयण) 2/1	खनन
होसइ	(हो) भवि 3/1 अक	हो जायेगा
कव्वाडेण	(कव्वाड) 3/1	कबाड़ीपन से
वि	अव्यय	ही
भोयणु	(भोयण) 1/1	भोजन

1. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 146।
2. 'सम' (समान) के योग में तृतीया होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

17. अह	अव्यय	तब
कलसेसु	(कलस) 7/2	कलशों में
छुहेवि	(छुह+एवि) संकृ	रखकर
एक्केक्कउ	[(एक्क)+(एक्कउ)]	एक-एक को
	[(एक्क) वि-(एक्कअ) 2/1 'अ' स्वार्थिक]	
बहु	(बहु) 6/1 वि	बहुत
दविणासए	[(दविण)+(आसए)] [(दविण)-(आसा) 3/1]	द्रव्य की आशा से
गड्डेवि	(गड्ड+एवि) संकृ	गाड़कर
मुक्कउ	(मुक्कअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	छोड़ दिया गया
18 अण्णहिं	(अण्ण) 7/1 स	दूसरे
पव्वे	(पव्व) 7/1	पर्व पर
पुणुवि	अव्यय	फिर
पहे	(पह) 7/1	पथ में
दिट्ठइं	(दिट्ठ) भूकृ 1/2 अनि	देखे गये
पूरहु	(पूर) विधि 1/2 सक	भरें
केम	अव्यय	किस प्रकार
हियए	(हियअ) 7/1	हृदय में
न	अव्यय	नहीं
पइट्ठइं	(पइट्ठ) भूकृ 1/2 अनि	बैठी
19. निहिहिँ[1]	(निहि) 7/1	निधि में से
रयणु	(रयण) 1/1	रत्न
एक्केक्कउ	[(एक्क)+(एक्कउ)]	एक-एक
	[(एक्क)-(एक्कअ) 1/1 वि]	
लइयउ	(लअ→लइय→लइयअ) भूकृ 1/1 'अ' स्वार्थिक	ले लिया गया
सुण्णउ	(सुण्णअ) 2/1 वि 'अ' स्वार्थिक	खाली
करेवि	(कर+एवि) संकृ	करके
सव्वु	(सव्व) 2/1 सवि	सबको
परिचइयउ	(परिचअ→परिचइय→परिचइयअ) भूकृ 1/1 'अ' स्वार्थिक	छोड़ दिया गया
20. अवरहिं	(अवर) 7/1 वि	दूसरे
समए	(समअ) 7/1	समय
जाम	अव्यय	जब
उग्घाडइ	(उग्घाड) व 3/1 सक	उघाड़ता है
रित्तउ	(रित्तअ) भूकृ 2/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	खाली को

1. कभी-कभी पंचमी विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-135)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नियवि	(निय+अवि) संकृ	देखकर
करहिँ	(कर) 3/2	हाथों से
सिरु	(सिर) 2/1	सिर
ताडइ	(ताड) व 3/1 सक	पीटता है
21. अच्छउ	(अच्छ) विधि 3/1 सक	जाने दो
रयणसमूहु	[(रयण)-(समूह) 2/1]	रत्नसमूह को
सरूवउ	(सरुवअ) 2/1 वि 'अ' स्वार्थिक	सौन्दर्य-युक्त
सो	(त) 1/1 सवि	वह
वि	अव्यय	भी
विणट्ठु	(विणट्ठ) भूकृ 1/1 अनि	नष्ट हो गया
मूलि	(मूल) 7/1	मूल में
जो	(ज) 1/1 सवि	जो
रूवउ	(रूवअ) 1/1	रुपया
22. साहीणलच्छि	[(साहीण) वि-(लच्छी) 2/1]	स्वाधीन लक्ष्मी को
नउ	अव्यय	नहीं
भुंजइ	(भुंज) व 3/1 सक	भोगता है
महइ	(मह) व 3/1 सक	इच्छा करता है
समग्गल	(समग्गल) 2/1 वि	पूर्ण
सग्गदिहि	[(सग्ग)-(दिहि)[1] 2/1]	मोक्ष सुख की (को)
संखिणिहि	(संखिणि) 6/1	संखिणी के
जेम	अव्यय	जिस प्रकार
वरइत्तहो	(वरइत्त) 6/1	दूल्हे के
करे	(कर) 7/1	हाथ में
लग्गेसइ	(लग्ग) भवि 3/1 अक	लगेगी
सुण्णनिहि	[(सुण्ण)-(निहि) 1/1]	शून्यनिधि

9.11

1. तं	(त) 2/1 स	उसको
निसुणेवि	(निसुण+एवि) संकृ	सुनकर
कुमारें	(कुमार) 3/1	कुमार के द्वारा
वुच्चइ	(वुच्चइ) व कर्म 3/1 सक अनि	कहा जाता है (कहा गया)
विसु	(विस) 1/1	विष
साहीणु	(साहीण) 1/1 वि	अपने पास
किं	अव्यय	क्या

1. दिहि=सुख।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	न	अव्यय	नहीं
	लहु	अव्यय	शीघ्र
	मुच्चइ	(मुच्चइ) व कर्म 3/1 सक अनि	छोड़ दिया जाता है
2.	रयणिहि	(रयणि) 7/1	रात्रि में
	नयरे	(नयर) 7/1	नगर में
	सियालु	(सियाल) 1/1	गीदड़
	पइट्ठउ	(पइट्ठअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	प्रविष्ट हुआ
	मुउ	(मुअ) भूकृ 1/1 अनि	मरा हुआ
	बलद्दु	(बलद्द) 1/1	बैल
	रच्छामुहे	[(रच्छा)-(मुह) 7/1]	मोहल्ले के मुख पर
	दिट्ठउ	(दिट्ठअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	देखा गया
3.	भक्खंतेण	(भक्ख→भक्खंत) वकृ 3/1	खाते रहने के कारण
	दंत-वणे[1]	[(दंत)-(वण) 7/1]	दाँतों के समूह से
	काणिउँ	[(काण→काणिअ)[2] भूकृ 1/1]	ढीला हो गया
	रयणिविरामपमाणु	[(रयणि)-(विराम)-(पमाण) 1/1]	रात्रि की समाप्ति की सीमा
	न	अव्यय	नहीं
	जाणिउँ	(जाण→जाणिअ)[2] भूकृ 1/1	जानी गयी
4.	हुए	(हु→हुअ) भूकृ 7/1	होने पर
	पहाए	(पहाअ) 7/1	प्रभात
	वस-आमिसमुज्झिउ	[(वस)-(आमिस)-(मुज्झ→मुज्झिअ) भूकृ 1/1]	बैल के माँस में मोहित
	जणसंचारवमालें	[(जण)-(संचार)-(वमाल) 3/1]	मनुष्यों के आवागमन के कोलाहल से
	बुज्झिउ	(बुज्झ→बुज्झिअ) भूकृ 1/1	होश में आया (समझा)
5.	भयकंपिरु	[(भय)-(कंप+इर=कंपिर) 1/1 वि]	भय से कंपनशील
	नीसरिवि	(नीसर+इवि) संकृ	निकलकर
	न	अव्यय	नहीं
	सक्कउ	(सक्कअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	समर्थ हुआ
	चिंतियमंतु	[(चिंतिय) भूकृ-(मंत) 1/1]	विचारी हुई, योजना
	पडेविणु	(पड+एविणु) संकृ	पड़कर
	थक्कउ	(थक्कअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	निश्चेष्ट हुआ

1. कभी-कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-135)।
2. यहां अनुस्वार का आगम हुआ है। अनुस्वार का अनुनासिक किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

6.	अप्पउ	(अप्पअ) 2/1 'अ' स्वार्थिक	अपने को
	मुयउ	(मुयअ) भूकृ 2/1 'अ' स्वार्थिक	मरा हुआ
	करिवि	(कर+इवि) संकृ	बनकर
	दरिसावमि	(दरिस+आव) प्रे. व 1/1 सक	दिखलाता हूँ
	किर	अव्यय	अवश्य ही
	वणु	(वण) 2/1	वन को
	पुणुवि	अव्यय	फिर
	निसागमि	[(निसा)+(आगमि)] [(निसा)-(आगम) 7/1]	रात्रि आने पर
	पावमि	(पाव) व 1/1 सक	चला जाता हूँ (जाऊँगा)
7.	दीसइ	(दीसइ) व कर्म 3/1 सक अनि	देखा जाता है (देखा गया)
	दिवसि	(दिवस) 7/1	दिन (होने) पर
	मिलिय	(मिल+य) संकृ	मिलकर
	पुरलोएं	[(पुर)-(लोअ) 3/1]	नगर के लोगों द्वारा
	एक्कें	(एक्क) 3/1 वि	एक
	नरेण	(नर) 3/1	मनुष्य के द्वारा
	पवड्ढियरोएं	[(पवड्ढ→पवड्ढिय) भूकृ-(रोअ) 3/1]	बढ़े हुए रोग के कारण
8.	ओसहत्थु	(ओसह+अत्थु[1]=ओसहत्थ) 1/1	औषधि के लिए
	लुउ	(लुअ) भूकृ 1/1 अनि	काट ली गई
	पुच्छ-सकण्णउ	[(पुच्छ)-(स-कण्णअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक]	पूँछ, कान सहित
	चिंतइ	(चिंत) व 3/1 सक	सोचता है (सोचा)
	जंबुउ	(जंबुअ) 1/1 'अ' स्वार्थिक	गीदड़
	अज्ज	अव्यय	आज
	वि	अव्यय	भी
	धण्णउ	(धण्णअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	भाग्यशाली
9.	जीवेसमि	(जीव) भवि 1/1 अक	जी लूंगा
	अपुच्छु	(अपुच्छ) 1/1 वि	पूंछरहित
	विणु	अव्यय	बिना
	कण्णहिं[2]	(कण्ण) 3/2	कानों से
	एक्कवार	अव्यय	(केवल) एक बार
	जइ	अव्यय	यदि
	छुट्टमि	(छुट्ट) व 1/1 अक	छूटता हूँ (छूट जाऊँ)
	पुण्णहिं	(पुण्ण) 3/2	पुण्यों से

1. अत्थ=हेत्वर्थक परसर्ग ।
2. बिना के योग में तृतीया हुई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

10. बोल्लइ	(बोल्ल) व 3/1 सक	बोलता है (बोला)
अवरु	(अवर) 1/1 वि	अन्य
एक्कु	(एक्क) 1/1 वि	एक
कामुयजणु	[(कामुय) वि-(जण) 1/1]	कामुक मनुष्य
गेण्हमि	(गेण्ह) व 1/1 सक	लेता हूँ
दंतु	(दंत) 2/1	दांत
करमि	(कर) व 1/1 सक	करता हूँ (करूंगा)
वसि	(वस) 7/1 वि	वश में
पियमणु	[(पिया→पिय)[1]-(मण)2/1]	प्रिया के मन को
11. पाहणु	(पाहण) 2/1	
लेवि	(ले+एवि) संकृ	लेकर
दंत	(दंत) 2/1	दांत
किर	अव्यय	पादपूरक
चूरइ	(चूर) व 3/1 सक	तोड़ता है
जाणिवि	(जाण+इवि) संकृ	जानकर
जंबुउ	(जंबुअ) 1/1 'अ' स्वार्थिक	गीदड़
हियइ	(हियअ) 7/1	मन (हृदय में)
बिसूरइ	(बिसूर=विसूर) व 3/1 अक	खेद करता है
12. खंडियपुच्छ-कण्ण	[(खंडिय) भूकृ-(पुच्छ)-(कण्ण) 1/1]	काटे गये, पूंछ, कान
मण्णिय	(मण्ण→मण्णिय) भूकृ 1/1	मानी गई
तिणु	(तिण) 1/1 वि	तुच्छ
दुक्करु	(दुक्कर) 1/1 वि	कठिन
जीवियास	[(जीविय)+(आस)]	जीने की आशा (उम्मीद)
	[(जीविय)-(आसा) 1/1]	
दंतहिँ	(दंत) 3/2	दांतों के
विणु	अव्यय	बिना
13. चिंतवि	(चिंत+अवि) संकृ	सोचकर
मुक्कु	(मुक्क) भूकृ 1/1 अनि	म्लान
धाउ	(धा→धाअ) भूकृ 1/1	भागा
जव-पाणें	[(जव)-(पाण) 3/1]	वेग से, प्राणसहित
लइउ	(लइ→लइअ) भूकृ 1/1	पकड़ लिया गया
कंठे	(कंठ) 7/1	मुंह (कंठ) में
हरिसरिसें	[(हरि)-(सरिस) 3/1 वि]	सिंह के समान
साणें	(साण) 3/1	कुत्ते के द्वारा

1. समास में दीर्घ का ह्रस्व हो जाया करता है (हे. प्रा. व्या. 1-4)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

14. मारिउ	(मार→मारिअ) भूकृ 1/1	मार दिया गया
ताम	अव्यय	उस समय
जाण	(जाण) विधि 3/1 सक	समझो
कयनाएं	(कयन→(स्त्री) कयना) 3/1	मार डालने के कारण
खद्धउ	(खद्धअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	खा लिया गया
मिलिवि	(मिल+इवि) संकृ	मिलकर
सुणहसमवाएं	[(सुणह)-(समवाअ) 3/1]	कुत्ते के समूह द्वारा
15. इय	अव्यय	इस प्रकार
विसयंधु	[(विसय)+(अंधु)]	विषयों में अंधा
	[(विसय)-(अंध) 1/1 वि]	
मूढु	(मूढ) 1/1 वि	मूढ़
जो	(ज) 1/1 सवि	जो
अच्छइ	(अच्छ) व 3/1 अक	रहता है
कवणभंति	[(कवण) स-(भंति) 1/1]	क्या, सन्देह
सो	(त) 1/1 सवि	वह
पलयहो[1]	(पलय) 6/1	नाश को
पच्छइ	(पच्छ) व 3/1 सक	पाता है

10.11

1. जंबूसामि	(जंबूसामि) 1/1	जंबूस्वामी
कहाणउ	(कहाणअ) 2/1	कथानक
साहइ	(साह) व 3/1 सक	कहता है (कहते हैं)
वाणिउ	(वाणिअ) 1/1	वणिक
कोवि	(क) 1/1 सवि	कोई
परोहणु	(परोहण) 2/1	जहाज
वाहइ	(वाह) व 3/1 सक	ले जाता है (ले गया)
2. गउ	(गअ) भूकृ 1/1 अनि	गया
परतीरे	[(पर) वि-(तीर) 7/1]	दूसरे किनारे पर
पुहइधण-तुल्लउ	[(पुहइ)-(धण)-(तुल्लअ) 1/1 वि 'अ' स्वा.]	पृथ्वी के धन के तुल्य
एक्कु	(एक्क) 1/1 वि	एक
जि	अव्यय	ही
रयणु	(रयण) 1/1	रत्न
किणिउ	(किण→किणिअ) भूकृ 1/1	खरीदा गया
बहुमोल्लउ	(बहुमोल्लअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	बहुमूल्य

1. कभी-कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-134)।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

3.	चडिवि	(चड+इवि) संकृ	चढ़कर
	पोइ	(पोअ) 7/1	जहाज पर
	लंघइ	(लंघ) व 3/1 सक	पार करता है (पार किया)
	सायरजलु	[(सायर)-(जल) 2/1]	सागर के जल को
	आवंतउ	(आ→आवंत→आवंतअ) वकृ 1/1 'अ' स्वा.	पहुँचते हुए
	चिंतइ	(चिंत) व 3/1 सक	सोचता है (सोचने लगा)
	मणे	(मण) 7/1	मन में
	मंगलु	(मंगल) 2/1 वि	इष्ट
4.	जा	अव्यय	जब
	वेलाउलु	(वेलाउल) 2/1	बन्दरगाह को
	पावमि	(पाव) व 1/1 सक	पहुँचता हूँ (पहुँचूंगा)
	तहि	अव्यय	वहाँ
	पुणु	अव्यय	फिर
	विक्कमि	(विक्क) व 1/1 सक	बेचता हूँ (बेचूंगा)
	एउ	(एअ) 2/1 सवि	इस
	माणिक्कु	(माणिक्क) 2/1	माणिक, रत्न (को)
	महग्गुणु	(महग्गुण) 2/1 वि	अत्यधिक कीमतवाले
5.	हरि-करि	[(हरि)-(करि) 2/1]	घोड़े व हाथी
	किणवि	(किण+अवि) संकृ	खरीदकर
	भंडु	(भंड) 2/1	बर्तन (भांडा)
	णाणाविहु	(णाणाविह) 2/1 वि	नाना प्रकार के
	घरु	(घर) 2/1	घर
	जाएसमि	(जाअ) भवि 1/1 सक	जाऊँगा
	निवसंपयनिहु	[(निव)-(संपया→संपय[1])-(निह[2]) 2/1 वि]	राजा की सम्पदा के समान
6.	अह	अव्यय	तब
	हत्थाउ	(हत्थ) 5/1 (प्रा.)	हाथ से
	गलिउ	(गल→गलिअ) भूकृ 1/1	निकल गया
	दरनिद्दहो	[(दर)+(निद्दहो)]	
		दर = अव्यय	अल्प
		(निद्दा)[3] 6/1	निद्रा में
	पडिउ	(पड→पडिअ) भूकृ 1/1	पड़ा
	रयणु	(रयण) 1/1	रत्न

1. समास में दीर्घ का ह्रस्व हो जाया करता है (हे. प्रा. व्या. 1–4)।
2, निह = समान।
3. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3–134)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तं	(त) 1/1 सवि	वह
मज्झे	(मज्झ) 7/1	भीतर (अन्दर)
समुद्दहो	(समुद्द) 6/1	समुद्र के
7. धाहावइ	(धाहाव) व 3/1 अक	हाहाकार मचाता है (मचाया)
तरियहु	(तर→तरिय) भूकृ 4/1	तैरे हुए (लोगों) के लिए
दीहरगिरु	[(दीहर) वि-(गिर) 2/1]	ऊँची आवाज
हा-हा	अव्यय	अरे, अरे
जाणवत्तु	(जाणवत्त) 1/1	जहाज
किज्जउ	(कि→किज्ज) विधि कर्म 3/1 सक	किया जाए
थिरु	(थिर) 1/1 वि	स्थिर
8. निवडिउ	(निवड→निवडिअ) भूकृ 1/1	गिरा
एत्थु	अव्यय	यहाँ
रयणु	(रयण) 1/1	रत्न
अवलोयहो	(अवलोय) 4/1	अवलोकन के लिए
तं	(त) 2/1 स	उसको
आणेवि	(आण+एवि) संकृ	लाकर
पुणुवि	अव्यय	फिर
महु	(अम्ह) 4/1	मेरे लिए
ढोयहो	(ढोय) 8/2 वि (दे)	हे उपस्थित (लोगों)
9. सायरे	(सायर) 7/1	सागर में
नट्ठु	(नट्ठ) भूकृ 1/1 अनि	लुप्त हुआ
वहंतहो[1]	(वह→वहंत) वकृ 6/1	चलते हुए
पोयहो[1]	(पोय) 6/1	जहाज में
कहिँ	अव्यय	कहाँ
लब्भइ	(लब्भइ) व कर्म 3/1 सक अनि	प्राप्त किया जाता है (जाएगा)
माणिक्कु	(माणिक्क) 1/1	रत्न
पलोयहो	(पलोय) 8/2	हे देखनेवाले (मनुष्यों)
10. इय	(इअ) 1/1 सवि	यह
मणुयजम्मु	[(मणुय)-(जम्म) 1/1]	मनुष्य जन्म
माणिक्कसमु	[(माणिक्क)-(सम) 1/1 वि]	रत्न के समान
रइसुहनिद्दावसजायभमु	[(रइ)-(सुह)-(निद्दा)-(वस)-(जाय) भूकृ-(भम) 1/1]	रतिसुखरूपी निद्रा के वश में हुआ भ्रमण

---

1. कभी-कभी षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पंचमी विभक्ति के स्थान पर पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-134)।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

संसारसमुद्दि	[(संसार)-(समुद्द) 7/1]	संसार समुद्र में
हरावियउ	(हराविय→हरावियअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	हराया गया
जोयंतु	(जोय→जोयंत) वकृ 1/1	देखता हुआ (खोजता हुआ)
केम	अव्यय	किस प्रकार
पुणु	अव्यय	फिर
लहमि	(लह) व 1/1 सक	प्राप्त करता हूँ (पाऊँगा)
हउँ	(अम्ह) 1/1 स	मैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ–10

सुदंसणचरिउ

सन्धि–2

2.10

1.	आयण्णि	(आयण्ण) विधि 2/1 सक	सुनो
	पुत्त	(पुत्त) 8/1	हे पुत्र
	जह	अव्यय	जिस प्रकार
	आगमे	(आगम) 7/1	आगम में
	सत्त	(सत्त) 1/2 वि	सातों
	वि[1]	अव्यय	ही, सभी
	वसण	(वसण) 1/2	व्यसन
	वुत्त	(वुत्त) भूकृ 1/2 अनि	कहे गये (समझाये गये)
2.	सप्पाइ	[(सप्प)+(आइ)] [(सप्प)–(आइ) 1/2]	सर्प आदि
	दुक्खु	(दुक्ख) 2/1	दुःख को
	इह	अव्यय	यहाँ
	दिंति	(दा) व 3/2 सक	देते हैं
	एक्क[2]	(एक्क) 7/1 वि	एक
	भवे	(भव) 7/1	जन्म में
	दुण्णिरिक्खु	(दुण्णिरिक्ख) 2/1 वि	कठिनाई से विचार किये जानेवाले
3.	विसय	(विसय) 1/2	विषय
	वि	अव्यय	किन्तु
	ण	अव्यय	नहीं
	भंति	(भंति) 1/1	सन्देह
	जम्मंतरकोडिहिँ	[(जम्म)+(अन्तर)+(कोडिहिँ)] [(जम्म)–(अन्तर)–(कोडि) 7/2 वि]	करोड़ों जन्मों के अवसर पर
	दुह	(दुह) 2/1	दुःख
	जणंति	(जण) व 3/2 सक	उत्पन्न करते (रहते) हैं
4.	चिरु	अव्यय	दीर्घकाल के लिए

1. संख्यावाचक शब्दों के पश्चात् प्रयुक्त होने पर 'समस्तता' का अर्थ होता है।
2. शून्य विभक्ति, श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 147।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रुद्ददत्तु	(रुद्ददत्त) 1/1	रुद्रदत्त
णिवडिउ	(णिवड→णिवडिअ) भूकृ 1/1	पड़ा
णरयण्णवे	[(णरय)+(अण्णवे)]	नरकरूपी समुद्र में
	[(णरय)-(अण्णव) 7/1]	
विसयजुत्तु	[(विसय)-(जुत्त) भूकृ 1/1 अनि]	विषयों में लीन
5. वढु	(वढ) 1/1 वि	मूर्ख
आयरेण	क्रिविअ	उत्साहपूर्वक
जो	(ज) 1/1 सवि	जो
रमइ	(रम) व 3/1 सक	खेलता है
जूउ	(जूअ) 2/1	जुआ
बहुडफ्फरेण	[(बहु) वि-(डफ्फर) 3/1]	?
6 सो	(त) 1/1 सवि	वह
च्छोहजुत्तु	[(च्छोह)-(जुत्त) भूकृ 1/1 अनि]	रोष से युक्त हुआ
आहणइ	(आहण) व 3/1 सक	कष्ट देता है
जणणि	(जणणी) 2/1	माता
सस	(ससा) 2/1	बहिन
घरिणि	(घरिणी) 2/1	पत्नी
पुत्तु	(पुत्त) 2/1	पुत्र को
7. जूयं	(जूय) 2/1	जुआ
रमंतु	(रम→रमंत) वकृ 1/1	खेलते हुए
णलु	(णल) 1/1	नल ने
तहय	अव्यय	और इसी प्रकार
जुहिट्ठिल्लु	(जुहिट्ठिल्ल) 1/1	युधिष्ठिर ने
विहुरु	(विहुर) 2/1	कष्ट
पत्तु	(पत्त) भूकृ 1/1 अनि	पाया
8. मंसासणेण	[(मंस)+(असणेण)] [(मंस)-(असण) 3/1]	मांस खाने के कारण
वड्ढेइ	(वड्ढ) व 3/1 अक	बढ़ता है
दप्पु	(दप्प) 1/1	अहंकार
दप्पेण	(दप्प) 3/1	अहंकार के कारण
तेण	(त) 3/1 सवि	उस
9. अहिलसइ	(अहिलस) व 3/1 सक	इच्छा करता है
मज्जु	(मज्ज) 2/1	मद्य की (को)
जूउ	(जूअ) 2/1	जुआ
वि	अव्यय	भी
रमेइ	(रम) व 3/1 सक	खेलता है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	बहुदोससज्जु	[(बहु) वि-(दोस)-(सज्जु)[1] 2/1]	बहुत सी बुराइयों में गमन
10.	पसरइ	(पसर) व 3/1 अक	फैलता है
	अकित्ति	(अकित्ति) 1/1	अपयश
	तें→तें	(त) 3/1 सवि	उस
	कज्जें→कज्जें	(कज्ज) 3/1	कारण से
	कीरइ[2]	(कीरइ) व कर्म 3/1 सक अनि	की जानी चाहिए
	तहो[3]	(त) 5/1 स	उससे
	णिवित्ति	(णिवित्ति) 1/1	निवृत्ति
11.	जंगलु	(जंगल) 2/1	मांस
	असंतु	(अस→असंत) वकृ 1/1	खाते हुए
	वणु	(वण) 1/1	वन
	रक्खसु	(रक्खस) 1/1	राक्षस
	मारिउ	(मार→मारिअ) भूकृ 1/1	मारा गया
	णरए[4]	(णरअ) 7/1	नरक
	पत्तु	(पत्त) भूकृ 1/1 अनि	पाया
12.	मइरापमत्तु	[(मइरा)-(पमत्त) भूकृ 1/1 अनि]	मदिरा के कारण नशे में चूर हुआ
	कलहेप्पिणु	(कलह+एप्पिणु) संकृ	झगड़ा करके
	हिंसइ	(हिंस) व 3/1 सक	कष्ट पहुंचाता है
	इट्ठमित्तु	[(इट्ठ)-(मित्त) 2/1]	प्रिय मित्र को
13.	रच्छहे[5]	(रच्छा) 6/1	राजमार्ग पर
	पडेइ	(पड) व 3/1 अक	गिर जाता है
	उब्भियकरु	[(उब्भ→उब्भिय) संकृ -(कर) 2/1]	ऊँचा करके, हाथ को
	विहलंघलु	(विहलंघल) 1/1 वि	उन्मत्त शरीरवाला
	णडेइ	(णड) व 3/1 अक	नाचता है
14.	होंता	(हो→होंत) वकृ 1/2	होते हुए
	सगव्व	(सगव्व) 1/2 वि	घमंडी

1. सर्ज्=सज्जु=गमन, अनुसरण, (संस्कृत-हिन्दी कोश, आप्टे)।
2. यह विधि-अर्थ में भी प्रयुक्त होता है, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 121।
3. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 248।
4. कभी-कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-135)।
5. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-134)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गय	(गय) भूकृ 1/2 अनि	प्राप्त हुए
जायव	(जायव) 1/2	यादव
मज्जें→मज्जें	(मज्ज) 3/1	मदिरा के कारण
खयहो[1]	(खय) 6/1	विनाश को
सव्व	(सव्व) 1/2	सभी
15. साइणि	(साइणी) 1/1	पिशाचिनी
व	अव्यय	की तरह
वेस	(वेसा) 1/1	वेश्या
रत्ताघरिसण	[(रत्त→रक्त→रक्ता[2])-(घरिसण) 2/1]	खून का घर्षण
दरिसइ	(दरिस) व 3/1 सक	दिखाती है
सुवेस	(सुवेस) 2/1	सुन्दर वेश
16. तहो	(त) 6/1 स	उसके
जो	(ज) 1/1 सवि	जो
वसेइ	(वस) व 3/1 अक	रहता है
सो	(त) 1/1 सवि	वह
कायरु	(कायर) 1/1 वि	अस्त-व्यस्त
उच्छिट्ठउ	(उच्छिट्ठअ) 2/1 'अ' स्वार्थिक	जूठन
असेइ	(अस) व 3/1 सक	खाता है
17. वेसापमत्तु	[(वेसा)-(पमत्त) भूकृ 1/1 अनि]	वेश्या में मस्त हुआ
णिद्धणु	(णिद्धण) 1/1 वि	धनरहित
हुउ	(हु→हुअ) भूकृ 1/1	हुआ
इह	अव्यय	यहां
वणि	(वणि) 1/1 वि	व्यापारी
चारुदत्तु	(चारुदत्त) 1/1	चारुदत्त
18. कयदीणवेसु	[(कय) भूकृ अनि-(दीण) वि-(वेस) 1/1]	बना दिया गया, दयनीय, वेश
णासंतु	(णास) वकृ 1/1	दूर हटाती हुई
परम्मुह	(परम्मुह) 1/1 वि	विमुख
छुट्टकेसु	[(छुट्ट) भूकृ अनि-(केस) 1/1]	काट दिये गये, बाल
19. जे	(ज) 1/2 सवि	जो
सूर	(सूर) 1/2 वि	वीर
होंति	(हो) व 3/2 अक	होते हैं

1. कभी-कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-134)।
2. समासगत शब्दों में रहे हुए स्वर परस्पर ह्रस्व के स्थान पर दीर्घ हो जाते हैं (हे.प्रा.व्या. 1-4)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सवरह	(सवर) 1/2	शवरों का
हु	अव्यय	ही
वि	अव्यय	चाहे
सो	(त) 1/1 सवि	वह
ते	(त) 1/2 सवि	वे
णउ	अव्यय	नहीं
हणंति	(हण) व 3/2 सक	मारते हैं
20. वणे	(वण) 7/1	वन में
तिण	(तिण) 2/1	घास
चरंति	(चर) व 3/2 सक	चरते हैं
णिसुणेवि	(णिसुण+एवि) संकृ	सुनकर
खडुकउ	(खडुकअ) 2/1	खड़खड़ आवाज
णिरु	अव्यय	निश्चित
डरंति	(डर) व 3/2 अक	डर जाते हैं
21. वणमयउलाइं	[(वण)-(मय)-(उल) 2/2]	वन में रहनेवाले मृगों के-समूह को
किह	अव्यय	क्यों
हणइ	(हण) व 3/1 सक	मारता है
मूढु	(मूढ) 1/1 वि	मूर्ख
किउ	(कि→किअ) भूकृ 1/1	किया गया
तेहिँ→तेहिं	(त) 3/2 स	उनके द्वारा
काइँ→काइं	(किं) 1/1 स	क्या
22. पारद्धिरत्तु	[(पारद्धि)-(रत्त) भूकृ 1/1 अनि]	शिकार का प्रेमी
चक्कवइ	(चक्कवइ) 1/1	चक्रवर्ती
णरए[1]	(णरअ) 7/1	नरक में (को)
गउ	(गअ) भूकृ 1/1 अनि	गया
बंभयत्तु	(बंभयत्त) 1/1	ब्रह्मदत्त
23. चलु	(चल) 1/1 वि	चंचल
चोरु	(चोर) 1/1	चोर
धिट्ठु	(धिट्ठ) भूकृ 1/1 अनि	निर्लज्ज
गुरुमायबप्पु	[(गुरु)-(माया)[2]-(बप्प) 2/1]	गुरु, मां और बाप को

1. कभी-कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-135)।
2. माया→माय, समासगत शब्दों में रहे हुए स्वर परस्पर में दीर्घ के स्थान पर ह्रस्व हो जाते हैं (हेम प्राकृत व्याकरण 1-4)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माणइ	(माण) व 3/1 सक	मानता है
ण	अव्यय	नहीं
इट्ठु	(इट्ठ) भूकृ 1/1 अनि	आदरणीय
24. णियभुयबलेण	[(णिय) वि-(भुय)-(बल) 3/1]	निज भुजाओं के बल से
वंचइ	(वंच) व 3/1 सक	ठगता है
ते	(त) 2/2 स	उनको
अवर	(अवर) 2/2	दूसरों को
वि	अव्यय	भी
सो	(त) 1/1 सवि	वह
छलेण	(छल) 3/1	जालसाजी से
25. भयकूवि	[(भय)-(कूव) 7/1]	संकटरूपी कुए में
छूढु	(छूढ) 1/1 वि	उपेक्षित
णउ	अव्यय	नहीं
णिद्दभुक्खु	[(णिद्द)-(भुक्ख) 2/1]	निद्रा और भूख को
पावेइ	(पाव) व 3/1 सक	पाता है
मूढु	(मूढ) 1/1 वि	मूढ़
26. पद्धडिय	(पद्धडिया) 1/1	पद्धडिया छंद
एह	(एआ) 1/1 सवि	यह
सुपसिद्धी	(सुपसिद्धि) 1/1	ख्याति
णामें	(णाम) 3/1	नाम से
विज्जलेह	(विज्जलेहा) 1/1	विद्युल्लेखा
27. पावेज्जइ	(पाव)[1] व कर्म 3/1 सक	पकड़ा जाता है
बंधेवि	(बंध+एवि) संकृ	बांधकर
णिज्जइ	(णी) व कर्म 3/1 सक	ले जाया जाता है
वित्थारेवि	(वित्थार+एवि) संकृ	फैलाकर
रहे[2]	(रह) 7/1	चौराहे पर
चच्चरे	(चच्चर) 7/1	मुख्यमार्ग पर
दंडिज्जइ	(दंड) व कर्म 3/1 सक	दंडित किया जाता है
तह	अव्यय	तथा
खंडिज्जइ	(खंड) व कर्म 3/1 सक	काटा जाता है
मारिज्जइ	(मार) व कर्म 3/1 सक	मारा जाता है
पुरबाहिरे	[(पुर)-(बाहिर) 7/1 वि]	शहर के बाहरी भाग में

1. प्र-आप्→पाव=पकड़ लेना (आप्टे, संस्कृत-हिन्दी कोश)।
2. टिप्पण, सुदंसणचरिउ, 2.10, पृष्ठ 268।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

2.11

1.	परवसुरयहो	[(पर) वि-(वसु)-(रय)[1] 6/1]	परद्रव्य में अनुरक्त होने के कारण
	अंगारयहो	(अंगारय)[1] 6/1	अंगारक के द्वारा
	सुलिहिँ→सुलिहिं	(सूली) 7/2	सूलियों पर
	भरणं	(भरण) 1/1 वि	धारण करनेवाला
	जायं	(जाय) भूकृ 1/1 अनि	प्राप्त किया गया
	मरणं	(मरण) 1/1	मरण
2.	इय	(इम) 2/1 सवि	इसको
	णिएवि	(णिअ) संकृ	जानकर
	जणो	(जण) 1/1	मनुष्य
	तो	अव्यय	उस समय
	वि	अव्यय	भी
	मूढमणो	(मूढमण) 1/1 वि	मूर्ख
	चोरी	(चोरी) 2/1	चोरी
	करइ	(कर) व 3/1 सक	करता है
	णउ	अव्यय	नहीं
	परिहरइ	(परिहर) व 3/1 सक	छोड़ता है
3.	जो	(ज) 1/1 सवि	जो
	परजुवइ	[(पर) वि-(जुवइ) 2/1]	अन्य की स्त्री को
	इह	अव्यय	लोक में
	अहिलसइ	(अहिलस) व 3/1 सक	चाहता है
	सो	(त) 1/1 सवि	वह
	णीससइ	(णीसस)[2] व 3/1 अक	लालायित रहता है
	गायइ	(गा→गाय) व 3/1 सक	प्रशंसा करता है
	हसइ[3]	(हस) व 3/1 सक	मिलता-जुलता है
12.	सहिऊण	(सह) संकृ	सहकर
	जए	(जअ) 7/1	जगत में
	णिवडइ	(णिवड) व 3/1 अक	गिरता है
	णरए	(णरअ) 7/1	नरक में

1. कभी-कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-134)।
2. निश्वस्=णीसस=लालायित होना, मोनियर विलियम, संस्कृत-अंग्रेजी कोष (देखें-श्वस्)।
3. हस्=मिलना-जुलना, (आप्टे, संस्कृत-हिन्दी कोष)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होऊ[1]	(होअ) भूकृ 1/1	हुआ
अबुहा	(अबुह) 1/1 वि	अज्ञानी
रामण	(रामण) 1/1	रावण
पमुहा	(पमुह) 1/1 वि	आदरणीय/श्रेष्ठ
13. परयाररया	[(पर) वि-(यार)-(रय) भूकृ 1/1 अनि]	पर स्त्री में अनुरक्त हुआ
खिर	अव्यय	आखिरकार
खयहो[2]	(खय) 6/1	विनाश को
गया	(गय) भूकृ 1/1 अनि	गया
सत्त	(सत्त) 1/2 वि	सातों
वि	अव्यय	समुच्चय अर्थ में प्रयुक्त
वसणा	(वसण) 1/2	व्यसन
एए	(एअ) 1/2 सवि	ये
कसणा	(कसण) 1/2 वि	अनिष्टकर

8.7

1. इयरहँ→इयरहं	(इयर) 6/2 वि	अन्य
दिव्वाहरणहँ→दिव्वाहरणहं	[(दिव्व)+(आहरणहं)] [(दिव्व)-(आहरण) 6/2]	सुन्दर आभूषणों के
पासिउ	(पास→पासिअ) भूकृ 1/1	जाना गया (समझा गया)
सीलु	(सील) 1/1	शील
वि	अव्यय	भी
जुवइहे	(जुवइ) 6/1	युवती का
मंडणु	(मंडण) 1/1	आभूषण
भासिउ	(भास) भूकृ 1/1	कहा गया
2. हरिवि	(हर+इवि) संकृ	हरण करके
णीय	(णीय) भूकृ 1/1 अनि	ले आई गई
जा	(जा) 1/1 सवि	जो
किर	अव्यय	जैसा कि बतलाया जाता है
दहवयणें→दहवयणें	(दहवयण) 3/1	रावण के द्वारा
सीलें→सीलें	(सील) 3/1	शील के कारण
सीय	(सीया) 1/1	सीता
दड्ढ	(दड्ढ) भूकृ 1/1 अनि	जलाई गई
णउ	अव्यय	नहीं
जलणें→जलणें	(जलण) 3/1	अग्नि के द्वारा

1. मात्रा के लिए 'उ' को 'ऊ' किया गया है।
2. कभी-कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-134)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

3. तह	अव्यय	उसी प्रकार
अणंतमइ	(अणंतमइ) 1/1	अनन्तमती
सीलगुरुक्किय	[(सील)-(गुरु)-(क्किय) भूकृ 1/1 अनि]	कठोर शील धारण की हुई
खगकिरायउवसग्गहँ[1] →	[(खग)-(किराय)-(उवसग्ग)[2] 6/1]	विद्याधरों और किरात के
खगकिरायउवसग्गहं		उपद्रव से
चुक्किय	(चुक्क) भूकृ 1/1	रहित हुई
4. रोहिणि	(रोहिणि) 1/1	रोहिणी
खरजलेण	[(खर) वि-(जल)[3] 3/1]	तेज धारवाले जल में
संभाविय	(संभाविय) भूकृ 1/1 अनि	डुबोई गई
सीलगुणेण	[(सील)-(गुण) 3/1]	शील गुण के कारण
णइए	(णई) 3/1	नदी के द्वारा
ण	अव्यय	नहीं
वहाइय	(वह→(प्रे.)वहाव→(भूकृ) वहाविय→ वहाइय→(स्त्री) वहाइया) भूकृ 1/1	बहाई गयी
5. हरि-हलि-चक्कवट्टि-जिणमायउ	[(हरि)-(हलि)-(चक्कवट्टि)-(जिण)-(माआ) 1/2]	नारायण, बलदेव, चक्रवर्ती तथा तीर्थंकरों की माताएं
अज्जु	अव्यय	आज
वि	अव्यय	भी
तिहुयणम्मि	(ति-हुयण) 7/1	तीन लोक में
विक्खायउ	(विक्खाया) भूकृ 1/2 अनि	प्रसिद्ध
6. एयउ	(एया) 1/2 सवि	ये
सीलकमलसरहंसिउ	[(सील)-(कमल)-(सर)-(हंसी) 1/2]	शीलरूपी कमल-सरोवर की हंसिनी
फणिणरखयरामरहिं → फणिणरखयरामरहिं	[(फणि)+(णर)+(खयर)+(अमरहिं)] [(फणि)-(णर)-(ख-यर)-(अमर) 3/2]	नागों, मनुष्यों, आकाश में चलनेवाले (विद्याधरों) और देवों द्वारा
पसंसिउ	(पसंस→(स्त्री) पसंसी) 1/2 वि	प्रशंसित
7. जणणि	(जणणि) 8/1	माता
ए	अव्यय	हे (आमन्त्रण का चिह्न)
छारपुंजु	[(छार)-(पुंज) 1/1]	राख का ढेर
वरि	अव्यय	अधिक अच्छा

1. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 151।
2. कभी-कभी पंचमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-134)।
3. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-137)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	जायउ	(जा→जाअ[1]→जाय) विधि 3/1 अक	हो जाए
	णउ	अव्यय	नहीं
	कुसीलु	(कुसील) 1/1	कुशील
	मयणेणुम्मायउ	[(मयणेण)+(उम्मायउ)]	
		(मयण) 3/1	कामवासना के कारण,
		(उम्मायअ) 1/1 वि	पागलपन पैदा करनेवाला (उन्मादक)
8.	सीलवंतु	(सीलवंत) 1/1 वि	शीलवान
	बुहयणें→बुहयणें	(बुहयण) 3/1	विद्वान व्यक्ति के द्वारा
	सलहिज्जइ	(सलह) व कर्म 3/1 सक	प्रशंसा किया जाता है
	सीलविवज्जिएण	[(सील)-(विवज्जिअ) 3/1]	शीलरहित होने से
	किं	(किं) 1/1 सवि	क्या
	किज्जइ	(किज्जइ) व कर्म 3/1 सक अनि	सिद्ध किया जाता है
9.	इय	(इअ) 2/1 स	इसको
	जाणेविणु	(जाण+एविणु) संकृ	समझकर
	सीलु	(सील) 1/1	शील
	परिपालिज्जए	(परिपाल+इज्ज) व कर्म 3/1 सक	पालन किया जाता है
	मा	(मा) 8/1	माता
	ए	अव्यय	हे
	महासइ	(महासइ) 8/1	हे महासती
	णं	अव्यय	है
	तो	अव्यय	तो
	लाहु	(लाह) 1/1	लाभ
	णियंतिहे	(णिय→णियंत→णियंती)[2] 6/1	देखते हुए
	हले	(हला) 8/1	हे सखी
	मूलछेउ	[(मूल)-(छेअ) 1/1]	आधार का नाश
	तुह	(तुम्ह) 6/1 स	आपका
	होसइ	(हो) भवि 3/1 अक	हो जायगा

8.9

1.	ण	अव्यय	नहीं
	फिट्टइ	(फिट्ट) व 3/1 अक	दूर होता है

---

1. अकारान्त धातुओं के अतिरिक्त शेष स्वरान्त धातुओं में अ (य) विकल्प से जुड़ता है, अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृष्ठ 265।
2. कभी-कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-134)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पेयवणे	(पेयवण)[1] 7/1	श्मशान से
इह	अव्यय	इस लोक में
गिद्धु	(गिद्ध) 1/1	गिद्ध
ण	अव्यय	नहीं
फिट्टइ	(फिट्ट) व 3/1 अक	दूर होता है
पंकए	(पंकअ) 7/1	कमल में
भिंगु	(भिंग) 1/1	भौंरा
पइट्ठु	(पइट्ठ) भूकृ 1/1 अनि	घुसा हुआ
2. ण	अव्यय	नहीं
फिट्टइ	(फिट्ट) व 3/1 अक	छूटता है
तुंबरणारयगेउ	[(तुंबर)-(णारय)-(गेअ) 1/1]	नारद के तम्बूरे का गीत
ण	अव्यय	नहीं
फिट्टइ	(फिट्ट) व 3/1 अक	नष्ट होता है
पंडियलोयविवेउ	[(पंडिय)-(लोय)-(विवेअ) 1/1]	ज्ञानी समुदाय का विवेक
3. ण	अव्यय	नहीं
फिट्टइ	(फिट्ट) व 3/1 अक	कोमल होता है
दुज्जणे	(दुज्जण)[1] 7/1	दुर्जन से
दुट्ठसहाउ	[(दुट्ठ) भूकृ अनि -(सहाअ) 1/1]	दुष्ट स्वभाव
ण	अव्यय	नहीं
फिट्टइ	(फिट्ट) व 3/1 अक	समाप्त होती है
णिद्धणचित्ते	[(णिद्धण)-(चित्त)[1] 7/1]	निर्धन के चित्त से
विसाउ	(विसाअ) 1/1	चिन्ता
4. ण	अव्यय	नहीं
फिट्टइ	(फिट्ट) व 3/1 अक	जाता है
लोहु	(लोह) 1/1	लोभ
महाधणवंते	(महाधणवंत)[1] 7/1 वि	महाधनवान से
ण	अव्यय	नहीं
फिट्टइ	(फिट्ट) व 3/1 अक	दूर होता है
मारणचित्तु	[(मारण)-(चित्त) 1/1]	मारने का भाव
कयंते	(कयंत)[1] 7/1	यमराज से
5. ण	अव्यय	नहीं
फिट्टइ	(फिट्ट) व 3/1 अक	हटता है
जोव्वणइत्ते	(जोव्वण-इत्त)[1] 7/1 वि	यौवनवान से

1. कभी-कभी पंचमी विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-136)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	मरट्टु	(मरट्ट) 1/1	अहंकार
	ण	अव्यय	नहीं
	फिट्टइ	(फिट्ट) व 3/1 अक	विचलित होता है
	वल्लहे	(वल्लह) 7/1	प्रेमी में
	चित्तु	(चित्त) 1/1	मन
	चहुट्टु	(चहुट्ट) 1/1 वि	लगा हुआ
6.	ण	अव्यय	नहीं
	फिट्टइ	(फिट्ट) व 3/1 अक	नीचे आता है
	विंझि	(विंझ)[1] 7/1	विन्ध्य पर्वत से
	महाकरिजूहु	[(महा) वि-(करि)-(जूह) 1/1]	महान हाथियों का समूह
	ण	अव्यय	नहीं
	फिट्टइ	(फिट्ट) व 3/1 अक	रहित होता है
	सासए	(सासअ)[1] 7/1	शाश्वत से
	सिद्धसमूहु	[(सिद्ध)-(समूह) 1/1]	सिद्धों का समूह
7.	ण	अव्यय	नहीं
	फिट्टए	(फिट्ट) व 3/1 अक	छूटता है
	पाविहे	(पावि) 5/1	पापी से
	पावकलंकु	[(पाव)-(कलंक) 1/1]	पाप का कलंक
	ण	अव्यय	नहीं
	फिट्टए	(फिट्ट) व 3/1 अक	हटता है
	कामुयचित्ते	[(कामुय)-(चित्त)[1] 7/1]	कामुक चित्त से
	झसंकु	(झसंक) 1/1	कामदेव
8.	ण	अव्यय	नहीं
	फिट्टए	(फिट्ट) व 3/1 अक	हटता है (हटेगा)
	आयहे	(आय)[1] 7/1	मन से
	जो	(ज) 1/1 सवि	जो
	असग्गाहु	(असग्गाह) 1/1	कदाग्रह
	सुछंदु	(सुछंद) 1/1	छंद
	वि	अव्यय	ही
	मोत्तियदामउ	(मोत्तियदामअ) 1/1 'अ' स्वार्थिक	मौक्तिकदाम
	एहु	(एअ) 1/1 सवि	यह
9.	अहवा	अव्यय	अथवा
	जं	अव्यय	जहाँ

1. कभी-कभी पंचमी विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-136)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिह	अव्यय	जिस प्रकार
जेण	(ज) 3/1 स	जिसके द्वारा
किर	अव्यय	पादपूरक
जिह	अव्यय	जैसी
अवसमेव	अव्यय	अवश्य ही
होएवउ	(हो + एवा → होएवा → होएवउ) विधि कृ. 1/2	उत्पन्न की जानी चाहिए (जायेंगी)
तं	अव्यय	वहां
तिह	अव्यय	उसी प्रकार
तेण	(त) 3/1 सवि	उसके द्वारा
जि	अव्यय	ही
देहिएण	(देहिअ) 3/1	व्यक्ति के द्वारा
तिह	अव्यय	वैसे
एक्कंगेण	(एक्कंग) 3/1 वि	अकेले
सहेवउ	[(सह + एवा → सहेवा → सहेवउ) विधि कृ. 1/2]	सही जानी चाहिए (सही जायेंगी)

8.32

1.	सुलहउ	(सुलहअ) 1/1 वि 'अ' स्वा.	सुप्राप्य
	पायालए	(पायालअ) 7/1 'अ' स्वार्थिक	पाताल में
	णायणाहु	[(णाय)-(णाह) 1/1]	सर्पों का स्वामी
	सुलहउ	(सुलहअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	स्वाभाविक
	कामाउरे	[(काम) + (आउरे)]	काम से पीड़ित में
		[(काम)-(आउर) 7/1 वि]	
	विरहडाहु	[(विरह)-(डाह) 1/1]	विरह का संताप
2.	सुलहउ	(सुलहअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	सरल
	णवजलहरे	[(णव) वि-(जलहर) 1/1]	नये बादल में
	जलपवाहु	[(जल)-(पवाह) 1/1]	जल का प्रवाह
	सुलहउ	(सुलहअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	आसान
	वइरायरे	[(वइर) + (आयरे)]	हीरे की खान में
		[(वइर)-(आयर) 7/1]	
	वज्जलाहु	[(वज्ज)-(लाह) 1/1]	हीरे की प्राप्ति
3.	सुलहउ	(सुलहअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	सुलभ
	कस्सीरए	(कस्सीरअ) 7/1 'अ' स्वार्थिक	कश्मीर में
	घुसिणपिंडु	[(घुसिण)-(पिंड) 1/1]	केसरपिंड
	सुलहउ	(सुलहअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	सुलभ
	माणससरे	(माणससर) 7/1	मानसरोवर में

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

कमलसंडु	[(कमल)-(संड) 1/1]	कमलों का समूह
4. सुलहउ	(सुलहअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	सुप्राप्य
दीवंतरे	[(दीव)+(अंतरे)] [(दीव)-(अंतर) 7/1]	द्वीपों के अन्दर
विविहभंडु	[(विविह)-(भंड) 1/1]	नाना प्रकार की व्यापारिक वस्तुएं
सुलहउ	(सुलहअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	सुलभ
पाहाणे	(पाहाण) 7/1	पत्थर में
हिरण्णखंडु	[(हिरण्ण)-(खंड) 1/1]	सोने का अंश
5. सुलहउ	(सुलहअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	स्वाभाविक
मलयायले	[(मलय)+(अयले)] [(मलय)-(अयल)[1] 7/1]	मलय पर्वत से
सुरहिवाउ	[(सुरहि) वि-(वाउ) 6/1]	सुगन्धयुक्त वायु का
सुलहउ	(सुलहअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	स्वाभाविक
गयणंगणे	(गयणंगण) 7/1	व्यापक आकाश में
उडुणिहाउ	[(उडु)-(णिहाअ) 1/1]	तारों का समूह
6. सुलहउ	(सुलहअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	आसान
पहुपेसणे	[(पहु)-(पेसण) 7/1]	स्वामी का प्रयोजन
कए	(कअ) भूकृ 7/1 अनि	पूर्ण किया गया होने पर
पसाउ	(पसाअ) 1/1	पुरस्कार
सुलहउ	(सुलहअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	स्वाभाविक
ईसासे	(ईसा-स) 7/1 वि	ईर्ष्यायुक्त
जणे	(जण) 7/1	व्यक्ति में
कसाउ	(कसाअ) 1/1	कषाय
7. सुलहउ	(सुलहअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	आसानी से प्राप्त (है)
रविकंतमणिहिँ→ रविकंतमणिहि	(रविकंतमणि) 3/2	सूर्यकान्त मणियों द्वारा
हुयासु	(हुयास) 1/1	अग्नि
सुलहउ	(सुलहअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	सुलभ
वरलक्खणे	[(वर)-(लक्खण) 7/1]	उत्तम व्याकरण शास्त्र में
पयसमासु	[(पय)-(समास) 1/1]	पदों में समास
8. सुलहउ	(सुलहअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	सुलभ

1. कभी-कभी पंचमी विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-136)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगमे	(आगम) 7/1	आगम में
धम्मोवएसु	[(धम्म)+(उवएसु)][धम्म)-(उवएस) 1/1]	मूल्यों (धर्म) के उपदेश
सुलहउ	(सुलहअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	सुलभ
सुकईयणे	[(सुकई)[1]-(यण) 7/1]	सुकविजन में
मइविसेसु	[(मइ)-(विसेस) 1/1]	बुद्धि की श्रेष्ठता

9.	सुलहउ	(सुलहअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	सुलभ
	मणुयत्तणे	(मणुयत्तण) 7/1	मनुष्य अवस्था में
	पिउ	(पिअ) 1/1 वि	प्रिय
	कलत्तु	(कलत्त) 1/1	पत्नी
	पर	अव्यय	किन्तु
	एक्क	(एक्क) 1/1 वि	एक
	जि	अव्यय	ही
	दुल्लहु	(दुल्लह) 1/1 वि	दुर्लभ
	अइपवित्तु	(अइपवित्त) 1/1 वि	अतिपवित्र
10.	जिणसासणे	[(जिण)-(सासण) 7/1]	जिन शासन में
	जं	(ज) 2/1 स	जिसको
	ण	अव्यय	नहीं
	कयावि	अव्यय	कभी (भी)
	पत्तु	(पत्त) भूकृ 1/1 अनि	प्राप्त किया
	किह	अव्यय	कैसे
	णासमि	(णास) व 1/1 सक	बर्बाद करूँ
	तं	(त) 2/1 सवि	उस (को)
	चारित्तवित्तु	[(चारित्त)-(वित्त) 2/1]	चारित्ररूपी धन को
11.	एम	अव्यय	इस प्रकार
	वियप्पिवि	(वियप्प+इवि) संकृ	विचार करके
	जाम	अव्यय	जब
	थिउ	(थिअ) भूकृ 1/1 अनि	हुआ
	अविओलचित्तु	(अविओलचित्त) 1/1 वि	शान्त चित्तवाला
	सुहदंसणु	[(सुह) वि-(दंसण) 1/1]	मनोहर, दर्शन
	अभयादेवि	(अभयादेवि) 1/1	अभयादेवी
	विलक्ख	(विलक्ख) 1/1 वि	लज्जित

1. समास के कारण दीर्घ हुआ है (हे. प्रा. व्या. 1-4)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुय	(हु) भूकृ 1/1	हुई
ता	(ता) 1/1 सवि	वह
णियमणे	[(णिय) वि –(मण) 7/1]	निज मन में
चिंतइ	(चिंत) व 3/1 सक	विचार करती है (करने लगी)
पुणु-पुणु	अव्यय	बार-बार

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

पाठ–11

सुदंसणचरिउ

सन्धि–3

3.1

9.	सुतरंगहे	(सुतरंग→(स्त्री) सुतरंगा) 5/1 वि	मनोहर तरंगवाली
	गंगहे	(गंगा) 5/1	गंगा नदी से
	गोउ	(गोअ) 1/1	गोप
	फिर	अव्यय	पादपूरक
	जाव	अव्यय	जब तक
	जम्मि	(जम्म) 7/1	पुनर्जन्म में
	णउ	अव्यय	नहीं
	गच्छइ	(गच्छ) व 3/1 सक	जाता है (गया)
10.	ता	अव्यय	तब
	सुहमइ	(सुहमइ) 1/1 वि	शुभमति
	जिणमइ	(जिणमइ) 1/1	जिनमति ने
	सयणयले	[(सयण)–(यल) 7/1]	बिछौनों पर
	सुत्तिय	(सुत्त→सुत्तिय) भूकृ 1/1	सूत से बने हुए
	सिविणय	(सिविणय) 2/2	स्वप्नों को
	पेच्छइ	(पेच्छ) व 3/1 सक	देखती है (देखा)
11	सुरचित्तहरो	[(सुर)–(चित)–(हर) 1/1 वि]	देवताओं के चित्त को हरण करनेवाला
	सिहरी	(सिहरि) 1/1	पर्वत
	पवरो	(पवर) 1/1 वि	श्रेष्ठ
	णवकप्पयरू	[(णव)–(कप्पयरु) 1/1]	नया कल्पवृक्ष
	अमरिंदघरू	[(अमरिंद)–(घर) 1/1]	इन्द्र का घर (स्वर्ग)
2.	पवरंबुणिही	[(पवर)+(अंबुणिहि)] [(पवर) वि–(अंबुणिहि) 1/1]	उत्तम-समुद्र
	पजलंतु	(पजल→पजलन्त) वकृ 1/1	चमकती हुई
	सिही	(सिहि) 1/1	अग्नि
	सुविराइयओ	(सु–विराअ→सुविराइय→सुविराइयअ) भूकृ 1/1 'अ' स्वार्थिक	अत्यन्त सुशोभित
	अवलोइयओ	(अवलोअ→अवलोइय→अवलोइयअ) भूकृ 1/1 'अ' स्वार्थिक	देखा गया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

13. पसरम्मि	(पसर) 7/1	प्रभात में
सई	(सइ) 1/1 वि	सती
वरसुद्धमई	[(वर) वि-(सुद्धमइ) 1/1 वि]	उत्तम शुद्धमति
गय	(गय→गया) भूकृ 1/1 अनि	गई
सिग्घु	अव्यय	शीघ्र
तहिं	अव्यय	वहाँ
थिउ	(थिअ) भूकृ 1/1 अनि	बैठा
कंतु	(कंत) 1/1	पति
जहिं	अव्यय	जहाँ
14. णिसि	(णिस) 7/1	रात में
लक्खियउ	(लक्ख→लक्खिय→लक्खियअ) भूकृ 1/1 'अ' स्वा.	देखे गये
तसु	(त)[1] 6/1 स	उसके द्वारा
अक्खियउ	(अक्ख→अक्खिय→अक्खियअ) भूकृ 1/1 'अ' स्वा.	कहे गये
पभणेइ	(पभण) व 3/1 सक	कहता है (कहा)
पई	(पइ) 1/1	पति
पिय	(पिय→पिया) 8/1	हे प्रिया
हंसगई	[[(हंस)-(गइ) 8/1] वि]	हंस की चालवाली
15. लइ	अव्यय	अच्छा, ठीक
जाहुं	(जा) व 1/2 सक	जाते हैं (चलते हैं)
वरं	अव्यय	श्रेष्ठ
जिणचेइहरं	[(जिण)-(चेइहर) 2/1]	जिन-चैत्यघर
अविलंबझुणी	[[(अविलंब) वि-(झुणि) 1/2] वि]	बिना विलम्ब के (सहज) ध्वनि (शब्द)
16. भयवंतमुणी	[(भयवंत) वि-(मुणि) 1/2]	पूज्य मुनि
पयडंति	(पयड) व 3/2 सक	प्रकट करते हैं (कर देंगे)
अलं	अव्यय	पूर्णरूप से
सिविणस्स	(सिविण) 6/1	स्वप्न (समूह) का
हलं	(हल) 2/1	हल
चलहारमणी	[[(चल)-(हार)-(मणि) 1/2] वि]	हार की मणियाँ लहरानेवाली
चलिया	(चल→चलिय→(स्त्री) चलिया) भूकृ 1/1	चल पड़ी
रमणी	(रमणी) 1/1	रमणी
17. भणिओ	(भण) भूकृ 1/1	कहा गया
रमणी	(रमणी) 1/1	रमणी

1. कभी-कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-134)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इय	(इया) 1/1 सवि	यह
छंदु	(छंद) 1/1	छंद
मुणी	(मुणि)[1] 6/1	मुनि के द्वारा
18. गय	(गय) भूकृ 1/2 अनि	गये
जिणहरु	[(जिण)-(हर) 2/1]	जिन-मन्दिर
मुणिवरु	(मुणिवर) 2/1	मुनिवर को
परिणवेवि	(परिणव+एवि) संकृ	प्रणाम करके
जिणदासिए	(जिणदासी) 3/1	जिनदासी के द्वारा
णिसि	(णिस) 7/1	रात्रि में
दिट्ठउ	(दिट्ठअ) भूकृ 1/1 अनि	देखा गया
गिरिवरु	(गिरिवर) 1/1	श्रेष्ठ पर्वत
तरु	(तरु) 1/1	कल्पवृक्ष
सुरहरु	(सुरहर) 1/1	इन्द्र का निवास
जलहि	(जलहि) 1/1	समुद्र
सिहि	(सिहि) 1/1	अग्नि
इय	अव्यय	और
सिविणंतरु	[(सिविण)+(अन्तरु)] [(सिविण)-(अन्तर) 1/1]	स्वप्न के भीतर
सिट्ठउ	(सिट्ठअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	कहा गया

3.2

1. किं	(क) 1/1 सवि	क्या
फलु	(फल) 1/1	फल
इय	(इय) 6/1 स	इस
सिविणयदंसणेण	[(सिविणय) 'य' स्वार्थिक -(दंसण) 3/1]	स्वप्न (-समूह) के दर्शन से
होसइ	(हो) भवि 3/1 अक	होगा
परमेसर	(परमेसर) 8/1	हे परमेश्वर
कहि	(कह) विधि 2/1 सक	कहें
खणेण	(खण) 3/1 क्रिविअ	तुरन्त
2. इय	(इय) 2/1 स	इसको
णिसुणिवि	(णिसुण+इवि) संकृ	सुनकर
णवजलहरसरेण	[[(णव) वि-(जलहर)-(सर) 3/1] वि]	नये मेघ के समान (गंभीर) स्वरवाले
सुणि	(सुण) विधि 2/1 सक	सुनो

1. कभी-कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-134)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संदरि	(सुंदरी) 8/1	हे उत्तम स्त्री
पभणिउ	(पभण) भूकृ 1/1	कहा गया
मुणिवरेण	(मुणिवर) 3/1	मुनिवर के द्वारा
3. उत्तुंगें	(उत्तुंग) 3/1 वि	ऊँचे
भरभारियधरेण	[(भर)-(भारिय) वि-(धर) 3/1 वि]	भारी भार धारण करनेवाले
होसइ	(हो) भवि 3/1 अक	होगा
सुधीरु	(सुधीर) 1/1 वि	अत्यधिक धैर्यवान
सुउ	(सुअ) 1/1	पुत्र
गिरिवरेण	(गिरिवर) 3/1	गिरिवर (पर्वत) से
4. कुसुमरयसुरहिकयमहुअरेण	[(कुसुमरय)-(सुरहि)-(कय) भूकृ अनि - (महुअर) 3/1]	मकरन्द (फूलों की रज) को सुगन्ध से आकर्षित किये गये भंवर सहित
चाइउ	(चाइअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	दानी
लच्छीहरु	[(लच्छी)-(हर) 1/1 वि]	लक्ष्मीवान
तरुवरेण	(तरुवर) 3/1	तरुवर से
5. सुररमणीकीलामणहरेण	[(सुर)-(रमणी)-(कीला)-(मणहर) 3/1 वि]	देवताओं की रमणियों की क्रीड़ा से सुन्दर
सुरवंदणीउ	[(सुर)-(वंदणीअ) 1/1 वि]	देवताओं द्वारा वंदनीय
वरसुरहरेण	[(वर) वि -(सुर)-(हर) 3/1]	इन्द्र के घर से
6. जललहरीचुंबियअंबरेण	[[(जल)-(लहरी)-(चुंबिय) भूकृ -(अंबर) 3/1] वि]	जल-तरंगें आकाश से छू ली गईं
गुणगणगहीरु	[(गुण)-(गण)-(गहीर) 1/1]	गुणों का समूह (तथा) गंभीर
रयणायरेण	(रयणायर) 3/1	समुद्र से
7. अइणिविडजडत्तविणासणेण	[(अइ) वि-(णिविड) वि -(जडत्त) वि - (विणासण) 3/1 वि]	अति घने जड़त्व का विनाश करनेवाली
कलिमलु	(कलिमल) 2/1	पाप (रूपी) मल को
णिड्डहइ	(णिड्डह) व 3/1 सक	जला देता है (देगा)
हुआसणेण	(हुआसण) 3/1	अग्नि से
8. सुंदरु	(सुंदर) 1/1 वि	सुन्दर
मणहरु	(मणहर) 1/1 वि	मनोहर
गुणमणिणिकेउ	[(गुण)-(मणि)-(णिकेअ) 1/1]	गुणरूपी मणियों का घर
जुवईयणवल्लहु	[(जुवई)-(यण)-(वल्लह) 1/1 वि]	युवती वर्ग का प्रिय
मयरकेउ	(मयरकेउ) 1/1	प्रेम का देवता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

9. णियकुलमाणससररायहंसु	[(णिय) वि-(कुल)-(माणससर)-(रायहंस) 1/1]	अपने कुलरूपी मानसरोवर का राजहंस
णिम्मच्छरु	(णिम्मच्छर) 1/1 वि	ईर्ष्यारहित
बुहयणलद्धसंसु	[[(बुह)-(यण)-(लद्ध) भूकृ अनि - (संसा→संस) 1/1] वि]	ज्ञानीवर्ग की प्रशंसा प्राप्त कर ली गई
10. उवसग्गु	(उवसग्ग) 2/1	उपसर्ग
सहेवि	(सह+एवि) संकृ	सहन करके
हुवेवि	(हुव+एवि) संकृ	होकर
साहु	(साहु) 1/1	साधु
पावेसइ	(पाव) भवि 3/1 सक	प्राप्त करेगा
झाणे	(झाण) 3/1	ध्यान के द्वारा
मोक्खलाहु	[(मोक्ख)-(लाह) 2/1]	मोक्ष के लाभ को
11. जिणु	(जिण) 2/1	जिनेन्द्र को
मुणि	(मुणि) 2/1	मुनिवर को
णवेवि	(णव+एवि) संकृ	प्रणाम करके
हरिसियमणाइँ	[[(हरिसिय) भूकृ-(मण) 1/2] वि]	हर्षित मनवाले
णियगेहु	[(णिय) वि-(गेह) 2/1]	निज घर को
गयइँ	(गय) भूकृ 1/2 अनि	चले गये
विण्णि	(वि) 1/2 वि	दोनों
वि	अव्यय	ही
जणाइँ	(जण) 1/2	मनुष्य
12. गोवउ	(गोवअ) 1/1 'अ' स्वार्थिक	गोप
वि	अव्यय	भी
णियाणें	(णियाण) 3/1	निदानसहित
तहिँ	अव्यय	वहाँ
मरेवि	(मर+एवि) संकृ	मरकर
थिउ	(थिअ) भूकृ 1/1 अनि	रहा
वणिपियउयरए	[(वणि)-(पिया→पिय)-(उयरअ) 7/1 'अ' स्वा.]	वणिक की पत्नी के उदर में
अवयरेवि	(अवयर+एवि) संकृ	आकर
13. तहिँ	अव्यय	वहाँ
गब्भए	(गब्भअ) 7/1 'अ' स्वार्थिक	गर्भ में
अब्भए	(अब्भअ) 7/1 'अ' स्वार्थिक	आकाश में
णाइँ	अव्यय	की तरह
रवि	(रवि) 1/1	सूर्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कमलिणिदले	[(कमलिणि)-(दल) 7/1]	कमलिनी के पत्ते पर
णावइ	अव्यय	की तरह
जलु	(जल) 1/1	जल
सिप्पिउडए	[(सिप्पि)-(उडअ) 7/1 'अ' स्वार्थिक]	सिप्पिदल में
णिविडए	(णिविडअ) 7/1 वि 'अ' स्वार्थिक	सघन
ठिउ	(ठिअ) भूकृ 1/1 अनि	स्थित
सहइ	(सह) व 3/1 अक	शोभता है (शोभायमान हुआ)
णं	अव्यय	की तरह
णितुल्लु	(णितुल्ल) 1/1 वि	असाधारण
मुत्ताहलु	(मुत्ताहल) 1/1	मोती

3.5

1. तेण	(त) 3/1 सवि	उस
पुत्तेण	(पुत्त) 3/1	पुत्र से
जणु	(जण) 1/1	मनुष्य वर्ग
तुट्ठु	(तुट्ठ) भूकृ 1/1 अनि	सन्तुष्ट हुआ
खे	(ख) 7/1	आकाश में
महंतेहिं	(महंत) 3/2 वि	घने
मेहेहिं	(मेह) 3/2	बादलों द्वारा
जलु	(जल) 1/1	जल
वुट्ठु	(वुट्ठ) भूकृ 1/1 अनि	बरसाया गया
2. दुट्ठपाविट्ठपोरत्थगणु	[(दुट्ठ) वि-(पाविट्ठ) वि-(पोरत्थ) वि-(गण) 1/1]	दुष्ट, अत्यन्त पापी, ईर्ष्यालु वर्ग (समूह)
तट्ठु	(तट्ठ) भूकृ 1/1 अनि	डर गया
णंदि	(णंदि) 1/1	हर्ष
आणंदि	(आणंद→(स्त्री) आणंदी) 1/1	आनन्द
देवेहिं	(देव) 3/2	देवताओं द्वारा
णहे	(णह) 7/1	आकाश में
घुट्ठु	(घुट्ठ) भूकृ 1/1 अनि	घोषित किया गया
3. दुंदुहीघोसु	[(दुंदुही)-(घोस) 1/1]	दुंदुभी-घोष
कयतोसु	[[(कय) भूकृ अनि -(तोस) 1/1] वि]	दिया गया, (किया गया) सन्तोष
हुउ	(हुअ) भूकृ 1/1	उत्पन्न हुआ
दिव्वु	(दिव्व) 1/1 वि	दिव्य
फुल्ल	(फुल्ल) 2/2	फूलों को (फूल)
पप्फुल्ल	(पप्फुल्ल) भूकृ 2/2 अनि	खिले हुए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	मेल्लेइ	(मेल्ल) व 3/1 सक	छोड़ता है (छोड़ने लगा)
	वणु	(वण) 1/1	वन
	सव्वु	(सव्व) 1/1 सवि	समस्त
4.	मंदु	(मंद) 1/1 वि	मन्द
	आणंदयारी	(आणंदयारी) 1/1 वि	आनन्दकारी
	हुओ	(हुअ) भूकृ 1/1	हुआ (चला)
	वाउ	(वाअ) 1/1	पवन
	वावि[1]	(वावी) 7/2	बावड़ियों में
	कुवेसु	(कूव) 7/2	कुओं में
	अब्भहिउ	(अब्भहिअ) 1/1 वि	अत्यधिक
	जलु	(जल) 1/1	जल
	जाउ	(जा→जाअ) भूकृ 1/1	भरा (उत्पन्न हुआ)
5.	गोसमूहेहिं	[(गो)-(समूह) 3/2]	गो-समूहों द्वारा
	विक्खित्तु	(विक्खित्त) भूकृ 1/1 अनि	बिखेरा गया
	थणदुद्ध	[(थण)-(दुद्ध) 1/1]	थणों से दूध
	एंतजंतेहिं	[(एंत) वकृ-(जंत) वकृ 3/2]	आते-जाते हुए (के कारण)
	पहिएहिं	(पहिअ) 3/2 वि	पथिकों के कारण
	पहु	(पह) 1/1	मार्ग
	रुद्धु	(रुद्ध) भूकृ 1/1 अनि	रुक गया
6.	तो	अव्यय	तब
	दिणे	(दिण) 7/1	दिन पर
	छट्ठि	(छट्ठ) 7/1 वि	छठे
	उक्किट्ठकमसेण	[(उक्किट्ठ) भूकृ अनि -(कमस) 3/1]	उत्कृष्टरूप से
	दाविया	(दाव→दाविय) भूकृ 1/1	दिखलाया
	छट्ठिया	(छट्ठिय[2]→छट्ठिया) 1/1 'य' स्वार्थिक	जन्म के पश्चात किया गया उत्सव
	ज्झत्ति	अव्यय	झटपट
	वइसेण	(वइस) 3/1	वणिक (वैश्य) के द्वारा
7.	अट्ठ	(अट्ठ) 1/2 वि	आठ
	दो	(दो) 1/2 वि	दो
	दिवह	(दिवह) 1/1	दिन

1. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति में शून्य प्रत्यय का प्रयोग पाया जाता है, (श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 147)।
2. छट्ठी→छट्ठि (स्त्री)=जन्म के पश्चात किया जानेवाला उत्सव।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	वोलीण	(वोलीण) 1/1 वि	व्यतीत
	छुडु	अव्यय	शीघ्र
	जाय	(जा) भूकृ 1/1	हुए
	ताम	अव्यय	तब
	जा	अव्यय	जब
	णाम	अव्यय	नामक
	जिणयासि	(जिणयासी) 1/1	जिणदासी
	सणुराय	[(स) वि-(अणुराय) 1/1]	अनुराग-सहित
8.	बालु	(बाल) 2/1	बालक को
	सोमालु	(सोमाल) 2/1 वि	सुकुमार
	देविंदसमदेहु	[[(देविंद)-(सम)-(देह) 2/1] वि]	इन्द्र के समान देहवाले
	लेवि	(ले+एवि) संकृ	लेकर
	भत्तीए	(भत्ति) 3/1	भक्तिपूर्वक
	जाएवि	(जा+एवि) संकृ	जाकर
	जिणगेहु	[(जिण)-(गेह) 2/1]	जिनमन्दिर
9.	तीयए	(ता) 3/1 स	उसके द्वारा
	पेच्छियउ	(पेच्छ→पेच्छिय→पेच्छियअ) भूकृ 1/1 'अ' स्वा.	देखे गये
	पुच्छियउ	(पुच्छ→पुच्छिय→पुच्छियअ) भूकृ 1/1 'अ' स्वा.	पूछे गये
	मुणिचन्दु	(मुणिचन्द) 1/1	मुनिचन्द
	मत्तमायंगु	(मत्तमायंग) 1/1	मत्तमात्तंग
	णामेण	(णाम) 3/1	नाम से
	इय	(इय) 1/1 सवि	यह
	छंदु	(छन्द) 1/1	छंद
10.	मंदरु	(मंदर) 1/1	मेरुपर्वत
	जिह	अव्यय	जिस प्रकार
	थिरु	(थिर) 1/1 वि	स्थिर
	तिह	अव्यय	उसी प्रकार
	बुहयणहिं	(बुहयण) 3/2	ज्ञानियों द्वारा
	कुंभरासि	(कुंभरासि) 1/1	कुम्भराशि
	पभणिज्जइ	(पभण) व कर्म 3/1 सक	कही जाती है
	महु	(अम्ह) 6/1 स	मेरा
	तणउ	(तणअ) 2/1	पुत्र
	तणउ	अव्यय	सम्बन्धार्थक परसर्ग
	एरिसु	(एरिस) 2/1 वि	ऐसा
	मुणिवि	(मुण+इवि) संकृ	जानकर
	मुणिवर	(मुणिवर) 8/1	हे मुनिवर
	णामु	(णाम) 1/1	नाम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	रइज्जइ	(रअ) व कर्म 3/1 सक	रचा जाता है (रचा जाए)

3.6

1.	तं	(त) 2/1 स	उसको
	सुणिऊण	(सुण) संकृ (प्रा.)	सुनकर
	पणट्ठरईसो	[[(पणट्ठ) भूकृ अनि –(रइ+ईस) 1/1] वि]	(जिसके द्वारा) काम नष्ट कर दिया गया है (वे)
	मेहणिघोसु	[[(मेह)–(णिघोस) 1/1] वि]	मेघ के समान स्वरवाले
	भणेइ	(भण) व 3/1 सक	कहता है (बोले)
	जईसो	[(जइ)+(ईस)] [[(जइ)–(ईस) 1/1]वि]	विशिष्ट मुनि
2.	दिट्ठु	(दिट्ठ) भूकृ 1/1 अनि	देखा गया
	तए	(तुम्ह) 3/1 स	तुम्हारे द्वारा
	सिविणंतरे	[(सिविण)+(अंतरे)] [(सिविण)–(अन्तर) 7/1]	स्वप्न के अन्दर
	सारो	(सार) 1/1 वि	श्रेष्ठ
	पुत्तिए	(पुत्ति) 8/1, ए=अव्यय	पुत्री, हे
	तुंगु	(तुंग) 1/1 वि	ऊँचा
	सुदंसणमेरो	[(सुदंसण)–(मेर) 1/1]	सुन्दर पर्वत
3.	किज्जउ	(कि) विधि कर्म 3/1 सक	किया जाए (रखा जाय)
	तेण	अव्यय	इसलिए
	सुदंसणु	(सुदंसण) 1/1	सुदर्शन
	णामो	(णाम) 1/1	नाम
	सज्जणकामिणिसोत्तहिरामो	[(सज्जण)+(कामिणि)+(सोत्त)+(अहिरामो)] [(सज्जण)–(कामिणि)–(सोत्त)–(अहिराम) 1/1 वि]	सज्जन और कामिनियों के कानों के लिए मनोहर
4.	तो	अव्यय	तब
	जिणयासें→जिणयासि	(जिणयासी) 1/1	जिनदासी
	णविवि	(णव+इवि) संकृ	प्रणाम करके
	जईसं	[(जइ)+(ईस)] [(जइ)–(ईस) 2/1 वि]	विशिष्ट मुनि को
	चित्ते	(चित्त) 7/1	मन में
	पहिट्ठ	(पहिट्ठा→पहिट्ठ) भूकृ 1/1 अनि	आनन्दित हुई
	गया	(गय→गया) भूकृ 1/1 अनि	गयी
	सणिवासं	(सणिवास) 2/1	स्वनिवास को
5.	सोहणमासे	[(सोहण) वि–(मास) 7/1]	शुभ-मास में
	दिणे	(दिण) 7/1	दिन में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छुडु	अव्यय	शीघ्र
दित्तं	(दित्तं) भूकृ 1/1 अनि	दिव्य (प्रकाशमय)
बद्धउ	(बद्धअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	बांधा गया
पालणयं	(पालणय) 1/1 'य' स्वार्थिक	पालना
सुविचित्तं	(सुविचित्त) 1/1 वि	अत्यन्त सुन्दर
6. देवमहीहरि	[(देव)-(महीहर) 7/1]	देव-पर्वत (सुमेरु) पर
णं	अव्यय	जैसे
सुरवच्छो	[(सुर)-(वच्छ) 1/1]	देव-बालक
वड्ढइ	(वड्ढ) व 3/1 अक	बढ़ता है (बढ़ने लगा)
तत्थ	अव्यय	वहाँ
परिट्ठिउ	(परिट्ठिअ) भूकृ 1/1 अनि	रहा हुआ (स्थित)
वच्छो	(वच्छ) 1/1	बालक
7. वड्ढइ	(वड्ढ) व 3/1 अक	बढ़ता है
णं	अव्यय	जैसे
वयपालणे	[(वय)-(पालण)[1] 3/1]	व्रत पालन से
धम्मो	(धम्म) 1/1	धर्म
वड्ढइ	(वड्ढ) व 3/1 अक	बढ़ता है
णं	अव्यय	जैसे
पियलोयणे	[(पिय) वि-(लोयण)[1] 3/1]	स्नेही के दर्शन से
पेम्मो	(पेम्म) 1/1	प्रेम
8. वड्ढइ	(वड्ढ) व 3/1 अक	बढ़ता है
णं	अव्यय	जैसे
णवपाउसि	[(णव) वि-(पाउस) 7/1]	नई वर्षा ऋतु में
कंदो	(कंद) 1/1	बादल
एमु	अव्यय	इस प्रकार
पयासिउ	(पयास) भूकृ 1/1	व्यक्त किया गया
दोहयछंदो	[(दोहय)-(छंद) 1/1]	दोधक छन्द
9. जगतमहरु	[(जग)-(तमहर) 1/1 वि]	जग के अन्धकार को दूर करनेवाला
ससहरु	(ससहर) 1/1	चन्द्रमा
मयरहरु	(मयरहर) 1/1	समुद्र
जिह	अव्यय	जिस प्रकार
वड्ढंतउ	(वड्ढ→वड्ढंत→वड्ढंतअ) वकृ 1/1 'अ' स्वा.	बढ़ता हुआ

1. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 144।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावइ	(भाव) व 3/1 अक	अच्छा लगता है
मणवल्लहु	[(मण)-(वल्लह) 1/1 वि]	मन को अच्छा लगनेवाला
दुल्लहु	(दुल्लह) 1/1	दुर्लभ
सज्जणहँ	(सज्जण) 6/2	सज्जनों के
पुरएवहो	(पुरएव) 6/1	पुरुदेव
सुउ	(सुअ) 1/1	पुत्र
णावइ	अव्यय	के समान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ–12

करकंडचरिउ

सन्धि–2

2.16

1.	पुणु	अव्यय	इसके विपरीत
	उच्चकहाणी	[(उच्च) वि–(कहाणी) 2/1]	उच्च की कहानी
	णिसुणि	(णिसुण) विधि 2/1 सक	सुन
	पुत्त	(पुत्त) 8/1	हे पुत्र
	संपज्जइ	(संपज्जइ) व कर्म 3/1 सक अनि	प्राप्त की जाती है
	संपइ	(संपइ) 1/1	संपत्ति
	जें	(ज) 3/1 स	जिससे
	विचित्त	(विचित्त) 1/1 वि	नाना प्रकार की
2.	परिकलिवि	(परिकल) संकृ	समझकर
	संगु	(संग) 2/1	संगति को
	णीचहो	(णीच) 6/1 वि	नीच (व्यक्ति) की
	हिएण	(हिअ) 3/1	हृदय से
	उच्चेण	(उच्च) 3/1 वि	उच्च के (साथ)
	समउ	अव्यय	साथ
	किउ	(किअ) भूकृ 1/1 अनि	किया गया
	संगु	(संग) 1/1	संग
	तेण	(त) 3/1 स	उसके द्वारा
3.	वाणारसिणयरि	[(वाणारसी→वाणारसि)[1]–(णयर) 7/1]	वाराणसी नगर में
	मणोहिरामु	(मणोहिराम) 1/1 वि	मन को प्रसन्न करनेवाला
	अरविंदु	(अरविंद) 1/1	अरविंद
	णराहिउ	(णराहिअ) 1/1	राजा
	अत्थि	(अस) व 3/1 अक	है (था)
	णामु	अव्यय	नामक
4.	संतोसु	(संतोस) 2/1	प्रसन्नता को
	वहंतउ	(वह→वहंत→वहंतअ) वकृ 1/1 'अ' स्वा.	धारण करता हुआ

---

1. समास में ह्रस्व का दीर्घ, दीर्घ का ह्रस्व हो जाता है (हे.प्रा.व्या. 1–4)।

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

णियमणम्मि	[(णिय) वि-(मण) 7/1]	अपने मन में
पारद्धिहे[1]	(पारद्धि) 4/1	शिकार के लिए
गउ	(गअ) भूकृ 1/1 अनि	गया
एक्कहिँ	(एक्क) 7/1 वि	एक
दिणम्मि	(दिण) 7/1	दिन
5 जलरहियहिँ	[(जल)-(रह→रहिय) भूकृ 7/1]	जलरहित
अडविहिँ	(अडवी) 7/1	जंगल में
सो	(त) 1/1 सवि	वह
पडिउ	(पड→पडिअ) भूकृ 1/1	फँस गया
तहिँ	अव्यय	वहां पर
तण्हएँ	(तण्हाअ) 3/1 'अ' स्वार्थिक	प्यास के द्वारा, से
भुक्खएँ	(भुक्खाअ) 3/1 'अ' स्वार्थिक	भूख के द्वारा, से
विण्णडिउ	(विण्णड→विण्णडिअ) भूकृ 1/1	व्याकुल किया गया
6. अमिएण	(अमिअ) 3/1	अमृत से
विणिम्मिय	(वि-णिम्म→विणिम्मिय) भूकृ 1/2	बने हुए
सुहयराइँ	(सुहयर) 1/2 वि	सुखकारी
तहो	(त) 4/1 स	उसके लिए (उसको)
दिण्णइँ	(दिण्णइँ) भूकृ 1/2 अनि	दिए गए
वणिएण	(वणि) 3/1 (प्रा.)	वणिक के द्वारा
फलइँ	(फल) 1/2	फल
ताइँ	(त) 1/2 सवि	वे
7. संतुट्ठउ	(संतुट्ठअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	प्रसन्न हुआ
तहो[2]	(त) 6/1 सवि	उस पर
वणिवरहो[2]	(वणिवर) 6/1	श्रेष्ठ वणिक पर
राउ	(राअ) 1/1	राजा
घरि[3]	(घर) 7/1	घर
जाइवि	(जा+इवि) संकृ	जाकर
तहो	(त) 4/1 सवि	उसके लिए (उसको)
दिण्णउ	(दिण्णअ) भूकृ 1/1 अनि	दिया गया
पसाउ	(पसाअ) 1/1	पुरस्कार
8. उवयारु	(उवयार) 1/1	उपकार

1. हे→हेँ, मात्रा के लिए अनुस्वार लगाया जाता है।
2. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-134)।
3. कभी-कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-135)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	महंतउ	(महंतअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	महान
	जाणएण	(जाणअ) 3/1 'अ' स्वार्थिक	समझनेवाला होने के कारण
	वणि	(वणि) 1/1	वणिक
	णिहियउ	(णिहियअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	रखा गया
	मंतिपयम्मि	[(मंति)-(पय) 7/1]	मन्त्री पद पर
	तेण	(त) 3/1 स	उसके द्वारा
9.	अणुराएं	(अणुराअ) 3/1 क्रिविअ	स्नेहपूर्वक
	बिण्णिवि	(बि) 1/2 वि	दोनों ही
	तहिँ	अव्यय	वहां पर
	वसहिँ	(वस) व 3/2 अक	रहते हैं (रहने लगे)
	दिणयरतेयकलायर	[(दिणयर)-(तेअ)-(कलायर) 1/1]	सूर्य, तेज में, चन्द्रमा
	गुणगणरयणहँ	[(गुण)-(गण)-(रयण) 6/2]	गुणसमूहरूपी रत्नों के
	सीलणिहि	[(सील)-(णिहि) 1/1]	शील के निधान
	गहिरिमाइँ[1]	(गहिरिम) 7/1	गम्भीरता में
	णं	अव्यय	के समान
	सायर	(सायर) 1/1	सागर

2.17

1.	ता	अव्यय	तब
	एक्कहिँ	(एक्क) 7/1 वि	एक
	दिणि	(दिण) 7/1	दिन
	मंतिवरेण	(मंतिवर) 3/1	मन्त्रीवर के द्वारा
	तहो	(त) 6/1 सवि	उस
	रायहो	(राय) 6/1	राजा के
	णंदणु	(णंदण) 2/1	पुत्र का (को)
	हरिवि	(हर+इवि) संकृ	हरण करके
	तेण	(त) 3/1 स	उसके द्वारा
2	आहरणइँ	(आहरण) 2/2	आभूषणों को
	लेविणु	(ले+एविणु) संकृ	लेकर
	दिहिकरासु[2]	(दिहिकर) 6/1 वि	सुखकारी
	गउ	(गअ) भूकृ 1/1 अनि	गया
	तुरिउ	अव्यय	शीघ्रता से
	विलासिणिमंदिरासु[2]	[(विलासिणि)-(मन्दिर) 6/1]	विलासिनी के घर को

1. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 146।
2. कभी-कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-134)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

3	गयमोल्लइँ	[[(गय) भूक्र अनि –(मोल्ल) 1/2] वि]	मूल्य चले गये
	जणणयणहँ	[(जण)–(णयण) 4/2]	मनुष्यों के नयनों के लिए
	पियाइँ	(पिय) 1/2 वि	प्रिय
	तहिँ	अव्यय	वहाँ
	वणिणा	(वणि) 3/1 (प्राकृत)	वणिक के द्वारा
	ताहे	(ता) 4/1 स	उसके लिए
	समप्पियाइँ	(समप्प→समप्पिय) भूक्र 1/2	प्रदान किए गए
4.	सरयागमससहरआणणीहे	[(सरय)+(आगम)+(ससहर)+(आणणीहे)] [[(सरय)–(आगम)–(ससहर)–(आणण→(स्त्री)आणणी)4/1] वि]	शरदऋतु में आनेवाले चन्द्रमा की तरह मुखवाली के लिए(को)
	पुणु	अव्यय	फिर
	कहियउ	(कह→कहिय→कहियअ) भूक्र 1/1 'अ' स्वार्थिक	कहा गया
	तेण	(त) 3/1 स	उस (वणिक) के द्वारा
	विलासिणीहे	(विलासिणि) 4/1	विलासिनी के लिए (को)
5.	मइँ	(अम्ह) 3/1 स	मेरे द्वारा
	मारिउ	(मार→मारिअ) भूक्र 1/1	मारा गया
	णंदणु	(णंदण) 1/1	पुत्र
	णरवईहिँ[1]	(णरवइ) 6/1	राजा का
	इउ	(इअ) 1/1 स	यह
	कहियउ	(कह→कहिय→कहियअ) भूक्र 1/1 'अ' स्वार्थिक	कही गई
	सयलु	(सयल) 1/1 वि	सारी ही
	थिररईहिँ[1]	[[(थिर) वि–(रइ) 4/1] वि]	स्थिर स्नेहवाली के लिए(को)
6.	तं	(त) 2/1 स	उसको
	सुणिवि	(सुण+इवि) संकृ	सुनकर
	ताइँ→ताएँ[2]	(ता) 3/1 स	उसके द्वारा
	पभणिउ	(पभण→पभणिअ) भूक्र 1/1	कहा गया
	सणेहु[3]	(स–णेह) 1/1 न.	सस्नेह
	मा	अव्यय	मत
	कासु	(क) 4/1 स	किसी के लिए
	वि	अव्यय	भी

1. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृ. 151 ।
2. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृ. 144 ।
3. नपु. 1/1 के शब्द कभी–कभी क्रिविअ की तरह प्रयुक्त होते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	पयडु	(पयड) 2/1	प्रकट
	करेहि	(कर) विधि 2/1 सक	करना
	एहु	(एत) 2/1 सवि	यह
7.	एत्तहिँ	अव्यय	यहां पर
	अलहंते	(अलह→अलहंत) वकृ 3/1	न पाते हुए होने के कारण
	सुउ	(सुअ) 2/1	पुत्र को
	णिवेण	(णिव) 3/1	राजा के द्वारा
	देवाविउ	(देव+आव=देवाव→देवाविअ) प्रे. भूकृ 1/1	आज्ञा करवायी गई
	डिंडिमु	(डिंडिम) 1/1	ढोल
	णयरे	(णयर) 7/1	नगर में
	तेण	(त) 3/1 स	उसके द्वारा
8	जो	(ज) 1/1 सवि	जो
	रायहो	(राय) 6/1	राजा के
	णंदणु	(णंदण) 2/1	पुत्र को
	कहइ	(कह) व 3/1 सक	कहता है (बतायेगा)
	को वि	(क) 1/1 वि	कोई भी
	सहुँ	अव्यय	साथ
	दविणइँ	(दविणअ) 3/1 'अ' स्वार्थिक	द्रव्य (सम्पत्ति)
	मेइणि	(मेइणी) 2/1	भूमि को
	लहइ	(लह) व 3/1 सक	पाता है (पायेगा)
	सो	(त) 1/1 सवि	वह
	वि	अव्यय	ही
9.	ता	अव्यय	तब
	केणवि	(क) 3/1 सवि	किसी (के द्वारा)
	धिट्ठें	(धिट्ठ) भूकृ 3/1अनि	ढीठ के द्वारा
	तुरियएण	क्रिविअ	शीघ्रता से
	णरणाहहो	(णरणाह) 6/1	राजा के
	अग्गइँ	अव्यय	आगे
	भणिउ	(भण→भणिअ) भूकृ 1/1	कहा गया
	उवलक्खिउ	(उवलक्ख) भूकृ 1/1	देखा गया
	तुह	(तुम्ह) 6/1 स	तुम्हारा
	सुउ	(सुअ) 1/1	पुत्र, सुत
	देव	(देव) 8/1	हे देव
	मइँ	(अम्ह) 3/1 स	मेरे द्वारा
	सो	(त) 1/1 सवि	वह
	णवलइँ	(णवलअ) 3/1 'अ' स्वार्थिक	नए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंतिएँ	(मंति) 3/1	मन्त्री के द्वारा
हणिउ	(हण) भूकृ 1/1	मार दिया गया

2.18

1.	तं	(त) 2/1 सवि	उस (को)
	वयणु	(वयण) 2/1	बात को
	सुणेविणु	(सुण+एविणु) संकृ	सुनकर
	सरलबाहु	(सरलबाहु) 1/1	सरलबाहु
	संतुट्ठउ	(संतुट्ठअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	प्रसन्न हुआ, सन्तुष्ट हुआ
	मंतिहे	(मंति) 5/1	मन्त्री से
	धरणिणाहु	[(धरणि)-(णाह) 1/1]	पृथ्वी का नाथ
2.	तिहिँ	(ति) 7/2 वि	तीन (में से)
	फलहिँ	(फल) 7/2	फलों में से
	मज्झे	अव्यय	में
	एक्कहो	(एक्क) 6/1 वि	एक (का)
	फलासु	(फल) 6/1	फल का
	णिरहरियउ	(णिरहर→णिरहरियअ) भूकृ 1/1 'अ' स्वार्थिक	चुका दिया गया
	रिणु	(रिण) 1/1	ऋण
	मइँ	(अम्ह) 3/1 स	मेरे द्वारा
	मइवरासु	(मइवर) 6/1	मन्त्रीवर के
3.	अवराह[1]	(अवर)[2] 6/2	अन्य (को)
	दोण्णि	(दो) 2/2 वि	दो को
	अज्ज	अव्यय	आज
	वि	अव्यय	ही
	खमीसु	[(खम+ईसु)] खम (खम) विधि 2/1 सक ईसु (ईस) 8/1	क्षमा कीजिए, हे नाथ
	खणि	(खण) 7/1	क्षण भर में
	हुयउ	(हु→हुय→हुयअ) भूकृ 1/1 'अ' स्वार्थिक	हुआ
	पसण्णउ	(पसण्णअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	प्रसन्न
	धरणीईसु	[(धरणि)-(ईस) 1/1]	पृथ्वी का मुखिया
4.	परियाणिवि	(परियाण+इवि) संकृ	जानकर
	मंतिएँ→मंतिइँ	(मंति) 3/1	मन्त्री के द्वारा

1. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृ. 152।
2. कभी-कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-134)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	रायणेहु	[(राय)-(णेह) 2/1]	राजा के स्नेह को
	णिवणंदणु	[(णिव)-(णंदण) 1/1]	राजा का पुत्र
	अप्पिउ	(अप्प→अप्पिअ) भूकृ 1/1	सौंप दिया गया
	दिव्वदेहु	[[(दिव्व)-(देह) 1/1] वि]	सुन्दर देहवाला
5.	अइ	अव्यय	हे (सम्बोधनार्थक)
	होहि	(हो) व 2/1 अक	हो
	णरेसर	(णरेसर) 8/1	(हे) नरेश्वर
	परममित्तु	[(परम) वि-(मित्त) 1/1]	परममित्र
	मइँ	(अम्ह) 3/1 स	मेरे द्वारा
	देव	(देव) 8/1	हे देव
	तुहारउ	(तुहारअ) 1/1 सवि	तुम्हारा
	कलिउ	(कल→कलिअ) भूकृ 1/1	पहचान लिया गया
	चित्तु	(चित्त) 1/1	चित्त
6.	वणिवयणु	[(वणि)-(वयण) 2/1]	वणिक के वचन को
	सुणेविणु	(सुण+एविणु) संकृ	सुनकर
	णरवरेण	(णरवर) 3/1	राजा के द्वारा
	अइपउरु	(अइपउर) 1/1 वि	खूब
	पसाउ	(पसाअ) 1/1	पुरस्कार
	पइण्णु	(पइण्ण) भूकृ 1/1 अनि	सार्वजनिक रूप से घोषित किया गया
	तेण	(त) 3/1 सवि	उस (के द्वारा)
7.	गुरुआण	(गुरुअ) 6/2 वि	अच्छों की
	संगु	(संग) 2/1	संगति को
	जो	(ज) 1/1 सवि	जो
	जणु	(जण) 1/1	मनुष्य
	वहेइ	(वह) व 3/1 सक	धारण करता है
	हियइच्छिय	[(हिय)-(इच्छ→इच्छिय→इच्छिया) भूकृ 2/1]	मन से चाही गई (को)
	संपइ	(संपइ) 2/1	सम्पत्ति को
	सो	(त) 1/1 सवि	वह
	लहेइ	(लह) व 3/1 सक	प्राप्त करता है
8.	एह	(एता) 1/1 सवि	यह
	उच्चकहाणी	[(उच्च) वि-(कहाणी) 1/1]	उच्च (पुरुष) की कहानी
	कहिय	(कह→कहिय→कहिया) भूकृ 1/1	कही गयी
	तुज्झु	(तुम्ह) 4/1 स	तेरे लिए
	गुणसारणि	[[(गुण)-(सारणि) 1/1] वि]	गुणों की परम्परावाली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुत्तय	(पुत्त) 8/1 'अ' स्वार्थिक	हे पुत्र
हियइँ	(हियअ) 7/1	हृदय में
बुज्झु	(बुज्झ) विधि 2/1 सक	समझ

9.	करकंडु	(करकंड) 1/1	करकंड
	जणाविउ	(जण+आवि=जणावि→जणाविअ) प्रे. भूकृ 1/1	सिखाया गया, समझाया गया
	खेयरइँ[1]	(खेयर) 7/1	खेचर के द्वारा
	हियबुद्धिएँ	[(हिय) वि-(बुद्धि) 3/1]	हितकारी बुद्धि से
	सयलउ	(सयल→(स्त्री) सयला) 1/2 वि	समस्त
	कलउ	(कला) 1/2	कलाएं
	इय	(इम→इअ→इय) 6/1 स	इसको
	णित्तिएँ	(णित्ति) 3/1	नीति से
	जो	(ज) 1/1 सवि	जो
	णरु	(णर) 1/1	मनुष्य
	ववहरइ	(ववहर) व 3/1 सक	व्यवहार करता है
	सो	(त) 1/1 सवि	वह
	भुंजइ	(भुंज) व 3/1 सक	उपभोग करता है
	णिच्छउ	क्रिविअ	अवश्य ही
	भूवलउ	(भू-वलअ) 2/1	भू-मण्डल को

1. कभी-कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-135)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ-13

धण्णकुमारचरिउ

सन्धि-3

3.16

1.	लउडि-खग्ग	[(लउडि)(स्त्री)-(खग्ग) 1/2]	लकड़ियाँ और तलवारें
	सव्वहिँ	(सव्व) 3/2 सवि	सभी के द्वारा
	करि	(कर) 7/1	हाथ में
	धारिय	(धार) भूकृ 1/2	रखी गईं
	भोगवइ	(भोगवई) 1/1	भोगवती
	चल्लिय	(चल्ल→चल्लिय→(स्त्री) चल्लिया) भूकृ 1/1	चल दी
	विणिवारिय	(विणिवार→विणिवारिय→(स्त्री) विणिवारिया) भूकृ 1/1	रोकी गई
2.	दूरहु	(दूर) 5/1 (क्रिविअ)	दूर से
	हुंति	(हु) व 3/2 अक	हैं
	तेण	(त) 3/1 स	उसके द्वारा
	णियच्छिय	(णियच्छ) भूकृ 1/2	देख लिए गए
	हक्क	(हक्का) 2/1	हांक
	दिंत	(दा→देंत→दिंत) वकृ 1/2	देते हुए
	आवंत	(आव) वकृ 1/2	आते हुए
	वि	अव्यय	भी
	पेच्छिय	(पेच्छ) भूकृ 1/2	देख लिए गए
3	एयहु	(एया) 5/2 सवि	इन से
	मारणत्थि	[(मारण)+(अत्थि)] [(मारण)-(अत्थि) 1/2 वि]	मारने के इच्छुक
	इह	अव्यय	यहां
	आवहिँ	(आव) व 3/2 सक	आते हैं (आये हैं)
	वच्छउलइँ	[(वच्छ)-(उल) 2/2]	बछड़ों के समूहों को
	णउ	अव्यय	नहीं
	कत्थवि	अव्यय	कहीं भी
	पावहिँ	(पाव) व 3/2 सक	पाते हैं (पाया)
4.	इय	(इय) 2/1 सवि	यह
	मणि	(मण) 7/1	मन में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंतिवि	(मंत + इवि) संकृ	विचारकर
पुणु	अव्यय	फिर
भयतट्ठउ	[(भय)-(तट्ठअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक]	भय से कांपा
पच्छउ	अव्यय	पीछे की ओर
वलिवि	(वल + इवि) संकृ	मुड़कर
णिएवि	(णिअ + एवि) संकृ	देखकर
वणि	(वण) 7/1	जंगल में
णट्ठउ	(णट्ठअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	छिप गया
5. ते	(त) 1/2 सवि	वे
बोल्लावहिँ	(बोल्ल + आव) प्रे. व 3/2 सक	बुलाते (थे)
भो	अव्यय	हे
गिहि[1]	(गिह) 7/1	घर में
आवहि	(आव) विधि 2/1 सक	आओ
एहि	(ए) विधि 2/1 सक	आओ
मा	अव्यय	मत
भयवसु	[(भय)-(वस) 1/1 वि]	भय के अधीन
धावहि	(धाव) विधि 2/1 सक	भागो
6. वच्छउलइँ	[(वच्छ)-(उल) 1/2]	बछड़ों के समूह
णियगेहि	[(णिय) वि-(गेह) 7/1]	निज घर में
पराणिय	(पराणिय) भूकृ 1/2 अनि	पहुँच गए
तुहु	(तुम्ह) 1/1 स	तू
इ	अव्यय	ही
थक्कु	(थक्क) विधि 2/1 अक	ठहरा
ण	अव्यय	नहीं
मइए	(मइ) 3/1	बुद्धि से
जाणिय	(जाण) भूकृ 1/1	समझा गया।
7. तुज्झु	(तुम्ह) 6/1 स	तुम्हारी
जणणि	(जणणि) 1/1	माता
तुअ → तुव	(तुम्ह) 6/1 स	तुम्हारे
दुक्खेँ	(दुक्ख) 3/1	दुःख द्वारा
सल्लिय	(सल्ल → सल्लिय → सल्लिया) भूकृ 1/1	दुःखी की गई है
मा	अव्यय	मत
वणि	(वण) 7/1	वन में
जाहि	(जा) विधि 2/1 सक	जा,

1. कभी-कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-135)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुइवि	(मुअ+इवि) संकृ	छोड़कर
एकल्लिय	[(एकल्ल)+(इय)] (एकल्ला) 1/1 वि इय=अव्यय	अकेली, यहां
8. तह वि	अव्यय	तो भी
ण	अव्यय	नहीं
सो	(त) 1/1 सवि	वह
णियत्तु	(णियत्त) भूकृ 1/1 अनि	लौटा
भयभीयउ	[(भय)-(भीयअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक]	भयभीत
मुणइ	(मुण) व 3/1 सक	समझता है (समझा)
पवंचु	(पवंच) 2/1	छल
सयलु	(सयल) 2/1 वि	सबको
इणु	(इम) 2/1 सवि	इस (को)
कीयउ	(कीयअ) भूकृ 2/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	किया हुआ
9. जाय	(जा→जाय→जाया) भूकृ 1/1	हुई
रयणि	(रयणी) स्त्री 1/1	रात्रि
ते	(त) 1/2 सवि	वे
सीह-भयाउर	[(सीह)+(भय)+(आउर)] [(सीह)-(भय)-(आउर) 1/2 वि]	सिंह के भय से पीड़ित
पल्लट्टिवि	(पल्लट्ट+इवि) संकृ	पलटकर
गय	(गय) भूकृ 1/2 अनि	गये
ते	(त) 1/2 सवि	वे
पुणु	अव्यय	फिर
णियघर	[(णिय) वि-(घर) 2/1]	अपने घर को
10. तासु	(त) 6/1 स	उसकी
जणणि	(जणणी) 1/1	माता
महदुक्खें	[(मह) वि-(दुक्ख) 3/1]	महादुःख के कारण
तत्ती	(तत्त→(स्त्री) तत्ती) भूकृ 1/1 अनि	दुःखी
हुय	(हु→हुय→हुया) भूकृ 1/1	हुई
णिरास	(णिरास→(स्त्री) णिरासा) 1/1 वि	निराश
खणि	(खण) 7/1	क्षण में
पगलियणेत्ती	[[(पगलिय) भूकृ-(णेत्त→(स्त्री) णेत्ती) 1/1] वि]	बहते हुए नेत्रवाली
11. हा-हा	अव्यय	हाय-हाय
किह	अव्यय	कैसे
सुव-दंसणु	[(सुव)-(दंसण) 1/1]	सुत का दर्शन
होसइ	(हो) भवि 3/1 अक	होगा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुट्ठ	(दुट्ठ) 6/1[1] वि	दुष्ट
विहिहिँ[2]	(विहि) 6/1[1]	किस्मत को
पुणु-पुणु	अव्यय	बार-बार
सा	(ता) 1/1 सवि	वह
कोसइ	(कोस) व 3/1 सक	कोसती है (कोसने लगी)
12. भाय-भाय	(भाअ) 8/1	हे भाई, हे भाई
हा	अव्यय	हाय
किम	अव्यय	कैसे
जीवेसमि	(जीव) भवि 1/1 अक	जीवूंगी
सुबाहु	(सुबाहु) 2/1 वि	सुन्दर भुजावाले
सुवत्तु	(सुवत्त) 2/1 वि	सुन्दर मुखवाले को
किम	अव्यय	कैसे
पेच्छेसमि	(पेच्छ) भवि 1/1 सक	देखूंगी
13. हा-हा	अव्यय	हाय-हाय
किं	अव्यय	क्यों
बंधव	(बंधव) 8/1	हे भाई
णिचिंतउ	(णिचिंतअ) 1/1 वि	निश्चिन्त
महु	(अम्ह) 6/1 स	मेरा
सुउ	(सुअ) 1/1	पुत्र
विसमावत्थहिँ	[(विसम)+(अवत्थहिँ)] [(विसम) वि-(अवत्था) 7/1]	कठिन (विषम) अवस्था में
पत्तउ	(पत्तअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	पड़ा हुआ
14. हउँ	(अम्ह) 1/1 स	मैं
तुव	(तुम्ह) 6/1 स	तुम्हारी
सरणि	(सरण) 7/1	शरण में
विएसे	(विएस) 7/1	विदेश में
पत्ती	(पत्त→(स्त्री) पत्ती) भूकृ 1/1 अनि	पड़ी हुई
करहि	(कर) विधि 2/1 सक	करो
गंपि[3]	(गम+एप्पि) संकृ	जाकर
महु	(अम्ह) 6/1 स	मेरे लिए

1. कभी-कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-134)।
2. षष्ठी एकवचन में 'हिँ' प्रत्यय भी होता है (श्रीवास्तव, पृष्ठ 151)।
3. गम् के साथ संबन्धक कृदन्त के प्रत्यय 'एप्पिणु' और 'एप्पि' जोड़ने पर 'ए' का विकल्प से लोप हो जाता है (गम→गमेप्पि→गंप्पि→गंपि) (हेम प्राकृत व्याकरण 4-442)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुत्तहु	(पुत्त) 5/1	पुत्र से
तत्ती	(तत्ति) 1/1	संतोष
15. महु	(अम्ह) 6/1 स	मेरा
मणु	(मण) 1/1	मन
अच्छइ	(अच्छ) व 3/1 अक	है
बहुदुक्खायरु	[(बहु) + (दुक्ख) + (आयरु)] [(बहु) वि -(दुक्ख)-(आयर) 1/1]	बहुत दुःखों की खान
इय	अव्यय	इस प्रकार
कंदंति	(कंद→कंदंत→कंदंती) वकृ 2/1	रोती हुई को
णिवारइ	(णिवार) व 3/1 सक	रोकता है
भायरु	(भायर) 1/1	भाई
16. अच्छहि	(अच्छ) विधि 2/1 अक	ठहरो
कलुणु	(कलुण) 1/1 वि	करुणा-जनक
म	अव्यय	मत
कंदहि	(कंद) विधि 2/1 अक	रोओ
बहिणि	(बहिणि) 8/1	हे बहिन
पुर-सयासि	[(पुर)-(सयास) 7/1]	नगर के पास
सो	(त) 1/1 सवि	वह
णिवसइ	(णिवस) व 3/1 अक	रहता है (रहेगा)
रयणी	(रयणी)[1] 2/1	रात्रि में
17. जिम	अव्यय	पादपूरक
णियउरि	[(णिय) वि -(उर)[2] 7/1]	निज छाती से
धरियउ	(धर→धरियअ) भूकृ 1/1 'अ' स्वार्थिक	लगाया गया
खीरें	(खीर) 3/1	दूध से
भरियउ	(भर→भरियअ) भूकृ 1/1 'अ' स्वार्थिक	पोषित
परपेसणेण	[(पर) वि-(पेसण) 3/1]	दूसरों की सेवा से
जि	अव्यय	ही
पोसियउ	(पोस→पोसिय→पोसियअ) भूकृ 1/1 'अ' स्वा.	पाला गया
मह-दुक्खें	[(मह) वि -(दुक्ख) 3/1]	बड़े कष्टों से
पालिउ	(पाल) भूकृ 1/1	रक्षण किया गया
देहें	(देह) 3/1	देह से
लालिउ	(लाल) भूकृ 1/1	स्नेहपूर्वक सम्भाला गया
तं	(त) 2/1 स	उसको

1. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-137)।
2. कभी-कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-135)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वीसरइ	(वीसर) व 3/1 सक	भूलता है (भूलेगा)
केम	अव्यय	कैसे
हियउ	(हियअ) 1/1	हृदय

3.19

1.	हउँ	(अम्ह) 1/1 स	मैं
	होंतउ	(हो→होंत→होंतअ) वकृ 1/1 'अ' स्वा.	होता हुआ
	दुख-दालिद्द-जडिउ	[(दुक्ख)-(दालिद्द)-(जडिअ) भूकृ 1/1 अनि]	दुःख-दरिद्रता से युक्त
	पुव्वक्किय	[(पुव्व) वि-(क्किय)[1] भूकृ 3/1 अनि]	पूर्व में किए हुए
	दुक्कमेण	(दुक्कम) 3/1	दुष्कर्म के द्वारा
	णडिउ	(णड) भूकृ 1/1	नचाया गया
2.	णिद्धंधउ	(णिद्धंधअ) 1/1 वि	धन्धेरहित
	छुह-तिस-संभरिउ	[(छुहा→छुह)[2]-(तिस)-(संभर) भूकृ 1/1]	भूख-प्यास-सहित
	जणणिए	(जणणी) 3/1	माता के
	सहु	अव्यय	साथ
	देसंतर	(देसंतर) 2/1	विदेश में
	फिरिउ	(फिर) भूकृ 1/1	फिरा
3.	थक्कइ	(थक्कअ) दे. 7/1 'अ' स्वार्थिक	समय
	असोय-माम	[(असोय) वि-(माम) 6/1]	अशोक मामा के
	जि	अव्यय	पादपूरक
	घरि	(घर) 7/1	घर में
	हउँ	(अम्ह) 1/1 स	मैं
	अत्थि	(अस) व 1/1 अक	रहा
	पवट्टिउ	(पवट्ट) भूकृ 1/1	प्रवृत्त हुआ
	तहिं	(त) 7/1 सवि	उस
	पवरि	(पवर) 7/1 वि	श्रेष्ठ
4.	मइ	(अम्ह) 3/1 स	मेरे द्वारा
	दाणु	(दाण) 1/1	दान
	पदिण्णउँ	(पदिण्णअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	दिया गया
	मुणिवरहु[3]	(मुणिवर) 4/1	श्रेष्ठ मुनि के लिए
	सहु	अव्यय	साथ

1. कभी-कभी तृतीया के लिए शून्य प्रत्यय का प्रयोग पाया जाता है (श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 147)।
2. कभी-कभी समास में दीर्घ का ह्रस्व हो जाता है।
3. चतुर्थी एवं षष्ठी पु. नपु. एकवचन में 'हु' प्रत्यय का प्रयोग भी होता है (श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 150)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	जणणिए	(जणणी) 3/1	माता के
	णिहणिय	[(णिहण)+(इय)] (णिहण) 4/1	विनाश के लिए
		(इय) 6/1 स	इस
	भवसरहु[1]	(भवसर) 6/1	संसार सरोवर के
5.	हउं	(अम्ह) 1/1 स	मैं
	वच्छउलहं	[(वच्छ)-(उल) 6/2]	बछड़ों के समूह की
	रक्खणहं	(रक्खण) 4/2	रक्षा के लिए
	गउ	(गअ) भूकृ 1/1 अनि	गया
	तहिं	अव्यय	वहाँ
	सुत्तउ	(सुत्तअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	सो गया
	जावहिं	अव्यय	जैसे ही
	विगय-भउ	[[(विगय) भूकृ अनि -(भअ) 1/1] वि]	नष्ट हुआ, भय
6.	पवणाहय	[(पवण)+(आहय)]	वायु से आघात प्राप्त
		[(पवण)-(आहय) भूकृ 1/2 अनि]	
	ते	(त) 1/2 स	वे
	णिय	(णिय) 7/1 वि	अपने
	आय	(आय) भूकृ 1/2 अनि	आ गये
	घरि	(घर) 7/1	घर में
	हउं	(अम्ह) 1/1 स	मैं
	भयभीयउ	[(भय)-(भीयअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वा.]	भय से कांपा हुआ
	कंदरि-विवरि	[(कंदरी→कंदरि)[2]-(विवर) 7/1]	गुफा के द्वार पर
7.	थक्कउ	(थक्क) व 1/1 अक	बैठा
	तहिं	अव्यय	वहां
	आयमु	(आयम) 1/1	आगम
	बहु	अव्यय	बहुत
	सुणिउ	(सुण) भूकृ 1/1	सुन गया
	संसार-सरूवउ	[(संसार)-(सरूवअ) 1/1 'अ' स्वार्थिक]	संसार का स्वरूप
	वि	अव्यय	और
	चित्ति	(चित्त) 7/1	चित्त में
	मुणिउ	(मुण) भूकृ 1/1	समझा गया
8.	जा	अव्यय	जब

1. चतुर्थी एवं षष्ठी पु. नपु. एकवचन में 'हु' प्रत्यय का प्रयोग भी होता है (श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृ. 150)।
2. कभी-कभी समास में दीर्घ का ह्रस्व हो जाता है (हे.प्रा.व्या. 1-4)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	णिवसमि	(णिवस) व 1/1 अक	बैठता हूँ (बैठा)
	ता	अव्यय	तब
	सिंघेण	(सिंघ) 3/1	सिंह के द्वारा
	हउ	(हअ) भूकृ 1/1 अनि	मारा गया
	हउँ	(अम्ह) 1/1 स	मैं
	सुरवर	(सुरवर) 6/1	श्रेष्ठ देव का
	जायउ	(जा→जायअ) भूकृ 1/1 'अ' स्वार्थिक	पाया
	चिय	अव्यय	पादपूरक
	विवउ	(वि-वअ)[1] 2/1	विशिष्ट पद
9.	मुणिवयणपसाएँ	[(मुणि)-(वयण)-(पसाअ) 3/1]	मुनि के वचन के प्रसाद से
	दुक्खभरु	[(दुक्ख)-(भर) 2/1]	दुःख के बोझ को
	छिंदिवि	(छिंद+इवि) संकृ	काटकर
	खणि	(खण) 7/1	क्षण में
	जायउ	(जा→जायअ) भूकृ 1/1 'अ' स्वार्थिक	गया
	सुक्खघरु	[(सुक्ख)-(घर) 2/1]	सुख के घर को
10.	एत्तहि	अव्यय	इधर
	तह[2]	(त) 6/1 स	उसकी
	मायरि	(मायरि) 1/1	माता
	दुहभरिया	[(दुह)-(भर→भरिय→भरिया) भूकृ 1/1]	दुःख से भरी हुई
	महदुक्खें	[(मह) वि-(दुक्ख) 3/1]	अत्यन्त कष्ट से
	खविय	(खव→खविय→खविया) भूकृ 1/1	बितायी गई
	विहावरिया	(विहावरीय) 1/1 'य' स्वार्थिक	रात्रि
1 .	हुय	(हु) संकृ	(उपस्थित) होकर
	सुप्पहाए	(सुप्पहाअ) 7/1	सुप्रभात में
	सयल	(सयल) 1/2 वि	सब
	जि	अव्यय	ही
	मिलिया	(मिल) भूकृ 1/2	मिले
	सहुँ	अव्यय	साथ
	जणणिए	(जणणी) 3/1	माता के
	तं	अव्यय	पादपूरक

1. वअ→वय=पद।
2. षष्ठी विभक्ति के लिए 'ह' प्रत्यय का भी प्रयोग होता है (श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 150)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जोयहुं[1]	(जोय) 4/1	खोजने के लिए
चलिया	(चल) भूकृ 1/2	चले
12. सव्वत्थ	अव्यय	सब (सारे)
वणम्मि	(वण) 7/1	वन में
गवेसियउ	(गवेस→गवेसियअ) भूकृ 1/1 'अ' स्वार्थिक	खोजा गया
मह[2]	(मह) 3/1 वि	महान
सोएं	(सोअ) 3/1	शोक के कारण
पुरजणु	[(पुर)-(जण) 1/1]	नगर के जन
सोसियउ	(सोस→सोसियअ) भूकृ 1/1 'अ' स्वार्थिक	कृश हो गये (थे)
13. तहुँ	(त) 6/1 स	उसके
खोज्जु	(खोज्ज) 2/1	मार्ग-चिह्न
णियंतइँ	(णिय→णियंत) वकृ 1/2	देखते हुए
जंतइँ	(जा→जंत) वकृ 1/2	जाते हुए
संतइँ	(संत) भूकृ 1/2 अनि	थके हुए
पत्तइँ	(पत्त) भूकृ 1/2 अनि	पहुंचे
गिरि-गुह-वारि	[(गिरि)-(गुह)-(वार) 7/1]	पर्वत की गुफा के दरवाजे पर
पुणु	अव्यय	फिर
तहिँ	अव्यय	वहाँ
तहु[3]	(त) 6/1 स	उसके
कर-चलणइँ	[(कर)-(चलण) 1/2]	हाथ और पैर
बहु-दुह-जणणइँ	[(बहु)वि-(दुह)-(जणण) 1/2 वि]	बहुत दुःख के जनक
दिट्ठइँ	(दिट्ठ) भूकृ 1/2 अनि	देखे गये
दहदिसि	[(दह)-(दिसि)[4] 2/2]	दसों दिशाओं में
पडिय	(पड) भूकृ 1/2	पड़े हुए
तणु	(तणु) 6/1	शरीर के

3.20

1. मुच्छाविय	(मुच्छ+आव=मुच्छाव→(भूकृ) मुच्छाविय→ (स्त्री) मुच्छाविया) प्रे. भूकृ 1/1	मूर्च्छित कर दी गई

---

1. द्वितीया विभक्ति साथ में होने से 'जोअ' को हेत्वर्थ कृदन्त का प्रयोग मानें तो 'जोअ=देखना' होना चाहिए था। तब इसका प्रयोग 'उ' प्रत्यय लगाकर (जोअ+उं) 'जोइउं' होना चाहिए था। यदि हम 'जोय' को संज्ञा मानते हैं तो 'तं' को द्वितीया विभक्ति नहीं कर सकते, उसे अव्यय मानना होगा। यह शब्द विचारणीय है।
2. तृतीया विभक्ति में भी शून्य प्रत्यय का प्रयोग पाया जाता है (श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 147)।
3. षष्ठी पुल्लिग एकवचन के लिए 'हु' प्रत्यय भी काम में आता है (श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 150)।
4. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-137)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	जणणि	(जणणी) 1/1	माता
	णिएवि	(णिअ+एवि) संकृ	देखकर
	ताइ	(त) 2/2 सवि	उनको
	सयल	(सयल) 1/2 वि	सब
	वि	अव्यय	भी
	दुक्खाविय	(दुक्ख+आव=दुक्खाव) प्रे. भूकृ 1/2	दुःखी
	तेत्थु	अव्यय	वहाँ (उस)
	ठाइ	(ठाअ) 7/1	स्थान पर
2.	उम्मुच्छिवि	(उम्मुच्छ+इवि) संकृ	अमूच्छित होकर
	मायरि	(मायरि) 1/1	माँ ने
	मुइवि	(मुअ+इवि) संकृ	छोड़कर
	धाह	अव्यय	चिल्लाहट
	रोवणहु[1]	(रोवण) 6/1	रोने का
	लग्ग	(लग्ग) 1/1	चिह्न
	हा	अव्यय	हाय
	हुय	(हु→हुय→हुया) भूकृ 1/1	हो गई
	अणाह	(अणाह→(स्त्री) अणाहा) 1/1 वि	अनाथ
3.	हा-हा	अव्यय	हाय-हाय
	महु	(अम्ह) 6/1	मेरे
	णंदणु	(णंदण) 1/1	पुत्र
	हउँ	(अम्ह) 1/1 स	मैं
	सदुक्खि	(स-दुक्ख) 7/1	अत्यन्त दुःख में
	किं	अव्यय	क्यों
	मुक्की	(मुक्क→(स्त्री) मुक्की) भूकृ 1/1 अनि	छोड़ दी गई
	णिक्कारणि	(णिक्कारण) 7/1 वि	निष्कारण
	उवेक्खि	(उवेक्ख) संकृ	उपेक्षा करके
4.	वारंतहँ[2]	(वार→वारंत) वकृ 6/2	रोकते हुए होने पर
	सव्वहँ	(सव्व) 6/2 वि	सबके
	गयउ	(गयअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	गये
	काइं	अव्यय	क्यों
	हा-हा	अव्यय	हाय-हाय
	किं	अव्यय	क्यों

1. अकारान्त पुल्लिग षष्ठी एकवचन में 'ह' प्रत्यय का प्रयोग भी होता है (श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 150)।

2. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-134)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	णायउ	[(ण)+(आयउ)] ण=अव्यय	नहीं,
		(आयअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	पहुँचे
	गेह-ठाइ	[(गेह)-(ठाय) 7/1]	निवास स्थान में
5.	कि	अव्यय	क्यों
	कुमइ	(कुमइ) 1/1	कुमति
	जाय	(जा→जाय→जाया) भूकृ 1/1	उत्पन्न हुई
	तुव	(तुम्ह) 6/1 स	तुम्हारे
	एह	(एता) 1/1 सवि	यह
	पुत्त	(पुत्त) 8/1	हे पुत्र
	जं	अव्यय	कि
	वणि	(वण) 7/1	वन में
	आवासिउ	(आवास) भूकृ 1/1	रहा गया
	कमलवत्त	[[(कमल)-(वत्त) 8/1] वि]	कमल के समान मुखवाले
6.	महु	(अम्ह)[1] 6/1 स	मुझको
	छंडि	(छंड+इ) संकृ	छोड़कर
	गयउ	(गयअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	चला गया
	तुहु	(तुम्ह) 1/1 स	तू
	किं	अव्यय	क्यों
	विएसि	(विएस) 7/1	परदेश में
	हउं	(अम्ह) 1/1 स	मैं
	पाण	(पाण) 2/1	प्राण
	चयमि	(चय) व 1/1 सक	छोड़ती हूँ
	पुणु	अव्यय	ही
	इह	अव्यय	यहाँ (इस)
	पएसि	(पएस) 7/1	स्थान पर
7.	इय	(इअ) 2/1 सवि	यह
	भणिवि	(भण) संकृ	कहकर
	चलण-कर	[(चलण)-(कर) 2/2]	हाथों और पैरों को
	मेलवेवि	(मेलव+एवि) संकृ	मिलाकर
	आलिंगइ	(आलिंग) व 3/1 सक	आलिंगन करती है
	जा	अव्यय	जब
	णेहेण	(णेह) 3/1	स्नेह से
	लेवि	(ले+एवि) संकृ	उठाकर
8.	ता	अव्यय	तब

1. कभी-कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-134)।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

सुरवरु	(सुरवर) 1/1	श्रेष्ठ देव
चिंतइ	(चिंत) व 3/1 सक	विचारता है
सग्गवासि	[(सग्ग)-(वासि) 1/1 वि]	स्वर्ग का वासी
किम	अव्यय	क्या
जणणि	(जणणी) 1/1	माँ
मज्झ	(अम्ह) 6/1 स	मेरी
हुव[1]	(हुव→हुअ=हुआ) भूकृ 1/1	हुआ
सोक्खरासि	[(सोक्ख)-(रासि) 1/1 वि]	सुख की खान
9. जाइवि	(जा+इवि) संकृ	जाकर
संबोहमि	(संबोह) व 1/1 सक	समझाता हूँ (समझाउँगा)
ताहि[2]	(ता)[3] 6/1 स	उसको
अज्जु	अव्यय	आज
जिम	अव्यय	जिससे
सिज्झइ	(सिज्झ) व 3/1 सक	सिद्ध होता है (सिद्ध हो)
तहि[2]	(ता) 6/1 स	उसका
परलोइ	(परलोअ) 7/1	परलोक में
कज्जु	(कज्ज) 1/1	कार्य
10. अण्णु	(अण्ण) 2/1 वि	दूसरी
वि	अव्यय	भी
णियगुरु-चरणारविंद	[(णिय)+(गुरु)+(चरण)+(अरविंद)] [(णिय) वि-(गुरु)-(चरण)-(अरविंद) 2/2]	निज गुरु के चरणरूपी कमलों को
पणमवि	(पणाम+अवि) संकृ	प्रणाम करके
जाइवि	(जा+इवि) संकृ	जाकर
गइमल	[[(गइ)-(मल) 1/1] वि]	मलरहित
अणिद	(अणिद) 1/1 वि	निंदारहित
11. इय	(इया) 2/2 सवि	इनको
चिंतिवि	(चिंत+इवि) संकृ	सोचकर
आयउ	(आयअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	आया
तहिं	अव्यय	वहाँ
सुरेसु	(सुरेस) 1/1	उत्तम देव
मायइँ	(माया→मायाए→मायाइ→मायाइँ) 3/1	माया से

---

1. हुअ→भूअ=भूत (प्राकृत कोश)।
2. स्त्रीलिंग शब्दों की षष्ठी विभक्ति ए.व. में 'हि' प्रत्यय भी प्रयोग में आता है (श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृ. 157)।
3. कभी-कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-134)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करेवि	(कर+एवि) संकृ	बनाकर
चिर-देह-वसु	[(चिर) वि-(देह)-(वस) 2/1]	पुरानी देह के वश को
12. णियडउ	(णियडअ) 2/1 'अ' स्वार्थिक	निकट
आविवि	(आव+इवि) संकृ	आकर
जंपिवि	(जंप+इवि) संकृ	कहकर
सुवाय	(सुवाया) 2/1	मधुर वचन
किं	अव्यय	क्यों
कंदहि	(कंद) व 2/1 अक	क्रन्दन करती हो
रोवहि	(रोव) व 2/1 अक	रोती हो
मज्झु	(अम्ह) 6/1 स	मेरी
माय	(माया) 8/1	हे माता
13. हउं	(अम्ह) 1/1 स	मैं
जीवमाणु	(जीव) वकृ 1/1	जीता हुआ (जीवित)
महु	(अम्ह) 6/1 स	मेरे
णियहि	(णिय) विधि 2/1 सक	देखो
वत्तु	(वत्त) 2/1	मुख को
हउं	(अम्ह) 1/1 स	मैं
अकयपुण्णु	(अकयपुण्ण) 1/1	अकृतपुण्य
णामेण	(णाम) 3/1	नाम से
पुत्तु	(पुत्त) 1/1	पुत्र
14. मोहाउर	[(मोह)+(आउर)] [(मोह)-(आउर→आउरा) 1/1 वि]	मोह से पीड़ित
णिसुणिवि	(णिसुण+इवि) संकृ	सुनकर
वयण	(वयण) 2/1	वचन को
सिग्घु	अव्यय	शीघ्र
णिच्छइ	(णिच्छ+इ) संकृ	निश्चय करके
जाणिउ	(जाण+इउ) संकृ	जानकर
महु	(अम्ह) 6/1 स	मेरा
सुउ	(सुअ) 1/1	पुत्र
अणग्घु	(अणग्घ) 1/1 वि	उत्तम
15. मेल्लिवि	(मेल्ल+इवि) संकृ	छोड़कर
कर-चरणइं	[(कर)-(चरण) 2/2]	हाथों और पैरों को
बहुदुहकरणइं	[(बहु) वि-(दुह)-(करण) 2/2 वि]	बहुत दुःख को उत्पन्न करनेवाले
धाइवि	(धाअ+इवि) संकृ	दौड़कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आलिंगेहि[1]	(आलिंग) व 3/1 सक	आलिंगन करती है
तहु[2]	(त)[3] 6/1 स	उसका
ता	अव्यय	तब
सुरवरु	(सुरवर) 1/1	श्रेष्ठ देव
सारउ	(सारअ) 1/1 वि	सर्वोत्तम
वसु-गुण-धारउ	[(वसु)-(गुण)-(धारअ) 1/1 वि]	आठ गुणों का धारक
पउ	(पअ) 2/1	अवस्था को
सरेवि	(सर+एवि) संकृ	स्मरण करके
थिउ	(थिअ) भूकृ 1/1 अनि	स्थिर हुआ
सो	(त) 1/1 सवि	वह
वि	अव्यय	भी
लहु	अव्यय	शीघ्र

3.21

1.	जंपइ	(जंप) व 3/1 सक	बोलता है (बोला)
	भो	अव्यय	हे
	बुज्झहि	(बुज्झ) विधि 2/1 सक	समझ
	जणणि	(जणणी) 8/1	माता
	सारु	(सार) 2/1 वि	श्रेष्ठ
	जिणवयणु	[(जिण)-(वयण) 2/1]	जिन-वचन को
	दयावरु	(दयावर) 2/1 वि	दयावान
	जणहँ	(जण) 4/2	मनुष्यों के लिए
	तारु	(तार) 2/1 वि	उज्ज्वल
2.	को	(क) 1/1 सवि	कौन
	कासु	(क) 6/1 सवि	किसका
	णाहु	(णाह) 1/1	नाथ
	को	(क) 1/1 सवि	कौन
	कासु	(क) 6/1 सवि	किसका
	भिच्चु	(भिच्च) 1/1	नौकर
	जाणहि	(जाण) विधि 2/1 सक	जान
	संसारु	(संसार) 2/1	संसार को
	जि	अव्यय	पादपूरक

1. परवर्ती रूप, श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृ. 205।

2. अकारान्त पुल्लिग के षष्ठी एकवचन में 'हु' प्रत्यय भी काम में आता है (श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 150)।

3. कभी-कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-134)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणि	(मण) 7/1	मन में
अणिच्चु	(अणिच्च) 1/1 वि	अनित्य
3. मोहें	(मोह) 3/1	मोह से
बद्धउ	(बद्धअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	जकड़ा हुआ
मे-मे	(अम्ह) 6/1 स	मेरा-मेरा
करेइ	(कर) व 3/1 सक	करता है
आउक्खए	(आउक्खअ) 7/1	आयु के समाप्त होने पर
कु	(क) 1/1 स	कोई
वि	अव्यय	भी
कासु	(क) 6/1[1] स	किसी को
ण	अव्यय	नहीं
धरेइ	(धर) व 3/1 सक	पकड़ता है
4 अइआरु	[(अइ) वि-(आर)[2] 1/1 सवि]	अत्यधिक बन्धनवाला
ण	अव्यय	नहीं
किज्जइ	(किज्जइ) व कर्म 3/1 सक अनि	किया जाता है (किया जाना चाहिए)
मोहु	(मोह) 1/1	मोह
अंबि	(अंबा→अंबे→अंबि) 8/1	हे माता
जिणधम्मु	[(जिण)-(धम्म) 2/1]	जिनधर्म को
गहहि	(गह) विधि 2/1 सक	ग्रहण करो
मा	अव्यय	मत
इह	अव्यय	यहाँ
विलंबि	(वि-लंब) विधि 2/1 अक	देरी करो
5. जें	(ज) 3/1 स	जिसके द्वारा
लब्भहिँ	(लब्भहिँ) व कर्म 3/2 सक अनि	प्राप्त किए जाते हैं
इच्छिय	(इच्छ→इच्छिय) भूकृ 1/2	इच्छित
सयलसुक्ख	[(सयल) वि-(सुक्ख) 1/2]	सभी सुख
छेइज्जहिँ	(छेअ) व कर्म 3/2 सक	नष्ट किए जाते हैं
जें	(ज) 3/1 स	जिसके द्वारा
भवदुक्खलक्ख	[(भव)-(दुक्ख)-(लक्ख) 1/2]	संसार के लाखों दुःख
6. खण[3]	(खण) 7/1	क्षण में

1. कभी-कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-134)।
2. चार→आर=बन्धन, इच्छा।
3. अकारान्त पुल्लिग, सप्तमी विभक्ति एकवचन में 'शून्य' प्रत्यय का प्रयोग भी होता है (श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृ. 147)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	भंगुरु	(भंगुर) 1/1	नाशवान
	सयलु	(सयल) 1/1 वि	सब (प्रत्येक)
	म	अव्यय	मत
	करहि	(कर) विधि 2/1 सक	कर
	सोउ	(सोअ) 2/1	शोक
	महु	(अम्ह)[1] 6/1 स	मुझको
	पुणु	अव्यय	फिर
	पेच्छहि	(पेच्छ) विधि 2/1 सक	देख
	संजणिय	(संजण) भूकृ 1/1	उत्पन्न हुआ
	मोउ	(मोअ) 1/1	हर्ष
7.	सद्दहहि	(सद्दह) विधि 2/1 सक	श्रद्धा कर
	जिणागमु	[(जिण)+(आयमु)] [(जिण)-(आयम) 2/1]	जिनागम को (का)
	सरिवि	(सर+इवि) संकृ	स्मरण करके
	अज्जु	अव्यय	आज
	हुउ	(हुअ) भूकृ 1/1	हुआ
	पढम-सग्गि	[(पढम) वि-(सग्ग) 7/1]	प्रथम स्वर्ग में
	सुरु	(सुर) 1/1	देव
	देवपुज्जु	[(देव)-(पुज्ज) 1/1 वि]	देवों द्वारा पूज्य
8.	अवहिए	(अवहि) 3/1	अवधि-ज्ञान से
	जाणिवि	(जाण+इवि) संकृ	जानकर
	हउं	(अम्ह) 1/1 स	मैं
	एत्थु	अव्यय	यहां
	आउ	(आअ) भूकृ 1/1 अनि	आया
	तुज्झ	(तुम्ह) 6/1 स	तुम्हारी
	बोहणत्थि	[(बोहण)+(अत्थि)] [(बोहण)-(अत्थि) 1/1 वि]	शिक्षा (बोध) का इच्छुक
	पयडिय-सुवाउ	[(पयडिय)+(सुव)+आउ)] [(पयडिय) भूकृ -(सुव)-(आयु) 1/1]	प्रकट की गयी, पुत्र की आयु
9.	इय	(इय) 2/1 सवि	इस
	वयणु	(वयण) 2/1	वचन को
	सुणिवि	(सुण+इवि) संकृ	सुनकर
	उवसंतमोह	[[(उवसंत) भूकृ अनि-(मोह) 1/1] वि]	शांत हुआ, मोह
	कर-चरण	[(कर)-(चरण) 2/2]	हाथ-पैरों को

1. कभी-कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-134)।

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

मुइवि	(मुअ+इवि) संकृ	छोड़कर
जाया	(जा→(भूकृ) जाय→(स्त्री) जाया) भूकृ 1/1	हुई
सुबोह	(सुबोह) 1/1 वि	उत्तम ज्ञानवाली
10. देवें	(देव) 3/1	देव के द्वारा
पुणु	अव्यय	फिर
णिय-मुणिणाह	[(णिय) वि-(मुणिणाह) 6/1]	अपने मुनिनाथ (गुरु) के
पासि	(पास) 7/1	पास
वरु	अव्यय	श्रेष्ठ
गुह-अब्भंतरि	[(गुह)-(अब्भंतर) 7/1]	गुफा के भीतर
वि	अव्यय	ही
गय	(गय) भूकृ 1/1 अनि	जाया गया
तासि	(तासि)[1] 6/1 वि	भयंकर
11. ति	(ति) 2/2 वि	तीन
पयाहिणि	(पयाहिण→(स्त्री) पयाहिणी) 2/2	प्रदक्षिणा
देप्पिणु	(दा+एप्पिणु) संकृ	देकर
गुरुपयाइं	[(गुरु)-(पय) 2/2]	गुरुचरणों को
देवें	(देव) 3/1	देव के द्वारा
वंदिय	(वंद) भूकृ 1/1	वन्दना की गई
ता	अव्यय	तब
गरहियाइं	(गरह) भूकृ 1/2	निन्दित किए गए
12. बहु	(बहु) 2/1 वि	बहुत
थोत्तु	(थोत्त) 2/1	स्तुति
पयासिवि	(पयास+इवि) संकृ	व्यक्त करके
चिरकह	[(चिर) वि-(कहा) 2/1]	पुरानी कथा
भासिवि	(भास+इवि) संकृ	कहकर
तुम्ह	(तुम्ह) 6/1	तुम्हारे
पसाएं	(पसाअ) 3/1	कृपा से
देव	(देव) 6/1	देव का
पउ	(पअ) 1/1	पद
मइं	(अम्ह) 3/1 स	मेरे द्वारा
पाविउ	(पाव) भूकृ 1/1	प्राप्त किया गया
धण्णउ	(धण्णअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	प्रशंसनीय

1. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-134)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहु-सुह-छण्णउ	[(बहु) वि-(सुह)-(छण्णअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वा.]	बहुत सुखों से आच्छादित
एम	अव्यय	इस प्रकार
भणिवि	(भण+इवि) संकृ	कहकर
पणवाउ[1]	(पणवाअ) 1/1	प्रणाम
कउ	(कअ) भूकृ 1/1 अनि	किया गया

1. प्रणिपात=पणवाअ=प्रणाम।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ–14

हेमचन्द्र के दोहे

1.	सायरु	(सायर) 1/1	सागर
	उप्परि	अव्यय	ऊपर
	तणु	(तण) 2/1	घास-फूस को
	धरइ	(धर) व 3/1 सक	रखता है
	तलि	(तल) 7/1	पैंदे में
	घल्लइ	(घल्ल) व 3/1 सक	फेंक देता है
	रयणाइं	(रयण) 2/2	रत्नों को
	सामि	(सामि) 1/1	राजा
	सुभिच्चु	(सु–भिच्च) 2/1	गुणवान सेवक को
	वि·रिहरइ	(वि–परिहर) व 3/1 सक	त्याग देता है
	संमाणेइ	(संमाण) व 3/1 सक	सम्मान करता है
	खलाइं	(खल) 2/2	दुष्ट सेवकों को (का)
2.	दूरुड्डाणे	[(दूर) + (उड्डाणे)] दूर (क्रिविअ), उड्डाणे (उड्डाण)[1] 7/1	ऊँचाई से, उड़ने के कारण
	पडिउ	(पड→पडिअ) भूकृ 1/1	गिरा हुआ
	खलु	(खल) 1/1 वि	दुष्ट
	अप्पणु	(अप्पण) 2/1	अपने को
	जणु	(जण) 2/1	मनुष्य को (मनुष्यों को)
	मारेइ	(मार) व 3/1 सक	नष्ट करता है
	जिह	अव्यय	जिस प्रकार
	गिरि-सिंगहुं	[(गिरि)–(सिंग) 5/2]	पर्वत की शिखा से
	पडिअ	(पड→पडिअ→(स्त्री) पडिआ) 1/1	गिरी हुई
	सिल	(सिला) 1/1	शिला
	अन्नु	(अन्न) 2/1 वि	अन्य को
	वि	अव्यय	भी
	चूरु	(चूर) 2/1	टुकड़े-टुकड़े
	करेइ	(कर) व 3/1 सक	कर देती है
3.	जो	(ज) 1/1 सवि	जो
	गुण	(गुण) 2/2	गुणों को
	गोवइ	(गोव) व 3/1 सक	छिपाता है

1. कभी-कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3–135)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्पणा	(अप्प) 6/1 वि	स्वयं के
पयडा	(पयड) 2/1 वि	प्रकट
करइ	(कर) व 3/1 सक	करता है
परस्सु	(पर) 6/1 वि	दूसरे के
तसु	(त) 6/1 सवि	उस (की)
हउं	(अम्ह) 1/1 स	मैं
कलि-जुगि	[(कलि)-(जुग) 7/1]	कलियुग में
दुल्लहहो	(दुल्लह) 6/1 वि	दुर्लभ
बलि	(बलि) 2/1	पूजा (को)
किज्जउं[1]	(कि+ज्ज) व 1/1 सक	करता हूँ
सुअणस्सु	(सुअण) 6/1	सज्जन की
4. दइवु	(दइव) 1/1	दैव (ने)
घडावइ	(घडाव) व 3/1 सक	बनाता है (बनाये)
वणि	(वण) 7/1	वन में
तरुहुं	(तरु) 6/2	वृक्षों के
सउणिहं	(सउणि) 4/2	पक्षियों के लिए
पक्क	(पक्क) 2/2 वि	पके
फलाइं	(फल) 2/2	फल
सो	(त) 1/1 सवि	वह
वरि	अव्यय	श्रेष्ठ
सुक्खु	(सुक्ख) 1/1 वि	सुख
पइट्ठ	(पइट्ठ) भूकृ 1/2 अनि	प्रवेश (प्रविष्ट) हुआ
ण	अव्यय	नहीं
वि	अव्यय	पादपूरक
कण्णहिं	(कण्ण) 7/2	कानों में
खल-वयणाइं	[(खल) वि-(वयण) 1/2]	दुष्टों के वचन
5. धवलु	(धवल) 1/1	उत्तम बैल
विसूरइ	(विसूर) व 3/1 अक	खेद करता है
सामि	(सामि) 6/1	स्वामी के
अहो	अव्यय	सम्बोधनार्थक
गरुआ	(गरुअ) 2/1 वि	बड़े (को)
भरु	(भर) 2/1	भार को
पिक्खेवि	(पिक्ख) संकृ	देखकर
हउं	(अम्ह) 1/1 स	मैं
कि	अव्यय	क्यों

1. कभी-कभी क्रिया और काल के प्रत्यय के बीच में 'ज्ज' प्रत्यय जोड़ दिया जाता है (हे.प्रा.व्या.)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	न	अव्यय	नहीं
	जुत्तउ	(जुत्तअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	जोत दिया गया
	दुहुं	(दु)[1] 6/2 वि	दो (में)
	दिसिहिं	(दिसि) 7/2	दिशाओं में
	खंडइं	(खंड) 2/2	विभाग
	दोण्णि	(दो) 2/2 वि	दो
	करेवि	(कर+एवि) संकृ	करके
6.	कमलइं	(कमल) 2/2	कमलों को
	मेल्लवि	(मेल्ल+अवि) संकृ	छोड़कर
	अलि	(अलि) 6/2	भँवरों के
	उलइं	(उल) 1/2	समूह
	करि-गंडाइं	[(करि)-(गंड) 2/2]	हाथियों के गंडस्थलों को
	महन्ति	(मह) व 3/2 सक	इच्छा करते हैं, चाहते हैं
	असुलह-मेच्छण[2]	[(असुलहं)+(एच्छण)] (असुलह) 2/1 वि (एच्छण) 2/1 वि	असुलभ, लक्ष्य को
	जाहं	(ज) 6/2 स	जिनका
	भलि[3]	(भलि) 1/1 (दे)	कदाग्रह
	ते	(त) 1/2 स	वे
	ण	अव्यय	नहीं
	वि	अव्यय	बिल्कुल
	दूर	(दूर) 2/1 वि	दूर
	गणन्ति	(गण) व 3/2 सक	मानते हैं
7.	जीविउ	(जीविअ) 1/1	जीवन
	कासु	(क) 4/1 स	किसके लिए
	न	अव्यय	नहीं
	वल्लहउं	(वल्लहअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	प्रिय
	धणु	(धण) 1/1	धन
	पुणु	अव्यय	भी
	कासु	(क) 4/1 स	किसके लिए
	न	अव्यय	नहीं
	इट्ठु	(इट्ठ) भूकृ 1/1 अनि	प्रिय
	दोण्णि	(दो) 2/2 वि	दोनों को

1. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है(हे.प्रा.व्या. 3-134)।
2. एच्छण (वि)=लक्ष्य को (हेम प्राकृत व्याकरण, कोष सूची पृष्ठ 25)।
3. भलि=कदाग्रह।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	वि	अव्यय	ही
	अवसर-निवडिआइं	[(अवसर)-(निवड→निवडिअ)[1] भूकृ 7/1]	समय आ पड़ने पर
	तिण-सम	[(तिण)-(सम) 1/1 वि]	तिनके के समान
	गणइ	(गण) व 3/1 सक	गिनता है
	विसिट्ठु	(विसिट्ठ) भूकृ 1/1 अनि	विशेष गुण-सम्पन्न
8	बलि	(बलि)[2] 6/1	बलि (राजा) से
	अब्भत्थणि	(अब्भत्थण)[3] 7/1	माँगनेवाला होने के कारण
	महु-महणु	(महुमहण) 1/1	विष्णु
	लहुई	(लहु→(स्त्री) लहुई) 1/1 वि	छोटा
	हूआ	(हूआ) भूकृ 1/1 अनि	हुआ
	सो	(त) 1/1 सवि	वह
	इ	अव्यय	भी
	जइ	अव्यय	यदि
	इच्छहु[4]	(इच्छ) विधि 2/1 सक	चाहते हो
	वड्डुत्तणउं	(वड्डुत्तणअ) 2/1 'अ' स्वार्थिक	बड़प्पन को
	देहु[4]	(दा) विधि 2/1 सक	दो
	म	अव्यय	मत
	मग्गहु[4]	(मग्ग) विधि 2/1 सक	माँगो
	कोइ[5]	(क) 1/1 स	कुछ (भी)
9.	कुञ्जर	(कुञ्जर) 8/1	हे गजराज
	सुमरि	(सुमर) विधि 2/1 सक	याद कर
	म	अव्यय	मत
	सल्लइउ	(सल्लइ-अ) 2/1 'अ' स्वार्थिक	शल्लकी (वृक्ष) को
	सरला	(सरल) 2/2 वि	स्वाभाविक (को)
	सास	(सास) 2/2	साँसों को
	म	अव्यय	मत
	मेल्लि	(मेल्ल) विधि 2/1 सक	त्याग
	कवल	(कवल) 1/2	ग्रास (भोजन)
	जि	(ज→जे→जि) 1/2 स	जो
	पाविय	(पाव→पाविय) भूकृ 1/2	प्राप्त किया गया

1. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 146।
2. कभी-कभी पंचमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-134)।
3. कभी-कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-135)।
4. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 212।
5. अनिश्चित अर्थ के लिए 'इ' जोड़ दिया जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विहि–वसिण	[(विहि)–(वस→वसेण→वसिण)[1] 3/1 वि]	विधि के वश से
ते	(त) 2/2 सवि	उनको
चरि	(चर) विधि 2/1 सक	खा
माणु	(माण) 2/1	स्वाभिमान को
म	अव्यय	मत
मेल्लि	(मेल्ल) विधि 2/1 सक	छोड़
10. दिग्रहा	(दिअह) 1/2	दिन
जन्ति	(जा→जन्ति) व 3/2 सक	व्यतीत होते हैं
झडप्पडहिं[2]	(झडप्पड) 3/2	झटपट से
पडहिं	(पड) व 3/2 अक	रह जाती हैं
मणोरह	(मणोरह) 1/2	इच्छाएं
पच्छि	अव्यय	पीछे
जं	(ज) 1/1 सवि	जो
अच्छइ	(अच्छ) व 3/1 अक	होना है
तं	(त) 1/1 सवि	वह
माणिअ	(माण→माणिअ) संकृ (प्राकृत)	मानकर
इ	अव्यय	ही
होसइ	(हो) भवि 3/1 अक	होगा
करतु	(कर→करन्त→करत[3])वकृ 1/1	सोचता हुआ
म	अव्यय	मत
अच्छि	(अच्छ) विधि 2/1 अक	बैठ
11. सन्ता	(सन्त) 2/2 वि	विद्यमान
भोग	(भोग) 2/2	भोगों को
जु	(ज) 1/1 सवि	जो
परिहरइ	(परिहर) व 3/1 सक	त्यागता है
तसु	(त) 6/1 सवि	उस (की)
कन्तहो	(कान्त→कन्त) 6/1	सुन्दर (व्यक्ति) की
बलि	(बलि) 2/1	पूजा
कीसु[4]	(कीसु) व 1/1 सक	करता हूँ
तसु	(त) 6/1 स	उसका
दइवेण	(दइव) 3/1	दैव के द्वारा

1. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 143 (2)।
2. नपु. 3/2 क्रिविअ की भांति काम कर रहा है।
3. 'करत' प्रयोग विचारणीय है।
4. हेम प्राकृत व्याकरण 4–389।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि	अव्यय	ही
मुण्डियउं[1]	(मुण्ड→मुण्डिय→मुण्डियअ) भूकृ 1/1 'अ' स्वा.	मुंडा हुआ
जसु	(ज) 6/1 स	जिसका
खल्लिहडउ	(खल्लिहड–अ)[2] 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	गंजा
सीसु	(सीस) 1/1	सिर
12. तं	(त) 1/1 सवि	वह
तेत्तिउ	(तेत्तिअ) 1/1 वि	उतना (इतना)
जलु	(जल) 1/1	जल
सायरहो	(सायर) 6/1	सागर का
सो	(त) 1/1 सवि	वह
तेवडु	(तेवड) 1/1 सवि	उतना (इतना)
वित्थारु	(वित्थार) 1/1 सवि	विस्तार
तिसहे	(तिसा) 6/1	प्यास का
निवारणु	(निवारण) 1/1	निवारण
पलु	(पल) 1/1	जरा सा
वि	अव्यय	भी
नवि	अव्यय	नहीं
पर	अव्यय	किन्तु
घुट्ठुअइ	(घुट्ठुअ) व 3/1 अक	आवाज करता रहता है
असारु	(असार) 1/1 वि	निरर्थक
13. फिरु	अव्यय	निश्चय ही
खाइ	(खा) व 3/1 सक	खाता है
न	अव्यय	नहीं
पिअइ	(पिअ) व 3/1 सक	पीता है
न	अव्यय	नहीं
विद्दवइ	(विद्दव) व 3/1 सक	भागता है (घूमता है)
धम्मि	(धम्म) 7/1	धर्म में
न	अव्यय	नहीं
वेच्चइ	(वेच्च) व 3/1 सक	व्यय करता है
रुअडउ	(रुअ+अडअ)[3] 2/1 'अडअ' स्वार्थिक	रुपये को
इह	अव्यय	यहां
किवणु	(किवण) 1/1 वि	कंजूस, कृपण
न	अव्यय	नहीं

1. अनुस्वार का आगम ।
2. खल्लिहड=गंजा ।
3. रुअअ+अडअ=रुअअडअ=रुअडअ=रुपया ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाणइ	(जाण) व 3/1 सक	समझता है
जइ	अव्यय	जबकि
जमहो	(जम) 6/1	यम का
खणेण	(खण) 3/1 क्रिविअ	क्षणभर में
पहुच्चइ	(पहुच्च) व 3/1 अक	पहुँचता है
दूअडउ	(दूअ+अडअ) 1/1 'अडअ' स्वार्थिक	दूत
14. कहिं	अव्यय	कहीं, कहां
ससहरु	(ससहर) 1/1	चन्द्रमा
कहिं	अव्यय	कहां
मयरहरु	(मयरहर) 1/1	समुद्र
कहिं	अव्यय	कहाँ
बरिहिणु	(बरिहिण) 1/1	मोर
कहिं	अव्यय	कहाँ
मेहु	(मेह) 1/1	मेघ
दूर-ठिग्राहं	[(दूर)-(ठिआहं)] दूर=अव्यय (ठिअ) भूकृ 6/2 अनि	दूरी पर, स्थित
वि	अव्यय	भी
सज्जणहं	(सज्जण) 6/2	सज्जनों का
होइ	(हो) व 3/1 अक	होता है
असड्ढलु	(असड्ढलु) 1/1 वि	असाधारण
नेहु	(नेह) 1/1	प्रेम
15. सरिहिं	(सरि) 3/2	नदियों से
न	अव्यय	न
सरेहिं	(सर) 3/2	झीलों से
न	अव्यय	न
सरवरेहिं	(सरवर) 3/2	तालाबों से
नवि	अव्यय	न ही
उज्जाण-वणेहिं	[(उज्जाण)-(वण) 3/2]	उद्यानों और वनों से
देस	(देस) 1/2	देश
रवण्णा	(रवण्णा) 1/2 वि	सुन्दर
होन्ति	(हो) व 3/2 अक	होते हैं
वढ	(वढ) 6/1 वि	हे मूर्ख
निवसन्तेहिं	(निवस→निवसन्त) वकृ 3/2	बसे हुए होने के कारण
सु-अणेहिं	(सु-अण) 3/2	सज्जनों से (द्वारा)
6. एक्क	(एक्क) 1/1 वि	एक
कुडुल्ली	(कुडि+उल्ल=कुडुल्ल→(स्त्री) कुडुल्ली) 1/1 'उल्ल' स्वार्थिक	कुटिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चहिं	(पञ्च) 3/2 वि	पाँच के द्वारा
रुद्धि	(रुद्धि) भूकृ 1/1 अनि	रोकी हुई
तहं	(त) 6/2 सवि	उन (की)
पञ्चहं	(पञ्च) 6/2 वि	पाँचों की
वि	अव्यय	भी
जुअं-जुअ	अव्यय	अलग-अलग
बुद्धि	(बुद्धि) 1/1	बुद्धि
बहिणु	(बहिणु) 8/1	हे बहिन
ए	अव्यय	सम्बोधनार्थक
तं	(त) 1/1 सवि	वह
घरु	(घर) 1/1	घर
कहि	(कह) विधि 2/1 सक	कहो
किवँ	अव्यय	कैसे
नन्दउ	(नन्दअ) 1/1 वि	हर्ष मनानेवाला
जेत्थु	अव्यय	जहाँ
कुडुम्बउं	(कुडुम्ब→कुडुम्बअ) 1/1	कुटुम्ब
अप्पणछंदउं	(अप्पणछंदअ) न 1/1 वि	स्वच्छन्दी
17. जिब्भिन्दिउ	[(जिब्भ)+(इन्दिअ)] [(जिब्भ)-(इन्दिअ) 2/1]	रसना इन्द्रिय को
नायगु	(नायग) 2/1 वि	प्रमुख
वसि	(वस) 7/1 वि	वश में
करहु	(कर) विधि 2/2 सक	करो
जसु	(ज) 6/1 स	जिसके
अधिन्नइं	(अधिन्न) 1/2 वि	अधीन
अन्नइं	(अन्न) 1/2 वि	अन्य
मूलि	(मूल) 7/1	मूल के
विणट्ठइ	(विणट्ठअ) भूकृ 7/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	समाप्त हो जाने पर
तुंबिणिहे	(तुंबिणी) 6/1	तुम्बिनी के
अवसें	अव्यय	अवश्य ही
सुक्कइं	(सुक्क) भूकृ 1/2 अनि	निराधार (म्लान)
पण्णइं	(पण्ण) 1/2	पत्ते
18. जेप्पि	(जि+एप्पि) संकृ	जीतकर
असेसु	(असेस) 2/1 वि	सम्पूर्ण
कसाय-बलु	[(कसाय)-(बल) 2/1]	कषाय की सेना को
देप्पिणु	(दा+एप्पिणु) संकृ	देकर
अभउ	(अभअ) 2/1	अभय
जयस्सु	(जय) 4/1	जगत के लिए (को)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेवि	(ले+एवि) संकृ	ग्रहण करके
महव्वय	(महव्वय) 2/2	महाव्रतों को
सिवु	(सिव) 2/1	मोक्ष
लहहिं	(लह) व 3/2 सक	प्राप्त करते हैं
झाएविणु	(झा+एविणु) संकृ	ध्यान करके
तत्तस्सु[1]	(तत्त) 6/1	तत्त्व (का) को
19. देवं	(दा+एवं) हेकृ	देने के लिए
दुक्करु	(दुक्कर) 1/1 वि	दुष्कर
निअय·धणु	[(निअय) वि-(धण) 2/1]	निजधन को
करण	(कर+अण) हेकृ	करने के लिए
न	अव्यय	नहीं
तउ	(तअ) 2/1	तप को
पडिहाइ	(पडिहा) व 3/1 अक	दिखाई देता है
एम्वइ	अव्यय	इसी प्रकार
सुहु	(सुह) 2/1	सुख को
भुञ्जणहं	(भुञ्ज+अणहं) हेकृ	भोगने के लिए
मणु	(मण) 1/1	मन
पर	अव्यय	किन्तु
भुञ्जणहिं	(भुञ्ज+अणहिं)हेकृ	भोगने के लिए
न	अव्यय	नहीं
जाइ	(जा) व 3/1 अक	उत्पन्न होता है

1. कभी-कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है(हे.प्रा.व्या. 3-134)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ–15

परमात्मप्रकाश

1.	पुणु-पुणु	अव्यय	बार-बार
	पणविवि	(पणव+इवि) संकृ	प्रणाम करके
	पंच-गुरु	[(पंच) वि–(गुरु) 2/2]	पाँच गुरुओं को
	भावें	(भाव) 3/1	अन्तरंग बहुमान (भाव) से
	चित्ति	(चित्त) 7/1	चित्त में
	धरेवि	(धर+एवि) संकृ	धारण करके
	भट्टपहायर	(भट्टपहायर) 8/1	हे भट्ट प्रभाकर
	णिसुणि	(णिसुण) विधि 2/1 सक	सुन
	तुहुं→तुहुँ[1]	(तुम्ह) 1/1 स	तू
	अप्पा	(अप्प) 2/1	आत्मा को
	तिविहु	(तिविह) 2/1 वि	तीन प्रकार की
	कहेवि	(कह+एवि) हेकृ	कहने के लिए
2.	अप्पा	(अप्प) 2/1	आत्मा को
	ति–विहु	(तिविह) 2/1 वि	तीन प्रकार की
	मुणेवि	(मुण+एवि) संकृ	जानकर
	लहु	अव्यय	शीघ्र
	मूढउ	(मूढअ) 2/1 वि 'अ' स्वार्थिक	मूर्च्छित
	मेल्लहि	(मेल्ल) विधि 2/1 सक	छोड़
	भाउ	(भाअ) 2/1	आत्मावस्था (भाव) को
	मुणि	(मुण) विधि 2/1 सक	जान
	सण्णाणें	(स–ण्णाण) 3/1	स्वबोध के द्वारा
	णाणमउ	(णाणमअ) 1/1 वि	ज्ञानमय
	जो	(ज) 1/1 सवि	जो
	परमप्प–सहाउ	[(परम)+(अप्प)+(सहाउ)] [(परम) वि–(अप्प)–(सहाअ) 1/1]	परमात्म–स्वभाव
3.	मूढु	(मूढ) 1/1 वि	मूर्च्छित
	वियक्खणु	(वियक्खण) 1/1 वि	जाग्रत
	बंभु	(बंभ) 1/1	आत्मा
	परु	(पर) 1/1 वि	परम

---

1. पदों के अन्त में यदि 'उं, हुं, हिं, हं' इन चारों अक्षरों में से कोई भी अक्षर आ जाय तो इनका उच्चारण प्रायः ह्रस्व रूप से होता है। इसलिए यहाँ तुहुं का ह्रस्व रूप बताने के लिए तुहुँ किया गया है (हे.प्रा.व्या. 4–411)।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

अप्पा	(अप्प) 1/1	आत्मा
ति-विहु	(तिविह) 1/1 वि	तीन प्रकार की
हवेइ	(हव) व 3/1 अक	होती है
देहु	(देह) 2/1	देह को
जि	अव्यय	ही
अप्पा	(अप्प) 2/1	आत्मा
जो	(ज) 1/1 सवि	जो
मुणइ	(मुण) व 3/1 सक	मानता है
सो	(त) 1/1 सवि	वह
जणु	(जण) 1/1	मनुष्य
मूढु	(मूढ) 1/1 वि	मूर्च्छित
हवेइ	(हव) व 3/1 अक	होता है
4. देह-विभिण्णउ	[(देह)-(विभिण्णअ) 2/1 वि 'अ' स्वार्थिक]	देह से भिन्न
णाणमउ	(णाणमअ) 2/1 वि	ज्ञानमय
जो	(ज) 1/1 सवि	जो
परमप्पु	[(परम)+(अप्पु)] [(परम) वि-(अप्प) 2/1]	परम आत्मा को
णिएइ	(णिअ) व 3/1 सक	देखता है (समझता है)
परम-समाहि-परिट्ठियउ	[(परम) वि-(समाहि)-(परिट्ठियअ) भूकृ 2/1 अनि 'अ' स्वार्थिक]	परम समाधि में ठहरे हुए
पंडिउ	(पंडिअ) 1/1 वि	जाग्रत (तत्त्वज्ञ)
सो	(त) 1/1 सवि	वह
जि	अव्यय	ही
हवेइ	(हव) व 3/1 अक	होता है
5. अप्पा	(अप्प) 1/1	आत्मा
लद्धउ	(लद्धअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	प्राप्त किया गया
णाणमउ	(णाणमअ) 1/1 वि	ज्ञानमय
कम्म-विमुक्कें	[(कम्म)-(विमुक्क) 3/1 वि]	कर्मरहित होने के कारण
जेण	(ज) 3/1 स	जिसके द्वारा
मेल्लिवि	(मेल्ल+इवि) संकृ	छोड़कर
सयलु	(सयल) 2/1 वि	सकल
वि	अव्यय	ही
दव्वु	(दव्व) 2/1	द्रव्य को
परु	(पर) 2/1 वि	पर
सो	(त) 1/1 सवि	वह
परु	(पर) 1/1 वि	सर्वोच्च
मुणहि	(मुण) विधि 2/1 सक	समझो
मणेण	(मण) 3/1 क्रिया वि. की तरह प्रयुक्त	रुचिपूर्वक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

6.	णिच्चु	(णिच्च) 1/1 वि	नित्य
	णिरंजणु	(णिरंजण) 1/1 वि	निरंजन
	णाणमउ	(णाणमअ) 1/1 वि	ज्ञानमय
	परमाणंद-सहाउ	[(परम)+(आणंद)+(सहाउ)] [(परम) वि-(आणंद)-(सहाअ) 1/1]	परमानन्द स्वभाव
	जो	(ज) 1/1 सवि	जिसने
	एहउ	(एहअ) 2/1 वि 'अ' स्वार्थिक	ऐसो
	सो	(त) 1/1 सवि	वह
	संतु	(संत) भूकृ 1/1 अनि	सन्तुष्ट हुआ
	सिउ	(सिअ) 1/1 वि	मंगलयुक्त
	तासु	(त) 6/1 स	उसकी
	मुणिज्जहि[1]	(मुण+इज्ज+हि) विधि 2/1 सक	समझ
	भाउ	(भाअ) 2/1	अवस्था को
7.	जो	(ज) 1/1 सवि	जो
	णिय-भाउ	[(णिय) वि-(भाअ) 2/1]	निज स्वभाव को
	ण	अव्यय	नहीं
	परिहरइ	(परिहर) व 3/1 सक	छोड़ता है
	जो	(ज) 1/1 सवि	जो
	पर-भाउ	[(पर) वि-(भाअ) 2/1]	पर स्वभाव को
	ण	अव्यय	नहीं
	लेइ	(ले) व 3/1 सक	ग्रहण करता है
	जाणइ	(जाण) व 3/1 सक	जानता है
	सयलु	(सयल) 2/1 वि	सकल को
	वि	अव्यय	ही
	णिच्चु	(णिच्च) 1/1 वि	नित्य
	पर	(पर) 1/1 वि	सर्वोच्च
	सो	(त) 1/1 सवि	वह
	सिउ	(सिअ) 1/1 वि	मंगलयुक्त
	संतु	(संत) भूकृ 1/1 अनि	सन्तुष्ट हुआ
	हवेइ	(हव) व 3/1 अक	बनता है (बना है)
8.	जासु	(ज) 6/1 स	जिसका
	ण	अव्यय	न
	वण्णु	(वण्ण) 1/1	रंग
	ण	अव्यय	न

1. विधि अर्थ के मध्यम पुरुष के एकवचन में 'इज्जहि' प्रत्यय वैकल्पिक रूप से प्राप्त होता है (हे. प्रा. व्या. 3-175)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गंधु	(गंध) 1/1	गंध
रसु	(रस) 1/1	रस
जासु[1]	(ज) 6/1 स	जिसमें
ण	अव्यय	न
सद्दु	(सद्द) 1/1	शब्द
ण	अव्यय	न
फासु	(फास) 1/1	स्पर्श
जासु	(ज) 6/1 स	जिसका
ण	अव्यय	न
जम्मणु	(जम्मण) 1/1	जन्म
मरणु	(मरण) 1/1	मरण
ण	अव्यय	न
वि	अव्यय	ही
णाउ	(णाअ) 1/1	नाम
णिरंजणु	(णिरंजण) 1/1 वि	निष्कलंक
तासु	(त) 6/1 स	उसका
9. जासु	(ज) 6/1 स	जिसके
ण	अव्यय	न
कोहु	(कोह) 1/1	क्रोध
ण	अव्यय	न
मोहु	(मोह) 1/1	मोह
मउ	(मअ) 1/1	मद
जासु	(ज) 6/1 स	जिसके
ण	अव्यय	न
माय	(माया) 1/1	माया
ण	अव्यय	न
माणु	(माण) 1/1	मान
जासु	(ज) 4/1 स	जिसके लिए
ण	अव्यय	नहीं
ठाणु	(ठाण) 1/1	देश
ण	अव्यय	नहीं
झाणु	(झाण) 1/1	ध्यान
जिय	(जिय) 1/1	आत्मा
सो	(त) 1/1 सवि	वह
जि	अव्यय	ही
णिरंजणु	(णिरंजण) 1/1 वि	निष्कलंक

1. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-134)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाणु	(जाण) विधि 2/1 सक	जानो
10. अत्थि	अव्यय	है
ण	अव्यय	न
पुण्णु	(पुण्ण) 1/1	पुण्य
ण	अव्यय	न
पाउ	(पाअ) 1/1	पाप
जसु[1]	(ज) 6/1 स	जिसमें
अत्थि	अव्यय	है
ण	अव्यय	नहीं
हरिसु	(हरिस) 1/1	हर्ष
विसाउ	(विसाअ) 1/1	शोक
अत्थि	अव्यय	है
ण	अव्यय	नहीं
एक्कु	(एक्क) 1/1 वि	एक
वि	अव्यय	भी
दोसु	(दोस) 1/1	दोष
जसु[1]	(ज) 6/1 स	जिसमें
सो	(त) 1/1 सवि	वह
जि	अव्यय	ही
णिरंजणु	(णिरंजण) 1/1 वि	निष्कलंक
भाउ	(भाअ) 1/1	अवस्था
11. जासु	(ज) 4/1 स	जिसके लिए
ण	अव्यय	नहीं
धारणु	(धारण) 1/1	अवलम्बन
धेउ	(धेअ) 1/1	उद्देश्य
ण	अव्यय	नहीं
वि	अव्यय	भी
जासु	(ज) 4/1 स	जिसके लिए
ण	अव्यय	न
जंतु	(जंत) 1/1	यंत्र
ण	अव्यय	न
मंतु	(मंत) 1/1	मन्त्र
जासु	(ज) 4/1 स	जिसके लिए
ण	अव्यय	नहीं
मंडलु	(मंडल) 1/1	आसन

1. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-134)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुद्द	(मुद्दा) 1/1	मुद्रा
ण	अव्यय	न
वि	अव्यय	भी
सो	(त) 1/1 सवि	वह
मुणि	(मुण) विधि 2/1 सक	जानो
देउँ[1]	(देअ) 1/1	दिव्यात्मा
अणंतु	(अणंत) 1/1 वि	अनन्त
12. वेयहि	(वेय) 3/2	आगमों द्वारा
सत्थहि	(सत्थ) 3/2	शास्त्रों (ग्रन्थों) द्वारा
इंदियहि	(इंदिय) 3/2	इन्द्रियों द्वारा
जो	(ज) 1/1 सवि	जो
जिय	(जिय) 1/1	चैतन्य
मुणहु	(मुण+हु) (मुण) विधि 2/1 सक	जानो
	हु=अव्यय	निश्चय ही
ण	अव्यय	नहीं
जाइ	(जा) व 3/1 अक	होता है
णिम्मल-झाणहँ[2]	[(णिम्मल)-(झाण)[3] 6/2]	निर्मल ध्यान का
जो	(ज) 1/1 सवि	जो
विसउ	(विसअ) 1/1	विषय
सो	(त) 1/1 सवि	वह
परमप्पु	[(परम)+(अप्पु)] [(परम)वि-(अप्प) 1/1]	परमात्मा
अणाइ	(अणाइ) 1/1 वि	अनादि
13. जेहउ	(जेहअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	जिस तरह का
णिम्मलु	(णिम्मल) 1/1 वि	निर्मल
णाणमउ	(णाणमअ) 1/1 वि	ज्ञानमय
सिद्धिहिँ[4]→सिद्धिहि	(सिद्धि) 7/1	मोक्ष में
णिवसइ	(णिवस) व 3/1 अक	रहता है
देउ	(देअ) 1/1	दिव्यात्मा
तेहउ	(तेहअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	उस तरह का

1. पदों के अन्त में यदि 'उं, हुं, हिं, हं' इन चारों अक्षरों में से कोई भी अक्षर आ जाय तो इनका उच्चारण प्रायः ह्रस्व रूप से होता है। इसलिए यहां 'देउं' का ह्रस्व रूप बताने के लिए 'देउँ' किया गया है (हे.प्रा.व्या. 4-441)।
2. देखें टिप्पणी 1। यहाँ 'झाणहं' को 'झाणहँ' किया गया है।
3. यहाँ बहुवचन का एकवचनार्थ प्रयोग हुआ है (श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृ. 151)।
4. देखें टिप्पणी 1। यहाँ 'सिद्धिहिं' को 'सिद्धिहिँ' किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिवसइ	(णिवस) व 3/1 अक	रहता है
बंभु	(बंभ) 1/1	आत्मा
परु	(पर) 1/1 वि	परम
देहहँ[1]→देहहं	(देह)[2] 6/2	देहों में
मं	अव्यय	मत
करि	(कर) विधि 2/1 सक	कर
भेउ	(भेअ) 2/1	भेद
14. जें	(ज) 3/1 सवि	जिसके
दिट्ठें	(दिट्ठ) भूकृ 3/1 अनि	अनुभव किए गए होने के कारण
तुट्टन्ति	(तुट्ट) व 3/2 अक	नष्ट हो जाते हैं
लहु	अव्यय	शीघ्र
कम्मइँ	(कम्म) 1/2	कर्म
पुव्व-कियाइँ	[(पुव्व)-(कि→किय)भूकृ 1/2]	पूर्व में किए गए
सो	(त) 1/1 सवि	वह
परु	(पर) 1/1 सवि	परम
जाणहि	(जाण) विधि 2/1 सक	समझ
जोइया	(जोइय) 8/1 'य' स्वार्थिक	हे योगी
देहि	(देह) 7/1	देह में
वसंतु	(वस) वकृ 1/1	बसते हुए
ण	अव्यय	नहीं
काइँ	अव्यय	क्यों
15. जित्थु	अव्यय	जहाँ
ण	अव्यय	नहीं
इंदिय-सुह-दुहइँ	[(इंदिय)-(सुह)-(दुह) 1/2]	इन्द्रिय-सुख-दुःख
जित्थु	अव्यय	जहाँ
ण	अव्यय	नहीं
मण-वावारु	[(मण)-(वावार) 1/1]	मन का व्यापार
सो	(त) 1/1 सवि	वह
अप्पा	(अप्प) 1/1	आत्मा
मुणि	(मुण) विधि 2/1 सक	समझ
जीव	(जीव) 8/1	हे जीव
तुहुँ→तुहुं	(तुम्ह) 1/1 स	तू

1. यहाँ 'देहहं' का ह्रस्व रूप बताने के लिए 'देहहँ' किया गया है (हे.प्रा.व्या. 4-441)।
2. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-134)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अण्णु	(अण्ण) 2/1 वि	दूसरी को
परि	(परं+इ) परं=अव्यय	पूरी तरह से,
	इ=अव्यय	और
अवहारु	(अवहार+उ) विधि 2/1 सक	छोड़ दे
16. देहादेहहिँ→देहादेहहिं[1]	[(देह)+(अदेहहिं)] [(देह)-(अदेह) 7/1]	देह में और बिना देह के अपने में
जो	(ज) 1/1 सवि	जो
वसइ	(वस) व 3/1 अक	रहता है
भेयाभेय-णएण	[(भेय)+(अभेय)+(णएण)]	भेद और अभेद-
	[(भेय)-(अभेय)-(णअ) 3/1]	दृष्टि से
सो	(त) 1/1 सवि	वह
अप्पा	(अप्प) 1/1	आत्मा
मुणि	(मुण) विधि 2/1 सक	समझ
जीव	(जीव) 8/1	हे जीव
तुहुँ→तुहुं[1]	(तुम्ह) 1/1 स	तू
किं	(किं) 1/1 सवि	क्या
अण्णें	(अण्ण) 3/1 सवि	दूसरी
बहुएण	(बहुअ) 3/1 वि	बहुत से
17. जीवाजीव	[(जीव)+(अजीव)] [(जीव)-(अजीव) 2/1]	जीव और अजीव को
म	अव्यय	मत
एक्कु	(एक्क) 2/1 वि	एक
करि	(कर) विधि 2/1 सक	कर
लक्खण	(लक्खण) 6/1	लक्षण के
भेएं	(भेअ) 3/1	भेद से
भेउ	(भेअ) 1/1	भेद
जो	(ज) 1/1 सवि	जो
परु	(पर) 1/1 वि	अन्य
सो	(त) 1/1 सवि	वह
परु	(पर) 1/1 वि	अन्य
भणमि	(भण) व 1/1 सक	कहता हूँ
मुणि	(मुण) वि 2/1 सक	जान, समझ
अप्पा	(अप्प) 2/1	आत्मा को
अप्पु	(अप्प) 8/1	हे मनुष्य

1. पदों के अन्त में यदि 'उं, हुं, हिं, हं' इन चारों अक्षरों में से कोई भी अक्षर आ जाय तो इनका उच्चारण प्रायः ह्रस्व रूप से होता है। इसलिए यहां 'देहादेहहिं' और 'तुहुं' को क्रमशः 'देहादेहहिँ' और 'तुहुँ' किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभेउ	(अभेअ) 2/1 वि	अभेदरूप
18. अमणु	(अमण) 1/1 वि	मनरहित
अणिंदिउ	(अण+इंदिय) 1/1 वि	इन्द्रियरहित
णाणमउ	(णाणमअ) 1/1 वि	ज्ञानमय
मुत्ति-विरहिउ	[(मुत्ति)-(विरहिअ) 1/1 वि]	मूर्तिरहित (अमूर्त)
चिमित्तु	[(चित्त+मित्त→चिमित्त) 1/1]	चैतन्यस्वरूप
अप्पा	(अप्प) 1/1	आत्मा
इंदिय-विसउ	[(इंदिय)-(विसअ) 1/1]	इन्द्रियों का विषय
णवि	अव्यय	नहीं
लक्खणु	(लक्खण) 1/1	लक्षण
एहु	(एअ) 1/1 सवि	यह
णिरुत्तु	(णिरुत्त) भूकृ 1/1 अनि	बताया गया
19 भव-तणु-भोय-विरत्त-मणु	[(भव)-(तणु)-(भोय)-(विरत्त) भूकृ अनि-(मण) 1/1]	संसार, शरीर और भोगों से उदासीन हुआ मन
जो	(ज) 1/1 सवि	जो
अप्पा	(अप्प) 2/1	आत्मा को (का)
झाएइ	(झाअ) व 3/1 सक	ध्यान करता है
तासु	(त) 6/1 स	उसकी
गुरुक्की	(गुरुक्क→(स्त्री) गुरुक्की) 1/1 वि	घनी
वेल्लडी	(वेल्ल+अड→(स्त्री)वेल्लडी) 1/1 'अड' स्वा.	बेल
संसारिणि	(संसारिणी) 1/1 वि	संसाररूपी
तुट्टेइ	(तुट्ट) व 3/1 अक	नष्ट हो जाती है
20. देहादेवलि	[(देह→देहा)[1]-(देवल) 7/1]	देहरूपी मन्दिर में
जो	(ज) 1/1 सवि	जो
वसइ	(वस) व 3/1 अक	बसता है
देउ	(देअ) 1/1	दिव्य आत्मा
अणाइ-अणंतु	[(अणाइ) वि-(अणंत) 1/1 वि]	अनादि-अनन्त
केवल-णाण-फुरंत-तणु	[(केवल)-(णाण)-(फुरंत) वकृ-(तणु) 1/1]	केवलज्ञान से चमकता हुआ शरीर
सो	(त) 1/1 सवि	वह
परमप्पु	[(परम)+(अप्पु)] [(परम)-(अप्प) 1/1]	परम आत्मा
णिभंतु	(णिभंत) 1/1 वि	सन्देहरहित

1. समासगत शब्दों में रहे हुए स्वर अक्सर ह्रस्व के स्थान पर दीर्घ और दीर्घ के स्थान पर ह्रस्व हो जाया करते हैं (हे. प्रा. व्या. 1-4)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ–16

पाहुडदोहा

1.	गुरु	(गुरु) 1/1 वि	महान
	दिणयरु	(दिणयर) 1/1	सूर्य
	गुरु	(गुरु) 1/1 वि	महान
	हिमकरणु	(हिमकरण) 1/1	चन्द्रमा
	गुरु	(गुरु) 1/1 वि	महान
	दीवउ	(दीवअ) 1/1	दीपक
	गुरु	(गुरु) 1/1 वि	महान
	देउ	(देअ) 1/1	देव
	अप्पापरहं	[(अप्प→अप्पा)[1]–(पर) 6/2]	स्व-भाव और पर-भाव की
	परंपरहं	(परंपर) 6/2	परम्परा के
	जो	(ज) 1/1 सवि	जो
	दरिसावइ	(दरिस→दरिसाव) व प्रे 3/1 सक	समझाता है
	भेउ	(भेअ) 2/1	भेद को
2.	अप्पायत्तउ	[(अप्प)+(आयत्तउ)] [(अप्प)–(आयत्तअ)भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वा.]	स्वयं के अधीन
	जं	अव्यय	जो
	जि	अव्यय	भी
	सुहु	(सुह) 1/1 वि	सुख
	तेण	(त) 3/1 स	उससे
	जि	अव्यय	ही
	करि	(कर) विधि 2/1 सक	कर
	संतोसु	(संतोस) 2/1	संतोष
	परसुहु	[(पर) वि–(सुह) 2/1]	दूसरों के (अधीन) सुख को (का)
	वढ	(वढ) 8/1 वि	हे मूर्ख
	चिंततहं	(चिंत→चिंतंत) वकृ 6/2	विचार करते हुए (व्यक्तियों) के
	हियइ	(हियअ) 7/1	हृदय में
	ण	अव्यय	नहीं
	फिट्टइ	(फिट्ट) व 3/1 अक	मिटती है
	सोसु	(सोस) 1/1	कुम्हलाना
3.	आभुंजंता	(आ-भुंज→भुंजंत) वकृ 1/2	सब ओर से भोगते हुए

1. समास में ह्रस्व का दीर्घ हो जाता है (हेम प्राकृत व्याकरण 1–4)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विसयसुह	[(विसय)-(सुह) 2/2]	विषयों (से उत्पन्न) सुखों को
जे	(ज) 1/2 सवि	जो
ण	अव्यय	नहीं
वि	अव्यय	कभी
हियइ	(हियअ) 7/1	हृदय में
धरंति	(धर) व 3/2 सक	धारण करते हैं
ते	(त) 1/2 सवि	वे
सासयसुहु	[(सासय) वि-(सुह) 2/1]	अविनाशी सुख को
लहु	अव्यय	शीघ्र
लहहिं	(लह) व 3/2 सक	प्राप्त करते हैं
जिणवर	(जिणवर) 1/2	जिनवर
एम	अव्यय	इस प्रकार
भणंति	(भण) व 3/2 सक	कहते हैं
4. ण	अव्यय	न
वि	अव्यय	भी
भुंजंता	(भुंज→भुंजंत) वकृ 1/2	भोगते हुए
विसय	(विसय) 6/2	विषयों के
सुह	(सुह) 2/2	सुखों को
हियडइ	(हिय+अडअ→हियडअ) 7/1 'अडअ' स्वार्थिक	हृदय में
भाउ	(भाअ) 2/1	आसक्ति को
धरंति	(धर) व 3/2 सक	रखते हैं
सालिसित्थु	(सालिसित्थ) 1/1	सालिसित्थ
जिम	अव्यय	जैसे
वप्पुडउ	(वप्पुडा+अउ→वप्पुडउ) 1/1 वि (दे.)	बेचारा
णर	(णर) 1/2	मनुष्य
णरयहं	(णरय[1]) 6/2	नरकों में
णिवडंति	(णिवड) व 3/2 अक	गिरते हैं
5. आयइं[2]	(आयअ) 7/1	आपत्ति में
अडवड	(अडवड) 1/1 वि	अटपट
वडवडइ	(वडवड) व 3/1 अक	बड़बड़ाता है
पर	अव्यय	किन्तु
रंजिज्जइ	(रंज→रंजिज्ज) व कर्म 3/1 सक	खुश किया जाता
लोउ	(लोअ) 1/1	लोक
मणसुद्धइं[2]	[(मण)-(सुद्ध) 7/1 वि]	मन के कषायरहित होने पर

1. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है(हे.प्रा.व्या. 3-134)।
2. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृ. 146।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	णिच्चलठियइं	[(णिच्चल) वि-(ठिअ)[1] 7/1 वि]	अचलायमान और दृढ़ होने पर
	पाविज्जइ	(पाव) व कर्म 3/1 सक	प्राप्त किया जाता है
	परलोउ	[(पर) वि-(लोअ) 1/1]	पूज्यतम जीवन
6.	धंधइं[1]	(धंध) 7/1	धंधे में
	पडियउ	(पड→पडिय→पडियअ) भूकृ 1/1 'अ' स्वार्थिक	पड़ा हुआ
	सयलु	(सयल) 1/1 वि	सकल
	जगु	(जग) 1/1	जगत
	कम्मइं	(कम्म) 2/2	कर्मों को
	करइ	(कर) व 3/1 सक	करता है
	अयाणु	(अयाण) 1/1 वि	ज्ञानरहित
	मोक्खहं[2]	(मोक्ख) 6/1	मोक्ष के
	कारणु	(कारण) 2/1	कारण
	एक्कु	(एक्क) 1/1 वि	एक
	खणु	(खण) 1/1	क्षण
	ण	अव्यय	नहीं
	वि	अव्यय	भी
	चिंतइ	(चिंत) व 3/1 सक	विचारता है
	अप्पाणु	(अप्पाण) 2/1	आत्मा को
7.	अण्णु	(अण्ण) 1/1 वि	अन्य
	म	अव्यय	मत
	जाणहि	(जाण) विधि 2/1 सक	जानो
	अप्पणउ	(अप्पणअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	अपनी
	घरु	(घर) 2/1	घर
	परियणु	(परियण) 2/1	नौकर-चाकर
	तणु	(तणु) 2/1	शरीर
	इट्ठु	(इट्ठ) 2/1 वि	इच्छित वस्तु को
	कम्मायत्तउ	[(कम्म)+(आयत्तउ)] [(कम्म)-(आयत्तअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वा.]	कर्मों के अधीन
	कारिमउ	(कारिमअ) 1/1 वि	बनावटी
	आगमि	(आगम) 7/1	आगम में
	जोईहिं	(जोइ) 3/2	योगियों द्वारा
	सिट्ठु	(सिट्ठ) भूकृ 1/1 अनि	बताया गया
8.	जं	(ज) 1/1 सवि	जो

1. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 146।
2. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 151।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुक्खु	(दुक्ख) 1/1	दुःख
वि	अव्यय	ही
तं	(त) 1/1 सवि	वह
सुक्खु	(सुक्ख) 1/1	सुख
किउ	(किअ) भूकृ 1/1 अनि	माना गया
जं	(ज) 1/1 सवि	जो
सुहु	(सुह) 1/1	सुख
तं	(त) 1/1 सवि	वह
पि	अव्यय	ही
य	अव्यय	और
दुक्खु	(दुक्ख) 1/1	दुःख
पइं	(तुम्ह) 3/1 स	तेरे द्वारा
जिय	(जिय) 8/1	हे जीव
मोहहिं	(मोह) 3/2	आसक्ति के कारण
वसि	(वस) 7/1	परतन्त्रता में
गयइं[1]	(गय) भूकृ 1/2 अनि	हुआ है
तेण	अव्यय	इसलिए
ण	अव्यय	नहीं
पायउ	(पायअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	प्राप्त की गई
मुक्खु	(मुक्ख) 1/1	परम शान्ति
9. मोक्खु	(मोक्ख) 2/1	शान्ति
ण	अव्यय	नहीं
पावहि	(पाव) व 2/1 सक	पाता है (पायेगा)
जीव	(जीव) 8/1	हे जीव
तुहुं	(तुम्ह) 1/1 स	तू
धणु	(धण) 2/1	धन को
परियणु	(परियण) 2/1	नौकर-चाकर को
चिंतंतु	(चिंत→चिंतंत) वकृ 1/1	मन में रखते हुए
तो	अव्यय	तो
इ	अव्यय	भी
विचिंतहि	(विचिंत) व 2/1 सक	मन में लाता है
त	(त) 2/2 स	उनको
उ	अव्यय	आश्चर्य
जि	अव्यय	ही
त	(त) 2/2 स	उनको
उ	अव्यय	पादपूरक

1. कभी-कभी एकवचन के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिए बहुवचन का प्रयोग किया जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पावहि	(पाव) व 2/1 सक	पकड़ता है
सुक्खु	(सुक्ख) 2/1	सुख
महंतु	(महंत) 2/1 वि	विपुल
10. मूढा	(मूढ) 8/1 वि	हे मूर्ख
सयलु	(सयल) 1/1 वि	सब
वि	अव्यय	ही
कारिमउ	(कारिमअ) 1/1 वि	बनावटी
मं	अव्यय	मत
फुडु	(फुड) 2/1 वि	स्पष्ट
तुहुं	(तुम्ह) 1/1 स	तू
तुस	(तुस) /1	भूसे को
कंडि	(कंड) विधि 2/1 सक	कूट
सिवपइ	[(सिव)-(पअ) 7/1]	शिवपद में
णिम्मलि	(णिम्मल) 7/1 वि	निर्मल
करहि	(कर) विधि 2/1 सक	कर
रइ	(रइ) 2/1	अनुराग
घरु	(घर) 2/1	घर (को)
परियणु	(परियण) 2/1	नौकर-चाकर को
लहु	अव्यय	शीघ्र
छंडि	(छंड) संकृ	छोड़कर
11. विसयसुहा	[(विसय)-(सुह) 1/2]	विषय-सुख
दुइ	(दुइ) 6/2 वि	दो
दिवहडा	(दिवह + अड) 6/2 'अड' स्वार्थिक	दिन के
पुणु	अव्यय	और फिर
दुक्खहं	(दुक्ख) 6/2	दुःखों का
परिवाडि	(परिवाडि) 1/1	क्रम
भुल्लउ	(भुल्लअ) भूकृ 8/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	भूले हुए
जीव	(जीव) 8/1	हे जीव
म	अव्यय	मत
वाहि	(वह→वाह) प्रे. विधि 2/1 सक	चला
तुहुं	(तुम्ह) 1/1 स	तू
अप्पाखंधि	[(अप्प[1]→अप्पा) वि-(खंध) 7/1]	अपने कंधे पर
कुहाडि	(कुहाडि) 2/1	कुल्हाड़ी
12. उव्वलि	(उव्वल) विधि 2/1 सक	उपलेपन कर

1. समास में ह्रस्व का दीर्घ हो जाता है (हे.प्रा.व्या. 1-4)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चोप्पडि	(चोप्पड) विधि 2/1 सक	घी, तेल आदि लगा
चिट्ठ	(चिट्ठा) 2/2	चेष्टाएं
करि	(कर) विधि 2/1 सक	कर
देहि	(दा) विधि 2/1 सक	खिला
सुमिट्ठाहार	[(सुमिट्ठ) + (आहार)] [(सुमिट्ठ) वि-(आहार) 2/1]	सुमधुर आहार
सयल	(सयल) 1/1 वि	सब कुछ
वि	अव्यय	ही
देह	(देह) 4/1	देह के लिए
णिरत्थ	(णिरत्थ) 1/1 वि	व्यर्थ
गय	(गय) भूकृ 1/1 अनि	हुआ
जिह	अव्यय	जिस प्रकार
दुज्जणउवयार	[(दुज्जण)-(उवयार) 1/1]	दुर्जन के प्रति (किया गया) उपकार
13. अथिरेण	(अथिर) 3/1 वि	अस्थिर
थिरा	(थिर→(स्त्री) थिरा) 1/1 वि	स्थिर
मइलेण	(मइल) 3/1 वि	मलिन
णिम्मला	(णिम्मल→(स्त्री) णिम्मला) 1/1 वि	निर्मल
णिग्गुणेण	(णिग्गुण) 3/1 वि	गुणरहित
गुणसारा	[(गुण)-(सार→सारा) 1/1 वि]	गुणों (की प्राप्ति) के लिए श्रेष्ठ
काएण	(काअ) 3/1	शरीर से
जा	(जा) 1/1 सवि	जो
विढप्पइ	(विढप्प) व 3/1 अक	उदय होती है
सा	(ता) 1/1 सवि	वह
किरिया	(किरिया) 1/1	क्रिया
कि	अव्यय	क्यों
ण	अव्यय	नहीं
कायव्वा	(कायव्व) विधिकृ 1/1 अनि	की जानी चाहिए
14. अप्पा	(अप्प) 1/1	आत्मा
बुज्झिअउ	(बुज्झ→बुज्झिय) भूकृ 1/1	समझी गई
णिच्चु	(णिच्च) 1/1 वि	नित्य
जइ	अव्यय	यदि
केवलणाणसहाउ	[[(केवलणाण)-(सहाअ) 1/1] वि]	केवलज्ञान स्वभाववाली
ता	अव्यय	तो
पर	(पर) 6/1 वि	भिन्न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किज्जइ	(किज्जइ) व कर्म 3/1 सक अनि	की जाती है
काइं	अव्यय	क्यों
वढ	(वढ) 8/1	हे मूर्ख
तणु	(तणु) 6/1	शरीर के
उप्परि	अव्यय	ऊपर
अणुराउ	(अणुराअ) 1/1	आसक्ति
15. जसु	(ज) 6/1 स	जिसके
मणि	(मण) 7/1	हृदय में
णाणु	(णाण) 1/1	ज्ञान
ण	अव्यय	नहीं
विप्फुरइ	(विप्फुर) व 3/1 अक	फूटता है
कम्महं	(कम्म) 6/2	कर्मों के
हेउ	(हेउ) 2/2	कारणों को
करंतु	(कर→करंत) वकृ 1/1	करता हुआ
सो	(त) 1/1 सवि	वह
मुणि	(मुणि) 1/1	मुनि
पावइ	(पाव) व 3/1 सक	पाता है
सुक्खु	(सुक्ख) 2/1	सुख
ण	अव्यय	नहीं
वि	अव्यय	भी
सयलइं	(सयल) 2/2 वि	सभी
सत्थ	(सत्थ) 2/2	शास्त्रों को
मुणंतु	(मुण→मुणंत) वकृ 1/1	जानते हुए
16. बोहिविवज्जिउ	[(बोहि)-(विवज्ज→विवज्जिअ) भूकृ 8/1]	आध्यात्मिक ज्ञान से रहित (के बिना)
जीव	(जीव) 8/1	हे जीव
तुहुं	(तुम्ह) 1/1 स	तू
विवरिउ	(विवरिअ) 2/1 वि	असत्य
तच्चु	(तच्च) 2/1	तत्व को
मुणेहि	(मुण) व 2/1 सक	मानता है
कम्मविणिम्मिय	[(कम्म)-(विणिम्म→विणिम्मिअ) भूकृ 2/2]	कर्मों से रचित
भावडा	(भाव+अड) 2/2 'अड' स्वार्थिक	चित्तवृत्तियों को
ते	(त) 2/2 सवि	उन
अप्पाण	(अप्पाण) 6/1	स्वयं की
भणेहि	(भण) व 2/1 सक	समझता है
17. ण	अव्यय	न
वि	अव्यय	ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुहं	(तुम्ह) 1/1 स	तू
पंडिउ	(पंडिअ) 1/1 वि	पंडित
मुक्खु	(मुक्ख) 1/1 वि	मूर्ख
ण	अव्यय	न
वि	अव्यय	ही
ण	अव्यय	न
वि	अव्यय	ही
ईसरु	(ईसर) 1/1 वि	धनी
ण	अव्यय	न
वि	अव्यय	ही
णीसु	[(ण)+(ईसु)]	
	ण=अव्यय, ईसु (ईस) 1/1 वि	न, धनी→निर्धन
ण	अव्यय	न
वि	अव्यय	ही
गुरु	(गुरु) 1/1	गुरु
कोइ[1]	(क) 1/1 सवि	कोई
वि	अव्यय	ही
सीसु	(सीस) 1/1	शिष्य
ण	अव्यय	न
वि	अव्यय	ही
सव्वइं	(सव्व) 1/2 सवि	सभी
कम्मविसेसु	[(कम्म)-(विसेस) 1/1]	कर्मों की विशेषता

18. ण	अव्यय	न
वि	अव्यय	ही
तुहं	(तुम्ह) 1/1 स	तू
कारणु	(कारण) 1/1	कारण
कज्जु	(कज्ज) 1/1	कार्य
ण	अव्यय	न
वि	अव्यय	ही
ण	अव्यय	न
वि	अव्यय	ही
सामिउ	(सामिअ) 1/1	स्वामी
ण	अव्यय	न
वि	अव्यय	ही
भिच्चु	(भिच्च) 1/1	नौकर
सूरउ	(सूर-अ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	शूरवीर

1. अनिश्चितता के लिए 'इ' जोड़ दिया जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कायरु	(कायर) 1/1 वि	कायर
जीव	(जीव) 8/1	हे मनुष्य
ण	अव्यय	न
वि	अव्यय	ही
ण	अव्यय	न
वि	अव्यय	ही
उत्तमु	(उत्तम) 1/1 वि	उच्च
ण	अव्यय	न
वि	अव्यय	ही
णिच्चु	(णिच्च) 1/1 वि	नीच
19. पुण्णु	(पुण्ण) 1/1	पुण्य
वि	अव्यय	और
पाउ	(पाअ) 1/1	पाप
वि	अव्यय	और
कालु	(काल) 1/1	मृत्यु
णहु	अव्यय	नहीं
धम्मु	(धम्म) 1/1	धर्म
अहम्मु	(अहम्म) 1/1	अधर्म
ण	अव्यय	नहीं
काउ	(काअ) 1/1	शरीर
एक्कु	(एक्क) 1/1 वि	कुछ
वि	अव्यय	भी
जीव	(जीव) 8/1	हे मनुष्य
ण	अव्यय	नहीं
होहि	(हो) व 2/1 अक	है
तुहुं	(तुम्ह) 1/1 स	तू
मिल्लिवि	(मिल्ल+इवि) संकृ	छोड़कर
चेयणभाउ	[(चेयण) वि-(भाअ) 2/1]	ज्ञानात्मक स्वरूप को
20. ण	अव्यय	न
वि	अव्यय	पादपूरक
गोरउ	(गोर-अ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	गोरा
ण	अव्यय	न
वि	अव्यय	पादपूरक
सामलउ	(सामल-अ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	काला
ण	अव्यय	न
वि	अव्यय	पादपूरक
तुहुं	(तुम्ह) 1/1 स	तू

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक्कु	(एक्क) 1/1 वि	कोई
वि	अव्यय	भी
वण्णु	(वण्ण) 1/1	वर्ण
ण	अव्यय	न
वि	अव्यय	ही
तणुअंगउ	[(तणु)-(अंगअ) 1/1 वि]	दुर्बल अंगवाला
थूलु	(थूल) 1/1 वि	स्थूल
ण	अव्यय	न
वि	अव्यय	ही
एहउ	अव्यय	इस प्रकार
जाणि	(जाण) विधि 2/1 सक	समझ
सवण्णु	(स-वण्ण) 2/1	स्व-वर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ–17

सावयधम्मदोहा

1.	दुज्जणु	(दुज्जण) 1/1 वि	दुर्जन
	सुहियउ	(सुह→सुहिय→सुहियअ) भूकृ 1/1 'अ' स्वा.	सुखी
	होउ	(हो→होअ) विधि 3/1 अक	होवे
	जगि	(जग) 7/1	जग में
	सुयणु	(सुयण) 1/1	सज्जन
	पयासिउ	(पयास→पयासिअ) भूकृ 1/1	विख्यात किया गया
	जेण	(ज) 3/1 स	जिसके द्वारा
	अमिउ	(अमिअ) 1/1	अमृत
	विसें	(विस) 3/1	विष के द्वारा
	वासरु	(वासर) 1/1	दिन
	तमिण	(तम→तमेण→तमिण) 3/1	अन्धकार के द्वारा
	जिम	अव्यय	जिस प्रकार
	मरगउ	(मरगअ) 1/1	मरकत मणि (पन्ना)
	कच्चेण	(कच्च) 3/1	काँच से
2	जिह	अव्यय	जिस प्रकार
	समिलहिं[1]	(समिला) 4/1	समिला (लकड़ी की खोल) के लिए
	सायरगयहिं[1]	[(सायर)-(गय) भूकृ 4/1 अनि]	सागर में लुप्त
	दुल्लहु	(दुल्लह) 1/1 वि	दुर्लभ
	जूयहु[2]	(जूय) 6/1	जुँवे का
	रंधु	(रंध) 1/1	छिद्र
	तिह	अव्यय	उसी प्रकार
	जीवहं	(जीव) 4/2	जीवों के लिए
	भवजलगयहं	[(भव)-(जल)-(गय) भूकृ 4/2 अनि]	संसाररूपी पानी (सागर) में पड़े हुए
	मणुयत्तणि[3]	(मणुयत्तण) 3/1	मनुष्यत्व से
	सम्बन्धु	(सम्बन्ध) 1/1	सम्बन्ध
3.	मणवयकायहिं	[(मण)-(वय)-(काय) 3/2]	मन-वचन-काय से

1. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृ. 151।
2. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 150।
3. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 144।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दय	(दया) 2/1	दया
करहि	(कर) विधि 2/1 सक	करो
जेम	अव्यय	जिससे
ण	अव्यय	न
ढुक्कइ	(ढुक्क) व 3/1 सक	प्रवेश करता है (प्रवेश करे)
पाउ	(पाअ) 1/1	पाप
उरि	(उर) 7/1	छाती में
सण्णाहें	(सण्णाह) 3/1	कवच के कारण
बद्धइण[1]	(बद्धअ→बद्धएण→बद्धइण) भूकृ 3/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	बंधे हुए
अवसि	अव्यय	अवश्य (निश्चय ही)
ण	अव्यय	नहीं
लग्गइ	(लग्ग) व 3/1 अक	लगता है
घाउ	(घाअ) 1/1	घाव
4. पसुधणधण्णइं	[(पसु)-(धण)-(धण्ण)[2] 7/1]	पशु, धन, धान्य
खेत्तियइं	(खेत्त+इय→खेत्तिय) 7/1 'इय' स्वार्थिक	खेत में
करि	(कर) विधि 2/1 सक	कर
परिमाणपवित्ति	[(परिमाण)-(पवित्ति) 2/1]	परिमाण से प्रवृत्ति
बलियइं	(बलिय) 1/2 वि	गाढ़े (सबल)
बहुयइं	(बहुय) /2 वि	बहुत
बंधणइं	(बंधण) 1/	बन्धन
दुक्करु	(दुक्कर) 1/1 वि	कठिन
तोडहुं[3]	(तोड) 4/1	तोड़ने के लिए
जंति	(जा) व 3/2 अक	होते हैं
5. भोगहं	(भोग) 6/2	भोगों का
करहि	(कर) विधि 2/1 सक	कर
पमाणु	(पमाण) 2/1	परिमाण
जिय	(जिय) 8/1	हे मनुष्य
इंदिय	(इंदिय) 2/2	इन्द्रियों को
म	अव्यय	मत
करि	(कर) विधि 2/1 सक	बना
सदप्प	(सदप्प) 2/2 वि	दम्भी
हुंति	(हु) व 3/2 अक	होते हैं

1. एण→इण (श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृ. 143)।
2. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 146।
3. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 151।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ण	अव्यय	नहीं
भल्ला	(भल्ल→(स्त्री) भल्ला) 1/2 वि	अच्छे
पोसिया	(पोस→पोसिय→(स्त्री) पोसिया) भूकृ 1/2	पाले गये
दुद्धें	(दुद्ध) 3/1	दूध से
काला	(काला) 1/2 वि	काले
सप्प	(सप्प→(स्त्री) सप्पा) 1/2	सर्प
6. दाणु	(दाण) 1/1	दान
कु त्तहं	(कुपत्त) 4/2	कुपात्रों के लिए
दोसडउ	(दोस+अड) 1/1 'अड' स्वार्थिक	दूषण
इ	अव्यय	ही
बोल्लिज्जइ	(बोल्ल) व कर्म 3/1 सक	कहा जाता है
ण	अव्यय	नहीं
हु	अव्यय	निश्चय ही
भंति	(भंति) 1/1	भ्रान्ति
पत्थरु	(पत्थर) 2/1	पत्थर को
पत्थरणाव	[(पत्थर)-(णाव) 1/1]	पत्थर की नाव
कहिं	अव्यय	कहीं
दीसइ	(दीसइ) व कर्म 3/1 सक अनि	देखी जाती है (देखी गई)
उत्तारंति	(उत्तार→उत्तारंत→(स्त्री)उत्तारंती) वकृ 1/1	पार पहुंचाती हुई
7. जइ	अव्यय	यदि
गिहत्थु	(गिहत्थ) 1/1	गृहस्थ
दाणेंण	(दाण) 3/1	दान के (से)
विणु	अव्यय	बिना
जगि	(जग) 7/1	जगत में
पभणिज्जइ	(पभण) व कर्म 3/1 सक	कहा जाता है
कोइ[1]	(क) 1/1 स	कोई
ता	अव्यय	तो
गिहत्थु	(गिहत्थ) 1/1	गृहस्थ
पंखि	(पंखी) 1/1	पक्षी
वि	अव्यय	भी
हवइ	(हव) व 3/1 अक	होता है (हो जायेगा)
जें	अव्यय	चूंकि
घरु	(घर) 1/1	घर
ताह[2]	(त) 6/1 स	उसके

1. अनिश्चितता के लिए 'इ' प्रत्यय जोड़ दिया जाता है।
2. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 150।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि	अव्यय	भी
होइ	(हो) व 3/1 अक	होता है
8. काइं	(काइं) 1/1 सवि	क्या
बहुत्तइं	(बहुत्तअ) 3/1 वि 'अ' स्वार्थिक	बहुत
संपयइं	(संपयअ) 3/1 'अ' स्वार्थिक	सम्पदा से
जइ	अव्यय	जो
किविणहं	(किविण) 6/2 वि	कृपणों के
घरि	(घर) 7/1	घर में
होइ	(हो) व 3/1 अक	होती है
उवहिणीरु	[(उवहि)-(णीर) 1/1]	समुद्र का जल
खारें	(खार) 3/1	खार से
भरिउ	(भर→भरिअ) भूकृ 1/1	भरा हुआ
पाणिउ	(पाणिअ) 2/1	पानी को
पियइ	(पिय) व 3/1 सक	पीता है
ण	अव्यय	नहीं
कोइ[1]	(क) 1/1 सवि	कोई
9. पत्तहं	(पत्त) 4/2	पात्रों के लिए
दिण्णउ	(दिण्णअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	दिया हुआ
थोवडउ	(थोव + अडअ) 1/1 वि 'अडअ' स्वार्थिक	थोड़ा
रे	अव्यय	अरे
जिय	(जिय) 8/1	हे मनुष्य
होइ	(हो) व 3/1 अक	होता है
बहुत्तु	(बहुत्त) 1/1 वि	बहुत
वडह[2]	(वड) 6/1	बट का
बीउ	(बीअ) 1/1	बीज
धरणिहि	(धरणि) 7/1	पृथ्वी पर (में)
पडिउ	(पड→पडिअ) भूकृ 1/1	पड़ा हुआ
वित्थरु	(वित्थर) 2/1 वि	विस्तार
लेइ	(ले) व 3/1 सक	ले लेता है
महंतु	(महंत) 2/1 वि	बड़ा
10. काइं	(काइं) 1/1 सवि	क्या
बहुत्तइं	(बहुत्तअ) 3/1 वि 'अ' स्वार्थिक	बहुत

1. अनिश्चितता के लिए 'इ' प्रत्यय जोड़ दिया जाता है।
2. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 150।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जंपियइं	(जंप→जंपिय→जंपियअ) भूकृ 3/1 'अ' स्वा.	कहे गए से
जं	(ज) 1/1 सवि	जो
अप्पहु	(अप्प) 4/1	अपने लिए
पडिकूलु	(पडिकूल) 1/1 वि	प्रतिकूल
काइं	(काइं) 1/1 सवि	कैसे
मि	अव्यय	भी
परहु	(पर) 4/1 वि	दूसरों के लिए
ण	अव्यय	नहीं
तं	(त) 2/1 स	उसको
करहि	(कर) विधि 2/1 सक	कर
एहु	(एत) 1/1 स	यह
जि	अव्यय	ही
धम्महु	(धम्म) 6/1	धर्म का
मूलु	(मूल) 1/1	मूल
11. धम्मु	(धम्म) 1/1	धर्म
विसुद्धउ	(विसुद्धअ) भूकृ 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक	शुद्ध
तं	(त) 1/1 सवि	वह
जि	अव्यय	ही
पर	अव्यय	पूरी तरह से
जं	(ज) 1/1 सवि	जो
किज्जइ	(कि+इज्ज) व कर्म 3/1 सक	किया जाता है
काएण	(काअ) 3/1	काया से (अपने आप से)
अहवा	अव्यय	और
तं	(त) 1/1 सवि	वह
धणु	(धण) 1/1	धन
उज्जलउ	(उज्जलअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक	उज्ज्वल
जं	(ज) 1/1 सवि	जो
आवइ	(आव) व 3/1 अक	आता है
णाएण	(णाअ) 3/1	न्याय से
12. अवरु	अव्यय	और
वि	अव्यय	भी
जं	(ज) 1/1 सवि	जो
जहिं	अव्यय	जहाँ
उवयरइ	(उवयर) व 3/1 सक	उपकार कर (सकता) है
तं	(त) 1/1 सवि	वह
उवयारहि	(उवयार) विधि 2/1 सक	उपकार करें
तित्थु	अव्यय	वहाँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लइ	(लय→लअ) संकृ	ग्रहण करके
जिय	(जिय) 8/1	हे मनुष्य
जीवियलाहडउ	[(जीविय)-(लाह+अडअ) 2/1 'अडअ' स्वा.]	जीवन के लाभ को
देहु	(देह) 2/1	देह को
म	अव्यय	मत
लेहु	(ले) विधि 2/1 सक	बना
णिरत्थु	(णिरत्थ) 2/1 वि	निरर्थक
13. एक्कहिं	(एक्क) 7/1 वि	एक (विषय) में
इंदियमोक्कलउ	[(इंदिय)-(मोक्कलअ) 1/1 वि (दे) 'अ' स्वा.]	अनियन्त्रित इन्द्रिय
पावइ	(पाव) व 3/1 सक	पाता है
दुक्खसयाइं	[(दुक्ख)-(सय) 2/2 वि]	सैकड़ों दुःखों को
जसु	(ज) 6/1 स	जिसकी
पुणु	अव्यय	फिर
पंच वि	(पंच) 1/2 वि	पाँचों ही
मोक्कला	(मोक्कल) 1/2 वि (दे)	स्वच्छन्द
तसु	(त) 6/1 स	उसका (उसके लिए)
पुच्छिज्जइ	(पुच्छ→पुच्छिज्ज) व कर्म 3/1 सक	पूछा जाता है (पूछा जाय)
काइं	(काइं) 1/1 सवि	क्या
14. जइ	अव्यय	यदि
इच्छहि	(इच्छ) व 2/1 सक	चाहता है
संतोसु	(संतोस) 2/1	सन्तोष
करि	(कर) विधि 2/1 सक	कर
जिय	(जिय) 8/1	हे मनुष्य
सोक्खहं[1]	(सोक्ख) 6/2	सुखों को
विउलाहं[1]	(विउल) 6/2 वि	विपुल
अहवा	अव्यय	वाक्यालंकार
णंदु	(णंद) 2/1	हर्ष
ण	(त) 4/2 सवि (प्राकृत)	उनके लिए
को	(क) 1/1 सवि	कौन
करइ	(कर) व 3/1 सक	करता है
रवि	(रवि) 2/1	सूर्य को
मेल्लिवि	(मेल्ल+इवि) संकृ	छोड़कर
कमलाहं	(कमल) 4/2	कमलों के लिए
15. मणुयत्तणु	(मणुयत्तण) 2/1	मनुष्यता को

1. कभी-कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे.प्रा.व्या. 3-134)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुल्लहु	(दुल्लह) 2/1 वि	दुर्लभ
लहिवि	(लह+इवि) संकृ	पाकर
भोयहं	(भोय) 4/2	भोगों के लिए
पेरिउ	(पेर→पेरिअ) भूकृ 1/1	लगा दिया गया
जेण	(ज) 3/1 स	जिसके द्वारा
इंधणकज्जें	[(इंधण)-(कज्ज) 3/1]	ईंधन के प्रयोजन से
कप्पयरु	(कप्पयरु) 1/1	कल्पतरु
मूलहो[1]	(मूल) 5/1	मूल से
खंडिउ	(खंड→खंडिअ) भूकृ 1/1	काटा गया
तेण	(त) 3/1 स	उसके द्वारा

●

1. श्रीवास्तव, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ 148।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट–1

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महाकवि स्वयंभू

महाकवि स्वयंभू अपभ्रंश साहित्य के सर्वाधिक चर्चित, प्रसिद्ध एवं यशस्वी कवि हैं। स्वयंभू अपभ्रंश के प्रथम ज्ञात कवि हैं। इन्हें अपभ्रंश साहित्य का आचार्य भी कहा जाता है। स्वयंभू अपने समय के उच्चकोटि के विद्वान थे। वे प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश के पण्डित और छन्दशास्त्र, अलंकार, व्याकरण, काव्य आदि के ज्ञाता थे।

स्वयंभू का जन्म कर्नाटक के एक साहित्यिक घराने में हुआ था। इनके पिता मारुतदेव और मां पद्मिनी थी। त्रिभुवन इनके पुत्र थे। त्रिभुवन ने ही स्वयंभू की अधूरी कृतियों को पूरा किया।

स्वयंभू का समय 7–8वीं शताब्दी माना जाता है।

स्वयंभू की रचनाओं में उनके प्रदेश का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। उनके आश्रयदाता धनञ्जय, धवलइय और बन्दइय नाम से दाक्षिणात्य प्रतीत होते हैं इसलिए यह तो निश्चित है कि उनका कार्य-क्षेत्र दक्षिण प्रदेश था।

महाकवि की ज्ञात कृतियां तीन हैं—

1. पउमचरिउ 2. रिट्ठणेमिचरिउ तथा 3. स्वयंभूछन्द

1. पउमचरिउ—रामकथा पर आधारित एक श्रेष्ठ काव्य है। इसमें आचार्य विमलसूरि के प्राकृतभाषी 'पउमचरियं' और आचार्य रविषेण के संस्कृतभाषी 'पद्मपुराण' की कथा के आधार पर अपभ्रंश में रामकथा प्रस्तुत की गई है।

2. रिट्ठणेमिचरिउ—कवि का दूसरा महाकाव्य है रिट्ठणेमिचरिउ। यह 'हरिवंशपुराण' के नाम से भी प्रसिद्ध है। इस काव्य में जैनों के 22वें तीर्थंकर नेमिनाथ, श्रीकृष्ण एवं पाण्डवों का वर्णन है।

3 स्वयंभूछन्द—यह कवि की तीसरी कृति है। यह छन्दशास्त्र पर आधारित रचना है। इसके प्रारम्भ के तीन अध्यायों में प्राकृत के वर्णवृत्तों का तथा शेष पांच अध्यायों में अपभ्रंश के छन्दों का विवेचन किया गया है। इससे सिद्ध होता है कि स्वयंभू का प्राकृत और अपभ्रंश दोनों भाषाओं पर समान अधिकार था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारतीय वाङ्मय के लोकभाषा काव्य में स्वयंभू सर्वोत्कृष्ट कवि सिद्ध होते हैं। उन्होंने जनसामान्य की भाषा अपभ्रंश में काव्य रचना कर साहित्य के क्षेत्र में अपभ्रंश को गौरवपूर्ण स्थान दिलाया। लोकभाषा अपभ्रंश को उच्चासन पर प्रतिष्ठित कराने का श्रेय स्वयंभू को ही है।

विशेष अध्ययन के लिए सहायक ग्रन्थ —

1. **पउमचरिउ** भाग 1-5, महाकवि स्वयंभू, संपा.–हरिवल्लभ भायाणी, अनु.–डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन, प्रकाशक–भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली।

2. **रिट्ठणेमिचरिउ**—भाग-1, महाकवि स्वयंभू, सम्पा.–अनु.–डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन, प्रकाशक–भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली।

3. **हिन्दी काव्यधारा**—डॉ. राहुल सांकृत्यायन, प्रकाशक–किताब महल, इलाहाबाद।

4. **जैनविद्या** (शोध पत्रिका)–1, स्वयंभू विशेषांक, अप्रेल–1984, प्रकाशक–जैनविद्या संस्थान श्रीमहावीरजी, भट्टारकजी की नसियां, सवाई रामसिंह रोड, जयपुर–4।

5. **अपभ्रंश भारती** (पत्रिका)–1, स्वयंभू विशेषांक, जनवरी–1990, प्रकाशक–अपभ्रंश साहित्य अकादमी, दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी, भट्टारकजी की नसियां, सवाई रामसिंह रोड, जयपुर–4।

6. **महाकवि स्वयंभू**—डॉ. संकटाप्रसाद उपाध्याय, प्रकाशक–भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महाकवि पुष्पदन्त

महाकवि पुष्पदन्त अपभ्रंश के जाने-माने, शीर्षस्थ साहित्यकार हैं। अपभ्रंश भाषा के सन्दर्भ में महाकवि पुष्पदन्त का स्थान महाकवि स्वयंभू के समान ही प्रमुख है।

पुष्पदन्त दक्षिण भारत के कर्नाटक प्रदेश के 'बरार' के निवासी थे। ये कश्यपगोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम केशव भट्ट और माता का नाम मुग्धादेवी था। आरम्भ में कवि शैव मतावलम्बी थे। बाद में किसी जैन मुनि के उपदेश से प्रभावित होकर जैन धर्मावलम्बी हो गये और मान्यखेट में आकर मंत्री भरत के अनुरोध पर जिनभक्ति से प्रेरित काव्य-सृजन में प्रवृत्त हुए।

महाकवि पुष्पदन्त का समय 10वीं शताब्दी माना जाता है।

इनकी तीन रचनाएं है—1. तिसट्ठि महापुरिसगुणालंकार 2. णायकुमारचरिउ तथा 3. जसहरचरिउ।

1 तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकार/महापुराण यह ग्रन्थ 'महापुराण' के नाम से भी प्रसिद्ध है। महाकवि की यह रचना अपभ्रंश की विशिष्ट कृति है। महापुराण दो खण्डों में विभक्त है—(i) आदिपुराण और (ii) उत्तरपुराण। इन दोनों खण्डों में त्रेसठ शलाका पुरुषों अर्थात् 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 वासुदेव (नारायण) तथा 9 प्रतिवासुदेव (प्रति-नारायण) के चरित वर्णित हैं।

2. णायकुमारचरिउ— यह खण्ड काव्य है। इस काव्य में श्रुतपंचमी का माहात्म्य बतलाते हुए नागकुमार के चरित का वर्णन किया गया है।

3. जसहरचरिउ—कवि पुष्पदन्त विरचित सबसे अधिक प्रसिद्ध रचना है। यह अपभ्रंश भाषा की एक उत्तम कृति मानी जाती है। यह भी एक चरित-ग्रन्थ है। यह पुण्यपुरुष 'यशोधर' की जीवनकथा पर आधारित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेष अध्ययन के लिए सहायक ग्रन्थ—

1. **महापुराण**—महाकवि पुष्पदन्त, सम्पा-डॉ. पी. एल. वैद्य, अनु.-डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन, प्रकाशक–भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन ।

2. **णायकुमारचरिउ**—महाकवि पुष्पदन्त, सम्पा.–अनु.–डॉ. हीरालाल जैन, प्रकाशक–भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन ।

3. **जसहरचरिउ**—महाकवि पुष्पदन्त, सम्पा.–डा. पी. एल. वैद्य, अनु.–डॉ. हीरालाल जैन, प्रकाशक–भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन ।

4. **महाकवि पुष्पदन्त**—डॉ. राजनारायण पाण्डेय, प्रकाशक–चिन्मय प्रकाशन, जयपुर–3 ।

5. **जैनविद्या (पत्रिका)**—2, 3, पुष्पदन्त विशेषांक, अप्रेल, 1985, नवम्बर, 1985, प्रकाशक–जैनविद्या संस्थान श्रीमहावीरजी, भट्टारकजी की नसियां, सवाई रामसिंह रोड, जयपुर–4 ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महाकवि वीर

महाकवि वीर अपभ्रंश भाषा के महान कवियों में से एक हैं। वीर प्रारम्भ में संस्कृत भाषा में काव्य-रचना में प्रवृत्त थे किन्तु अपने पिता के मित्र श्रेष्ठी तक्खड़ के प्रोत्साहित करने पर इन्होंने लोकभाषा अपभ्रंश में काव्य-रचना की।

वीर का जन्म मालवदेश के गुलखेड़ नामक ग्राम में जैन धर्मानुयायी, लाडवर्ग गोत्र में हुआ था। इनकी मां का नाम श्रीसंतुवा था। इनके पिता देवदत्त स्वयं एक महाकवि थे।

इनका जीवनकाल विक्रम सम्वत् 1010–1085 तक माना गया है। इस प्रकार इनका समय 10–11वीं शती सिद्ध होता है।

महाकवि वीर अपभ्रंश के उन शीर्षस्थ साहित्यकारों में से हैं जो अपनी एकमात्र कृति के कारण सुविख्यात हुए हैं। 'जंबूसामिचरिउ' इनकी एकमात्र कृति है।

जंबूसामिचरिउ—इस काव्य में जैनधर्म के अन्तिम केवलि 'जंबूस्वामी' का जीवन-चरित ग्यारह सन्धियों में गुम्फित है।

जंबूस्वामी भगवान महावीर के गणधर सुधर्मा स्वामी के शिष्य थे। भगवान महावीर के निर्वाण के 64 वर्ष पश्चात इनका निर्वाण हुआ था।

जंबूस्वामी का जीवनचरित साहित्यकारों एवं धर्मप्रेमियों में अत्यन्त लोकप्रिय रहा है, इसका कारण है इनके चरित्र की विशेषता। इनके जीवन का घटनाक्रम अत्यन्त रोचक एवं अनूठा है। ऐसा घटनाक्रम फिर कभी न देखा गया, न साहित्य में अन्यत्र पढ़ा गया न सुना गया। जंबू कुमारावस्था में विवाह के बन्धन में न फंसकर संन्यास ग्रहण करना चाहते थे परन्तु परिवारजनों के बहुत आग्रह पर जंबू सशर्त विवाह के लिए अपनी स्वीकृति दे देते हैं। उनका कहना था कि मैं एक शर्त पर विवाह कर सकता हूँ—विवाह के पश्चात मैं अपनी पत्नियों के साथ एक रात व्यतीत करूंगा, यदि उस एक रात में वे मुझे संसार की ओर आकर्षित कर लेती हैं तो मैं संन्यास-विचार को त्यागकर गृहस्थ जीवन अंगीकार कर लूंगा अन्यथा प्रातः होते ही मैं संन्यास धारण कर लूंगा। और इस शर्त में जीत जंबूकुमार की ही होती है।

इस कथानक को, महाकाव्य के तत्वों का समावेश कर महाकाव्योचित गरिमा प्रदान-कर महाकवि ने अपभ्रंश वाङ्मय को अलंकृत किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेष अध्ययन के लिए सहायक ग्रन्थ—

1. **जंबूसामिचरिउ**—महाकवि वीर, सम्पा.–अनु.–डॉ. विमलप्रकाश जैन, प्रकाशक–भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन ।

2. **जैनविद्या** (पत्रिका) – 5-6, वीर विशेषांक, अप्रेल 1987, प्रकाशक–जैनविद्या संस्थान श्रीमहावीरजी, दिगम्बर जैन नसियां भट्टारकजी, सवाई रामसिंह रोड, जयपुर–4 ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि नयनन्दि मुनि

अपभ्रंश के जाने-माने रचनाकारों में से एक हैं–कवि नयनन्दि मुनि। नयनन्दि मुनि जैन आचार्य श्री कुन्दकुन्द की परम्परा में हुए हैं। कवि नयनन्दि मुनि काव्यशास्त्र में निष्णात; प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश के उच्चकोटि के विद्वान और छन्द शास्त्र के ज्ञाता थे।

इनका स्थितिकाल विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी माना गया है। कवि नयनन्दि की दो कृतियां हैं—1. सुदंसणचरिउ और 2. सयलविहिविहाणकव्व। इनमें से 'सुदंसणचरिउ' की रचना कवि नयनन्दि ने अवन्ती देश की धारा-नगरी के जिनमन्दिर में राजा भोज के शासनकाल में वि. सं. 1100 में की थी।

सुदंसणचरिउ—यह अपभ्रंश भाषा का एक चरितात्मक खण्डकाव्य है। इसमें सुदर्शन केवली के चरित्र का अंकन किया गया है। सुदर्शन का चरित जैन साहित्य का बहुश्रुत तथा लोकप्रिय कथानक रहा है।

सयलविहिविहाणकव्व—कवि की दूसरी कृति सयलविहिविहाणकव्व एक विशिष्ट काव्य है। इस काव्य में वस्तु-विधान और उसकी सालंकार एवं सरल प्रस्तुति की गई है। इसका प्रकाशन अभी संभव नहीं हो सका।

कविश्री नयनन्दि की भाषा शुद्ध साहित्यिक अपभ्रंश है। इनकी भाषा में सुभाषित और मुहावरों के प्रयोग से प्रांजलता मुखर है तो स्वाभाविकता व लालित्य का समावेश भी है। कवि की रचना 'सुदंसणचरिउ' का छन्दों की विविधता एवं विचित्रता की दृष्टि से विशिष्ट महत्व है। इस रचना में कई छन्द नये हैं। इसमें लगभग 85 छन्दों का प्रयोग हुआ है, इतने छन्दों का प्रयोग अपभ्रंश के अन्य किसी कवि ने नहीं किया।

विशेष अध्ययन के लिए सहायक ग्रन्थ—

1. **सुदंसणचरिउ**—मुनि नयनन्दि, सम्पादक–अनुवादक–डॉ. हीरालाल जैन, प्रकाशक प्राकृत, जैन-शास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान वैशाली, बिहार।

2. **जैनविद्या–7**—नयनन्दि विशेषांक, अक्टूबर 1987, प्रकाशक जैनविद्या संस्थान श्रीमहावीरजी, दिगम्बर जैन नसियां भट्टारकजी, सवाई रामसिंह रोड, जयपुर–4।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि कनकामर

अपभ्रंश वाङ्मय के प्रतिनिधि कवियों की शृंखला में एक नाम मुनि कनकामर का भी आता है।

कनकामर का जन्म ब्राह्मणवंश के चन्द्रऋषि गोत्रीय परिवार में हुआ था। जैनधर्म से प्रभावित होकर इन्होंने जैनधर्म स्वीकार किया और बाद में दिगम्बर मुनि-दीक्षा धारण की। इनका बाल्यावस्था का नाम अज्ञात है। मुनि दीक्षा के बाद ये 'मुनि कनकामर' के नाम से जाने गये, इसी नाम से ये ज्ञात और विख्यात हैं।

इनका स्थितिकाल ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। कनकामर ने अपभ्रंश भाषा में एक खण्डकाव्य 'करकण्डचरिउ' की रचना की। ग्रन्थ की रचना 'आसाइय' नगरी में की गई। पं मंगलदेव इनके गुरु थे।

मुनि कनकामर अपभ्रंश के अतिरिक्त कई भाषाओं के विद्वान थे।

करकण्डचरिउ—यह कवि की एकमात्र रचना है। कथा का प्रमुख पात्र 'करकण्डु' है, समूचे काव्य में इसी के चरित्र का विशद वर्णन है।

'करकण्डु' की कथा जैन-साहित्य में तो प्रसिद्ध है ही, बौद्ध-साहित्य में भी इसका पर्याप्त वर्णन है। दोनों ही परम्पराओं/धर्मों/साहित्यों में 'करकण्डु' को 'प्रत्येकबुद्ध'[1] माना गया है।

'करकण्डचरिउ' 10 सन्धियों का काव्य है। इसमें श्रुतपंचमी के फल तथा पंच-कल्याणक विधि का वर्णन है। 'करकण्डचरिउ' का अपभ्रंश-काव्य परम्परा में एक विशिष्ट स्थान है। यह रचना इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि अन्य विशेषताओं के साथ इसमें दसवीं शताब्दी के जैनधर्म और संस्कृति के स्वरूप का तथा मन्दिरों के शिल्प का अंकन है।

'करकण्डचरिउ' अपभ्रंश साहित्य की वीर-शृंगार और शान्त रसयुक्त एक अनूठी रचना है।

---

1. जो केवलज्ञान प्राप्तकर बिना धर्मोपदेश दिये ही मोक्ष चले जाते हैं उन्हें प्रत्येकबुद्ध कहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेष अध्ययन के लिए सहायक ग्रन्थ—

1. **करकण्डचरिउ**—मुनि कनकामर, सम्पा.–अनु.–डॉ. हीरालाल जैन, प्रकाशक–भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन ।

2. **जैनविद्या–8**—कनकामर विशेषांक, मार्च 1988, प्रकाशक–जैनविद्या संस्थान श्रीमहावीरजी, दिगम्बर जैन नसियां भट्टारकजी, सवाई रामसिंह रोड, जयपुर–4 ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महाकवि जोइन्दु

जोइन्दु (योगीन्दु) अपभ्रंश भाषा के एक सशक्त आध्यात्मिक कवि हैं। अपभ्रंश वाङ्मय के रहस्यवाद-निरूपण में कवि जोइन्दु का नाम सर्वोपरि है। इन्होंने अपभ्रंश साहित्य में अध्यात्म-क्षेत्र को नया आयाम दिया है।

जोइन्दु जैनधर्म के दिगम्बर आम्नाय के आचार्य थे और उच्चकोटि के आत्मिक रहस्यवादी साधक थे।

अध्यात्मवेत्ता जोइन्दु के जीवन के सन्दर्भ में कोई वर्णन नहीं मिलता। जोइन्दु के काल-निर्धारण के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतभेद है। कोई उन्हें 7वीं शताब्दी का, कोई 8वीं का और कोई 10वीं या 11वीं शती का मानते हैं। परन्तु अधिकांश इतिहासकारों का मत है कि जोइन्दु विक्रम सम्वत् 700 के आस-पास हुए हैं।

जोइन्दु के नाम पर निम्नलिखित रचनाओं का उल्लेख मिलता है—

1. परमात्मप्रकाश
2. योगसार
3. नौकारश्रावकाचार
4. अध्यात्मसन्दोह
5. सुभाषितम्
6. तत्वार्थ टीका
7. दोहापाहुड
8. अमृताशीति
9. निजात्माष्टक

परन्तु इनमें से प्रारम्भ की दो ही रचनाएं निर्भ्रान्तिरूप से जोइन्दु की मानी जाती हैं।

परमात्मप्रकाश—यह जैनदर्शन पर आधारित अध्यात्म का एक अनूठा ग्रन्थ है। जोइन्दु ने इस मुक्तक काव्य की रचना अपने शिष्य भट्ट प्रभाकर के कुछ प्रश्नों का उत्तर देने के लिए की। और आत्मा को परमात्मा बनने का मार्ग प्रकाशित किया। इस ग्रन्थ में आत्मा का बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा इन त्रिविधरूप वर्णन किया गया है।

परमात्मप्रकाश अपभ्रंश के मुक्तक काव्यों में शिखरस्थ है।

योगसार—जोइन्दु की दूसरी रचना है। यह भी पूर्णत: आध्यात्मिक है। यह ग्रन्थ 'परमात्म-प्रकाश' के विचारों का अनुवर्तन है। योगसार में अध्यात्म की गूढ़ता को बड़ी सरलता से व्यंजित किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस ग्रन्थ की रचना संसार से भयभीत मुमुक्षुओं को संबोधने के लिए की गई है। 'योगसार' का योग मुक्ति का उपाय है। यह स्व को स्व के द्वारा स्व से जोड़ने की प्रक्रिया का वर्णन करता है।

दोनों रचनाएं अपभ्रंश के विशिष्ट छन्द 'दोहा' में रचित हैं। जोइन्दु के अधिकांश वर्णन साम्प्रदायिकता से अलिप्त हैं इसलिए उनकी पदावली व काव्यशैली सहज-सामान्य है, प्रिय है, लोक-प्रचलित है। उन्होंने अपने दोहों में लोकोक्तियों और मुहावरों का भी प्रयोग किया है इससे आध्यात्मिक तत्व भी सर्वजन बोध्य हो गये हैं। उनकी रहस्यमयी रचनाओं का प्रभाव परवर्ती अपभ्रंश कवियों पर ही नहीं अपितु हिन्दी के सन्तकवियों पर भी प्रचुरता से पड़ा है।

विशेष अध्ययन के लिए सहायक ग्रन्थ—

1. **परमात्मप्रकाश और योगसार**—श्रीमद् योगीन्दु, प्रकाशक–श्री परमश्रुत प्रभावक मण्डल, श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास (गुजरात)।

2. **परमात्मप्रकाश और योगसार चयनिका**—सम्पादक– डॉ. कमलचन्द सोगाणी, प्रकाशक–प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर–3।

3. **जैनविद्या-9**—योगीन्दु विशेषांक, नवम्बर 1988, प्रकाशक-जैनविद्या संस्थान, श्रीमहावीरजी, जयपुर–4।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि रामसिंह

रामसिंह जैन मुनि थे और जैन आध्यात्मिक रहस्यवादी धारा के प्रमुख कवि ।

इनके सम्बन्ध में अधिक जानकारी नहीं मिलती । अनुमानतः ये पश्चिम प्रदेश के निवासी थे । पण्डित राहुल सांकृत्यायन इन्हें राजस्थान का बताते हैं । क्योंकि इनके उदाहरण एवं उपमाएं राजस्थानी रंग में रंगे हुए हैं। इनके दोहों में प्रयुक्त शब्द योग एवं तांत्रिक ग्रन्थों का स्मरण दिलाते हैं जिनके पीठ राजस्थान में सबसे अधिक हैं । इससे भी यह अनुमान दृढ़ होता है कि ये राजस्थान के थे ।

डॉ. हीरालाल जैन इनका समय 10वीं शताब्दी मानते हैं ।

पाहुडदोहा— पाहुडदोहा मुनि रामसिंह की एकमात्र कृति है । पाहुड का अर्थ उपहार, अधिकार, श्रुतदान आदि होते हैं । यहां यह 'उपहार' के विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त है । पाहुडदोहा जैन मुनियों की आत्मानुभूति, परमात्म-संदेश का सरल भाषा तथा दोहा छन्द में मानव जीवन के लिए 'उपहार' स्वरूप है । 'पाहुडदोहा' आत्मानुभूतियों का संग्रह है, उसी का उपहार है, भेंट है ।

इस ग्रन्थ में गुरु की महत्ता स्वीकार्य है किन्तु अधिक महत्व आत्मानुभूति को ही दिया गया है, उसके सामने केवल शब्दज्ञान को व्यर्थ बताया गया है ।

मुनि रामसिंह उदारमना चिन्तक हैं जो सम्प्रदाय और समाज की रूढ़ियों का विरोध करते हुए मानवता की सामान्य भूमि पर खड़े हैं। ये साम्प्रदायिकता व संकीर्णताओं के विरोधी हैं । इन्होंने उस जनसाधारण के लिए ज्ञान के सहज द्वार खोले हैं जिसे पढ़ने-लिखने की सुविधा प्राप्त नहीं हो सकती थी ।

मुनिश्री की भाषा सरल, सहज और पैनी है । तथ्य और उसकी अभिव्यक्ति दोनों ही असरदार है । ऐसी संक्षिप्त एवं भावपूर्ण, सटीक अभिव्यक्ति पूरे अपभ्रंश साहित्य में कम ही देखने को मिलती है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेष अध्ययन के लिए सहायक ग्रन्थ—

1. **पाहुडदोहा**—मुनि रामसिंह, सम्पा.-हीरालाल जैन, प्रकाशक-कारंजा जैन पब्लिकेशन सोसायटी, कारंजा (बरार)।

2. **पाहुडदोहा चयनिका**—सम्पा.-डॉ. कमलचन्द सोगाणी, प्रकाशक-अपभ्रंश साहित्य अकादमी, जयपुर-4।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य हेमचन्द्र सूरि

हेमचन्द्र सूरि साहित्यजगत् के एक यशस्वी विद्वान थे, अगाध पाण्डित्य के धनी थे और अपभ्रंश, प्राकृत, संस्कृत आदि भाषाओं के प्रकाण्ड विद्वान, इसीलिए इन्हें 'कलिकाल सर्वज्ञ' कहा जाता है।

हेमचन्द्र सूरि का जन्म गुजरात के धक्कलपुर/धन्धूका ग्राम में मोढ़ वैश्य जैन परिवार में ई. सन् 1088 में हुआ था। इनके पिता का नाम चाचिग तथा माता का नाम पाहिणी था। इनके बचपन का नाम चंगदेव था। ई. सन् 1109 में अन्हिलवाड जैन मठ की गुरु-गद्दी पर आसीन होने के बाद ये 'आचार्य-सूरि' पद से विभूषित हुए और 'आचार्य हेमचन्द्र सूरि' कहलाने लगे। यही मठ इनके साहित्य-सृजन का प्रधान केन्द्र था।

हेमचन्द्र सूरि को कई राजाओं का आश्रय प्राप्त था किन्तु प्रधान संरक्षण चालुक्यराज जयसिंह सिद्धराज व कुमारपाल का रहा। कुमारपाल ने तो हेमचन्द्र के प्रभाव से जैनधर्म स्वीकार लिया था।

आचार्य हेमचन्द्र की अनेक रचनाएं हैं जिनमें अभिधानचिन्तामणि, योगशास्त्र, छन्दोऽनुशासन, देशीनाममाला, द्वयाश्रय काव्य, त्रिषष्ठिशलाका पुरुष और शब्दानुशासन प्रमुख हैं। शब्दानुशासन ग्रन्थ सिद्धराज जयसिंह को समर्पित किया था इसलिए यह ग्रन्थ 'सिद्धहेम शब्दानुशासन' के नाम से जाना जाता है।

आचार्य हेमचन्द्र अपने युग के प्रधान पुरुष थे जिनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा ने अपभ्रंश साहित्य को स्थायित्व प्रदान किया। इन्होंने 'शब्दानुशासन' व 'छन्दोऽनुशासन' में अनेक अपभ्रंश दोहे उद्धृत किये हैं जो संयोग, वियोग, वीर, उत्साह, हास्य, नीति, अन्योक्ति आदि से सम्बद्ध हैं। इन दोहों का साहित्यिक सौन्दर्य सम्पूर्ण अपभ्रंश साहित्य में सबसे अलग है।

व्याकरण के क्षेत्र में भी इनकी मौलिकता के दर्शन होते हैं। इन्होंने अन्य वैयाकरणों की भांति पाणिनी व्याकरण के लोकोपयोगी अंशों की व्याख्या/टीका करके ही संतोष नहीं किया बल्कि अपने समय तक की भाषाओं के व्याकरण बनाये और देशी भाषा और शब्दों को आगे बढ़ाया।

अपनी तलस्पर्शी प्रतिभा और अपभ्रंश के संचयन-संरक्षण के लिए हेमचन्द्र साहित्य-जगत् में सदैव अविस्मरणीय हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य देवसेन

दिगम्बर जैन ग्रन्थकारों में आचार्य देवसेन एक सुप्रसिद्ध नाम है । आचार्यश्री ने अपभ्रंश, प्राकृत, संस्कृत तीनों भाषाओं में ग्रन्थ-रचना की है । इनके प्रकाशित ग्रन्थों में दर्शन-सार, आराधनासार, तत्वसार, नयचक्र, भावसंग्रह प्राकृत भाषा की और आलापपद्धति संस्कृत भाषा की प्रमुख रचनाएं हैं ।

इनके ग्रन्थों के विषय, भाव व भाषा आदि के साम्य के आधार पर विद्वानों का मत है कि अपभ्रंश भाषा के मुक्तक काव्य 'सावयधम्म दोहा' के रचयिता 'आचार्य देवसेन' ही हैं । इनके 'भावसंग्रह' में भी पाँच पद्य अपभ्रंश भाषा के रड्डा छन्द में पाये जाते हैं, शेष भाग में भी अपभ्रंश भाषा का प्रभाव अधिक दिखता है ।

आचार्य देवसेन का समय 10वीं शताब्दी माना गया है ।

सावयधम्मदोहा—इस ग्रन्थ की रचना विक्रम की 10वीं शताब्दी में मानी जाती है । यह ग्रन्थ दोहा छन्द का एक प्राचीनतम उदाहरण है । इसका विषय श्रावकों का धर्म व आचार है ।

'सावयधम्मदोहा' धार्मिक उपदेश तथा सूक्ति की दृष्टि से तो सुन्दर है ही साथ ही भाषा की दृष्टि से भी यह महत्वपूर्ण है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महाकवि रइधू

महाकवि रइधू अपभ्रंश-साहित्य-जगत के सुप्रसिद्ध कवि हैं। अपभ्रंश-जगत में सर्वाधिक साहित्य-सृजन का श्रेय महाकवि रइधू को ही है।

रइधू के पिता का नाम साहू हरिसिंह तथा माता का नाम विजयश्री था। कवि के जन्मस्थान के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी उपलब्ध नहीं है किन्तु उनकी रचनाओं में वर्णित अनेक प्रसंगों के आधार से यह अनुमान दृढ़ होता है कि उनका निवास हरियाणा, पंजाब, राजस्थान के सीमान्त से लेकर ग्वालियर तक के बीच किसी स्थान पर रहा होगा।

कवि ने गोपाचल (ग्वालियर) नगर का विभिन्न दृष्टिकोणों से जिस प्रकार का वर्णन किया है उससे प्रतीत होता है कि उनकी जन्मभूमि/निवासभूमि तो गोपाचल या उसके सन्निकट रही ही होगी पर कार्यभूमि तो गोपाचल ही थी।

रइधू ने पृथक्-पृथक् आश्रयदाताओं के आश्रय में अपना साहित्य-सृजन किया।

अनेक अन्तर्बाह्य साक्ष्यों के आधार पर रइधू का स्थितिकाल विक्रम सम्वत् 1439-1530 (ईस्वी सन् 1382-1473) माना जाता है।

इन्होंने कुल कितने ग्रन्थों की रचना की यह तो स्पष्ट ज्ञात नहीं है किन्तु 28 ग्रन्थों की जानकारी तो उपलब्ध होती है—

1. बलहद्दचरिउ	2. मेहेसरचरिउ	3. कोमुइकहपवंधु
4. जसहरचरिउ	5. पुण्णासवकहा	6. अप्पसंबोहकव्व
7. सावयचरिउ	8. सुकोसलचरिउ	9. पासणाहचरिउ
10. सम्मइजिणचरिउ	11. सिद्धचक्कमाहप्प	12. वित्तसार
13. सिद्धन्तत्थसार	14. धण्णकुमारचरिउ	15. अरिट्ठणेमिचरिउ
16. जीमंधरचरिउ	17. सोलहकारणजयमाल	18. दहलक्खणजयमाल
19. सम्मत्तगुणणिहाणकव्व	20. संतिणाहचरिउ	21. बारहभावना
22. उवएसमाल/उवएसरयणमाल	23. महापुराण	24. पज्जुण्णचरिउ
25. करकंडचरिउ	26. सुदंसणचरिउ	27. रत्नत्रयी
28. भविसयत्तकहा		

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनमें से अन्तिम सात रचनाएं अभी उपलब्ध नहीं हुई हैं।

रइधू की विशिष्टता है कि गृहस्थ होते हुए उन्होंने विपुल साहित्य की रचना की। ग्रन्थ-रचना एवं मूर्तिप्रतिष्ठा-कार्य उनकी अभिरुचि के प्रमुख विषय थे। इन्हें उक्त विशाल साहित्य का निर्माण करने की प्रतिभा अपने पिता से उत्तराधिकार में मिली थी।

धण्णकुमारचरिउ—प्रस्तुत ग्रन्थ एक पौराणिक चरितकाव्य है। इसमें एक **श्रेष्ठि-पुत्र** धन्यकुमार का जीवनचरित निबद्ध है।

धन्यकुमार अपने पूर्वभव में अकृतपुण्य नाम का एक पितृविहीन दरिद्र बालक था। एक बार उसने अपनी माँ के साथ एक मुनिराज को आहारदान किया। उसी के फलस्वरूप वह देवगति में जन्मा और बाद में धन्यकुमार के रूप में उत्पन्न हुआ। इस भव में सर्वगुण-सर्व-साधन सम्पन्न होते हुए भी उसे पूर्वकृत कर्मों के कारण अनेक विपत्तियों/आपदाओं का सामना करना पड़ता है पर वह तब भी धैर्य और साहस नहीं छोड़ता। अपने साले शालिभद्र के वैराग्य से प्रेरणा लेकर धन्यकुमार को भी वैराग्य हो जाता है जिससे वह भी दीक्षा लेकर तप करता है और सद्गति प्राप्त करता है।

विशेष अध्ययन के लिए सहायक ग्रन्थ—

1- **रइधू ग्रन्थावली–भाग–1, 2** सम्पादक–डॉ. राजाराम जैन, प्रकाशक–जीवराज जैन ग्रन्थमाला, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर, महाराष्ट्र।

2 **रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन**—डॉ राजाराम जैन, प्रकाशक–प्राकृत, जैनशास्त्र अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली, बिहार।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट-2

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ-1

पउमचरिउ

सन्धि-22

प्रस्तुत कडवक महाकवि स्वयंभू विरचित पउमचरिउ से लिया गया है। यह उस समय का वर्णन है जब राजा दशरथ अपने चारों पुत्रों का विवाह सम्पन्न कराकर अयोध्या लौट आते हैं।

22.1 अयोध्या आने के पश्चात् दशरथ-पुत्र राम अषाढ़की अष्टमी के दिन पत्नी (सीता) के साथ जिनेन्द्र का अभिषेक करवाते हैं। स्वयं दशरथ भी अभिषेक करते हैं। जिनेन्द्र के अभिषेक का गन्धोदक सभी को दिया जाता है। (दशरथ की रानी) सुप्रभा के पास गंधोदक देर से पहुँचता है जिससे सुप्रभा नाराज होती है। इसका कारण जानने के लिए राजा दशरथ कंचुकी को वहाँ बुलाते हैं।

22.2.3 कंचुकी अपनी वृद्धावस्था को देरी से आने का कारण बताते हुए नश्वर शरीर का वर्णन करता है। कंचुकी के द्वारा नश्वर शरीर का सजीव वर्णन सुनकर राजा दशरथ को विरक्ति हो जाती है और वे सम्पूर्ण वैभव (राज्य) राघव को देकर तप करने का दृढ़ निश्चय करते हैं। अपने विचार के अनुसार दशरथ राम के राज्याभिषेक एवं स्वयं के संन्यास-ग्रहण की घोषणा करते हैं।

22.7.8 राम के राज्याभिषेक की घोषणा से रानी कैकेयी विचलित हो उठती है, वह अपने पुत्र भरत को राजा बनाना चाहती है। इसके लिए वह दशरथ द्वारा पूर्व में स्वीकृत दो वचनों की याद दिलाकर राजा दशरथ द्वारा दूसरी घोषणा करवाती है। रानी कैकेयी के वचन मानकर राजा दशरथ भरत के लिए राज्य, राम के लिए वनवास और स्वयं के लिए प्रव्रज्या की घोषणा करते हैं।

23 3 इसके बाद राम स्वयं अपने हाथों से भरत के सिर पर राजपट्ट बांधते हैं और भाई लक्ष्मण के साथ वनवास को जाने के लिए माता से आज्ञा लेने जाते हैं। राम की माता अपराजिता राम से उनके उद्विग्न चित्त व सादगी से, बिना वैभव से आने का कारण पूछती है। राम माता से वनवास को जाने की आज्ञा माँगते हुए पूर्व में अपनी ओर से किये गये अपराधों की क्षमा माँगते हैं।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

पाठ-2

पउमचरिउ

सन्धि-24

पउमचरिउ की चौबीसवीं सन्धि में वर्णित इस काव्यांश में उस समय का वर्णन है जबकि राम-लक्ष्मण और सीता वनवास को चले जाते हैं और उनके बिना सम्पूर्ण महल सुनसान नजर आता है।

24.1 नगर के सभी नागरिक व्याकुल हैं। उस समय पृथ्वी भी निःश्वास लेती हुई प्रतीत होती है। नगर के लोग लक्ष्मण को एक क्षण भी विस्मृत नहीं कर पाते। अपनी प्रत्येक क्रिया में, साधन-प्रसाधन में उन्हें लक्ष्मण का स्मरण होता है।

24.3 राजा दशरथ भरत का राजतिलक करने लगते हैं परन्तु भरत उन्हें ऐसा करने से रोकता है। वह राज्य की असारता को लक्ष्य करते हुए अपनी संन्यास-ग्रहण की इच्छा व्यक्त करता है।

24.4 राजा दशरथ भरत को ऐसा करने से मना करते हैं और कहते हैं कि तुम्हें अभी प्रव्रज्या से क्या ? अभी तुम बालक हो, इसलिए यह नहीं समझते कि जिन-प्रव्रज्या कितनी असहनीय होती है। अतः तुम राज करते हुए विषय-सुखों का उपभोग करो। वे भरत को तपस्या में होने वाले दुःख व कठिनाइयाँ बताते हैं।

24.5 दशरथ के द्वारा बालक के लिए संन्यास की अनुपयुक्तता की बात सुनकर राजा भरत दुःखी होता है और पिता से पूछता है—क्या बालक का जन्म नहीं होता, मृत्यु नहीं होती ? अगर ऐसा नहीं होता तो बालक प्रव्रज्या के लिए क्यों नहीं जा सकता ? किन्तु दशरथ ने उन्हें समझाकर, डराकर पहले राज्य-सुख का उपभोग करने तथा बाद में प्रव्रज्या को जाने के लिए कहकर पट्ट बांधा और स्वयं ने प्रव्रज्या के लिए प्रस्थान किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ-3

पउमचरिउ

सन्धि-27

27.14 प्रस्तुत काव्यांश पउमचरिउ से लिया गया है। इसमें राम, लक्ष्मण और सीता के वनवास के समय की एक घटना का वर्णन है। वनवास में वे वनों, पर्वतों आदि में भटकते रहते हैं। इस काव्यांश में बताया है कि तीनों विन्ध्याचल पर्वत, ताप्ती नदी पार कर आगे बढ़ जाते हैं। मार्ग में सीता को प्यास सताने लगी। पानी की खोज करते हुए, सीता को सान्त्वना देते हुए तीनों अरुण गांव में आए। वहाँ उन्हें एक घर दिखाई दिया, वह घर बिल्कुल खाली और सुनसान था। वे उस घर में प्रवेश करते हैं और पानी पीते हैं। वह कपिल नाम के व्यक्ति का घर था। वह अत्यन्त क्रोधी स्वभाव का था। उसी समय कपिल वहाँ आता है। राम, लक्ष्मण और सीता को अपने घर में देखकर वह क्रोध से चिल्लाता है। उसके कटु वचनों को सुनकर लक्ष्मण क्रोधित हो उठते हैं। वे उसे मारने लगते हैं, राम उन्हें ऐसा करने से रोकते हैं और आगे बढ़ जाते हैं।

27.15 चलते-चलते दिन के अन्तिम प्रहर में उस घने वन में उन्हें एक महावटवृक्ष दिखाई दिया, जिस पर विभिन्न प्रकार के पक्षी बैठे हुए कलरव कर रहे थे। वह वटवृक्ष ऐसा दिखा मानो स्वयं उपाध्याय आसन पर स्थित हों। राम और लक्ष्मण ने उस वृक्ष को प्रणाम कर अभिनन्दन किया।

सन्धि-28

जैसे ही सीतासहित राम व लक्ष्मण उस वृक्ष के नीचे बैठते हैं वैसे ही आकाश में बादल छा जाते हैं। आकाश में छाए हुए बादल किस प्रकार लग रहे हैं, इसी का आलंकारिक वर्णन इस काव्यांश में है।

28.1,2,3 आकाश में बादल छा जाना, बिजलियां कड़कना, उन सभी को चीरते हुए वर्षा का आना, प्रस्तुत कडवकों में कवि ने इन सब का, युद्ध में सेना के बाणों के प्रहार के समान कल्पना कर, वर्णन किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ-4

पउमचरिउ

76.3 जब राम, लक्ष्मण और सीता पिता की आज्ञा का पालन करते हुए चौदह वर्ष के वनवास में जाते हैं तब वहां रावण कपट वेश धारण कर सीता का हरण करता है। सीता को पुन: प्राप्त करने हेतु राम लंकापति रावण से युद्ध करते हैं। रावण के इस कार्य से दु:खी होकर विभीषण राम की शरण में आ जाता है। अन्त में राम की जीत होती है और रावण युद्ध में मारा जाता है।

रावण को मरा हुआ देखकर विभीषण मूर्च्छित हो जाता है। होश आने पर वह स्वयं मृत्यु की इच्छा करने लगता है। प्रस्तुत पद्यांश में उसके करुण विलाप का वर्णन किया गया है।

76.7 प्रस्तुत कडवक में रावण की मृत्यु के पश्चात् दु:खी रानियों का वर्णन किया गया है कि उन सबको किस तरह अपना अस्तित्व समाप्त होता दिखाई देता है। रावण की मृत्यु के बाद ही वे सब भी मृतप्राय: हो गई हैं। उनके भावों का आलंकारिक वर्णन कवि ने यहाँ किया है। उनको दु:ख की जो अनुभूति हो रही है, प्रिय के बिछोह की जो वेदना हो रही है कवि ने उसी का विभिन्न उपमाओं के द्वारा वर्णन किया है।

77.1 राम के द्वारा रावण के मारे जाने से पूरा अन्त:पुर दु:खी है। कुम्भकरण व इन्द्रजीत को भी रावण के मारे जाने की सूचना मिलती है तो वे अत्यन्त करुण विलाप करते हुए बेहोश हो जाते हैं। होश आने पर रावण की वीरता का बखान कर विलाप करने लगते हैं और यह कहते हैं कि रावण की अनुपस्थिति में सब सुख नीरस हैं। भाई के वियोग में विभीषण विलाप करता है तो वानर-समूह भी रोता है। मरा हुआ रावण वानर-समूह को कैसा लगता है/दिखाई देता है, कवि ने इसी का ही विभिन्न उपमाओं से विभूषित वर्णन किया है। धरती पर पड़े हुए रावण को राम–लक्ष्मण भी अत्यधिक दु:खी हो अश्रुपूरित नेत्रों से देखते हैं।

77.2 विभीषण को समझाते हुए राम कहते हैं कि हे विभीषण! तुम रावण के लिए क्यों रोते हो? रोया तो ऐसे पापी को जाता है जिसके बोझ से धरती दु:खी है, जिसके जीने से धरती व्याकुल है, अर्थात् जो घोर पापी है, उसे रोया जाता है। तुम रावण को क्यों रोते हो?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

77.4 राम द्वारा समझाने पर विभीषण जवाब देते हैं—हे राघव ! मैं इतना इसलिए रोया हूँ कि रावण ने अपना अपयश अधिक फैलाया है, उसने अपने इस अमूल्य जीवन को तिनके के समान बना दिया। उसका जीवन व्यर्थ ही गया, यही सोचकर मैं रोता हूँ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ-5

पउमचरिउ

83.2 प्रस्तुत काव्यांश पउमचरिउ की तियासीवीं सन्धि से लिये गये हैं। इसमें उस समय का वर्णन है जब राम लोकापवाद के कारण सीता को राज्य से निर्वासित करते हैं और राजा वज्रजंघ उसे बहन बनाकर पुण्डरीक नगर ले जाता है, वहीं उसके दो पुत्रों लवण व अंकुश का जन्म होता है। दोनों भाई मामा (राजा वज्रजंघ, जिन्होंने उनका पालन-पोषण किया है) के समान ही अजेय व वीर होते हैं। वे सम्पूर्ण पृथ्वी पर अपनी वीरता की पताका फहराते हैं। नारद के मुख से राम, लक्ष्मण की वीरता का बखान एवं राम के द्वारा अपनी माता को कलंकित कहकर निकाल देने की बात को सुनकर दोनों भाई मामा के साथ अयोध्या पर चढ़ाई करते हैं। लवण-अंकुश बड़ी वीरता से युद्ध करते हैं। तभी नारद राम से उन दोनों का परिचय करवाते है और कहते हैं—ये ही तुम्हारे पुत्र लवण-अंकुश हैं। यह सुनकर राम उन्हें गले लगाते हैं और जयघोष के साथ नगर में ले जाते हैं।

लवण-अंकुश नगर में प्रवेश करते हैं उस समय भामण्डल, नल-नील, अंग-अंगद, लंकाधिप, किष्किन्धराजा, जनक, कनक और हनुमान भी वहां उपस्थित थे। पूरी सभा में राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, लवण-अंकुश ऐसे लग रहे थे मानो पांचों मन्दराचल एक साथ आ मिले हों। सभी ने राम का अभिनन्दन किया और कहा कि हे राम! तुम धन्य हो जिसके ऐसे पुत्र हैं, पर पूरी सभा में सीता की कमी खटक रही है। आप (उसकी) सीता की कोई परीक्षा करके उन्हें वापस ले आयें। लोकापवाद में विश्वास करना ठीक नहीं।

83 3 यह सुनकर राम ने कहा कि मैं सीता देवी के सतीत्व को जानता हूँ, उसके व्रत व गुणों को जानता हूँ, मैं सीता के बारे में सभी कुछ जानता हूँ पर यह नहीं जानता कि उस पर प्रजाजन ने कलंक क्यों लगाया?

83.4 सर्वगुण-सम्पन्न राज-स्वामिनी पर लगे कलंक को निराधार बताने के लिए उसी समय प्रजाजन के सामने सभा में ही विभीषण ने त्रिजटा को और हनुमान ने लंकासुन्दरी को बुलवाया। दोनों ने सभा में आकर गर्वीले शब्दों में सीता के सतीत्व का वर्णन करते हुए कहा कि असम्भव कार्य भी सम्भव हो जाये पर सीता का सतीत्व नहीं डिग सकता। फिर भी अगर आपको विश्वास नहीं होता तो तिल, चावल, विष, जल और आग इन पाँचों में से किसी भी एक पदार्थ से उसकी परीक्षा ले लीजिए।

83.5 त्रिजटा व लंकासुन्दरी से परीक्षा करवाने की बात सुनकर राम सन्तुष्ट हो गये—हाँ, यह सही है। उन्होंने इस कार्य को कार्यान्वित करने का आदेश दिया। विभीषण, अंगद,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुग्रीव और हनुमान पुष्पक विमान में सीता को लेने के लिए रवाना हुए। वे पुण्डरीक नगर में पहुँचे। सब वहाँ सीता देवी को सकुशल देखकर बहुत प्रसन्न हुए। वे सीता की जय-जयकार करते हुए लवण व अंकुश की वीरता का बखान करने लगे और कहने लगे—अब तुम्हारे बुरे दिन समाप्त हुए, अब अयोध्या चलिए। पति व देवर तथा पुत्रों से मिलकर आनन्दपूर्वक निवास कीजिए।

83.6 अयोध्या वापस जाने की बात सुनकर सीता विह्वल हो जाती है और भर्रायी आवाज में कहती है—मेरे सामने कठोर हृदय राम का नाम मत लो। मुझ निर्दोष को राम ने ऐसे भयंकर जंगल में छुड़वा दिया जहाँ यम और विधाता भी अपने प्राण छोड़ देता है। अब विमान भेजने से कोई मतलब नहीं। दुष्ट (चुगलखोर) लोगों के कहने से (राम ने) मुझे जो दुःख दिया है, वह कभी नहीं मिट सकता।

83.8,9 इस प्रकार पहले तो सीता अयोध्या जाने से मना करती है परन्तु फिर सभी का विशेष अनुरोध देखकर सीता कोशलनगर आ जाती है। सारा नगर जब सीता को देखकर सन्तोष की सांस ले रहा था, जयघोष कर रहा था, उस समय सीता ने राम को जो कुछ कहा वही सब प्रस्तुत पद में वर्णित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ-6

महापुराण

16.3 प्रस्तुत काव्यांश महाकवि पुष्पदन्त रचित महापुराण का अंश है। यह प्रसंग ऋषभदेव के पुत्र भरत--बाहुबलि आख्यान का है।

ऋषभदेव के सौ पुत्रों में भरत सबसे बड़े थे और बाहुबलि उनसे छोटे। ऋषभदेव ने अपना राज्य सब पुत्रों में बांट दिया और स्वयं ने संन्यास ले लिया। सब पुत्र अपने-अपने राज्य से सन्तुष्ट थे। किन्तु भरत अपने साम्राज्य का विस्तार करना चाहते थे। वे दिग्विजय हेतु सैन्यबल-सहित निकल पड़े। अनेक राजाओं को जीतकर वे अपने नगर अयोध्या लौटते हैं, किन्तु उनका विजय चक्र नगर में प्रवेश नहीं करता। वह चक्र नगर में तभी प्रवेश कर सकता था जब सारे राजा उनकी आधीनता स्वीकार कर लेते।

बाहुबलिसहित उनके निन्यानवे भाई भरत की आधीनता स्वीकार नहीं करते। कुछ भाई तो आधीनता स्वीकार करने के बजाय राजपाट त्याग कर जिन-दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं परन्तु बाहुबलि न आधीनता स्वीकार करते हैं न संन्यास ग्रहण करते हैं। वे भरत से राज्य हेतु युद्ध करने को कहते हैं। यहाँ नगर में प्रवेश से पूर्व ठहरे हुए चक्र का आलंकारिक वर्णन है।

16.4 चक्र नगर में प्रवेश नहीं करता इससे भरत को आश्चर्य होता है। वे मन्त्री से चक्र के नगर में प्रवेश न होने का कारण पूछते हैं।

प्रस्तुत कडवक में चक्र के नगर में प्रवेश न करने के कारणों पर भरत व पुरोहित के वार्तालाप का वर्णन है।

16.7 चक्र के ठहर जाने का कारण सुन (समझ) लेने के पश्चात् भरत अपने दूत के साथ अन्य भाइयों के पास आधीनता स्वीकार करने हेतु सन्देश भिजवाते हैं। प्रस्तुत पद्य में दूत का सन्देश व कुमारगणों द्वारा भरत की आधीनता अस्वीकार करने का वर्णन है। कुमारगण अनेक तर्क देते हुए भरत नरेश की आधीनता स्वीकार करने को मना करते हैं और अन्त में यही कहते हैं कि हम उसी राजा को प्रणाम करते हैं जिसने चार गतियों के दुःखों का निवारण किया हो।

16.8 उपर्युक्त प्रसंग में ही अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए कुमारगण कहते हैं कि धरती के लिए प्रणाम करना उचित नहीं। वे सभी अभिमानहीन जीवन को निरर्थक बताते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। सभी कुमारगण कहते हैं कि अधीन (सेवक) रहनेवाला व्यक्ति कितना ही गुणी क्यों न हो सब बेकार है।

16.9 सभी कुमारगण मनुष्य-जन्म को दुर्लभ बताते हैं और इस अमूल्य जीवन को दासता में रहकर नष्ट नहीं करना चाहते। उनका मानना है कि भोगों में लिप्त रहकर अपने समस्त जीवन को नष्ट करनेवाले मनुष्य के समान हीन कोई नहीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ–7

महापुराण

पाठ छः की कथा के अनुक्रम में ही इस कडवक में वर्णन है कि मनुष्य-जीवन का महत्व बताकर सभी भाई मुनि-वेश धारणकर कैलाश पर्वत पर तप के लिए प्रस्थान करते हैं। एक बाहुबलि रह जाते हैं जो न तप करते हैं और न ही आधीनता स्वीकार करते हैं ।

16.19 इस कडवक में उस समय का वर्णन है जब दूत आकर राजा भरत को बताता है कि आपके शेष सब भाई तो तप के लिए कैलाश पर्वत पर चले गये किन्तु एक बाहुबलि ही ऐसे हैं जो न तप साधते हैं और न ही आधीनता । दूत के मुख से ऐसे वचन सुनकर भरत पुनः (बाहुबलि के पास) दूत भेजता है । दूत बाहुबलि की प्रशंसा कर भरत की आधीनता स्वीकार करने को कहता है पर बाहुबलि मना कर देते हैं और युद्ध के लिए कहते हैं ।

16.20 बाहुबलि के मुख से युद्ध की बात व भरत के लिए अपमानित (कटु) शब्द सुनकर दूत भरत की वीरता का बखान करता है और कहता है कि अधिक कहने से क्या लाभ ? अब भरत आपको रणभूमि में ही मिलेंगे और विजय प्राप्त करेंगे ।

16.21 दूत के मुख से भरत के गुणों को सुनकर बाहुबलि जो जवाब देते हैं, प्रस्तुत कडवक में उसी का वर्णन है ।

16.22 बाहुबलि से मिलकर दूत अपने नगर अयोध्या आकर भरत को बताते हैं—हे राजन्! बाहुबलि आपकी आज्ञा नहीं मानता । वह बड़ा विषम है और पृथ्वी देने के बजाय युद्ध करना ही श्रेष्ठ समझता है । इसलिए वह अवश्य ही युद्ध करेगा ।

———

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

पाठ–8

महापुराण

17.7,8 पाठ सात की कथा के सन्दर्भ में ही भरत व बाहुबलि की सेनाएं युद्ध-मैदान में एक-दूसरे के विरुद्ध तैयार हैं। युद्ध-दुन्दुभी बजने के बाद जैसे ही आक्रमण प्रारम्भ होने वाला होता है, दोनों पक्षों के मन्त्रीगण बीच में आते हैं और दोनों सेनाओं को युद्धविराम के लिए शपथ दिलाते हैं। उनकी शपथ को सुनकर दोनों सेनाएं चित्रलिखित सी खड़ी हो जाती हैं।

17.9 मन्त्रीगण दोनों ही नरेशों को प्रणाम करते हैं, उन्हें उनके गुणों के बारे में बताते हुए दोनों की तुलना करते हैं और कहते हैं कि आप दोनों ही अत्यन्त वीर हैं, अपनी विजय के लिए आप दोनों ही धर्म और न्याय से युक्त परस्पर तीन प्रकार का युद्ध कर अपनी वीरता व विजय का निर्णय करें तो उचित होगा, अन्यथा विजयश्री व वीरता का निर्णय होना कठिन है। व्यर्थ ही सैनिकों का रक्त बहाना उचित नहीं।

17.10 उन्होंने सबसे पहले दृष्टि-युद्ध का सुझाव दिया, जिसमें कोई भी अपनी पलक न हिलाए। दूसरा जलयुद्ध, जिसमें दोनों एक दूसरे पर पानी उछालें। तीसरा मल्लयुद्ध, जिसमें दोनों तब तक मल्लयुद्ध करें जब तक एक दूसरे के द्वारा उठा नहीं लिए जाते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ–9

जम्बूसामिचरिउ

9.8 प्रस्तुत काव्यांश महाकवि वीर द्वारा विरचित जम्बूसामिचरिउ की नवीं सन्धि के आठवें कडवक से उद्‌धृत है। जंबूकुमार राजगृही के श्रेष्ठी अरहदास के पुत्र हैं। वे केरल के राजा को युद्ध में परास्त कर अपने राज्य को लौट रहे होते हैं कि किसी प्रसंग से उनके मन में वैराग्य उत्पन्न होता है और वे माता–पिता से दीक्षा की आज्ञा लेने जाते हैं।

माता–पिता पुत्र को अनेक प्रकार से समझाते हैं कि पहले वे उन चारों कन्याओं से विवाह करें जिनके साथ उनका विवाह-सम्बन्ध निश्चित किया जा चुका है, और सांसारिक सुखों का उपभोग करें। परन्तु जंबू अपने निश्चय पर दृढ़ रहते हैं। यह स्थिति देखकर कन्याओं के पिता को सन्देश भिजवाया जाता है कि कन्याओं के लिए कोई अन्य वर की तलाश करें। यह बात चारों ही कन्याएं स्वीकार नहीं करती। उन सभी को इस बात का पक्का विश्वास था कि अपने अपूर्व सौन्दर्य से जम्बूकुमार को वश में कर लेंगी। इसलिए वे मात्र एक रात के लिए विवाह करने का प्रस्ताव रखती हैं। कुमार एक रात के लिए विवाह करने को तैयार हो जाता है पर एक शर्त के साथ कि—इस रात में यदि मैं भोगानुरक्त हो जाऊँ तो ठीक अन्यथा दूसरे दिन प्रातः मैं दीक्षा धारण कर लूंगा।

विवाह के पश्चात् जम्बूकुमार की चारों पत्नियां उनको आकर्षित करने के लिए संसार–आसक्ति की अनेक कथाओं, अन्तर्कथाओं का सहारा लेकर समझाने का प्रयत्न करती हैं जिनके जवाब में स्वयं जम्बूकुमार भी कथाओं के माध्यम से संसार की असारता, जीवन की नश्वरता का वर्णन करते हुए अपने व्रत पर ही दृढ़ रहते हैं।

विनयश्री कुमार को कथानक कहती है कि किस प्रकार एक गरीब संखिणी नामक कबाड़ी स्व-अधीन (जो स्वयं के पास है) लक्ष्मी का उपभोग नहीं करता और श्रेष्ठ स्वर्गसुख की आकांक्षा में ही अपना मूल भी गवाँ देता है यही हाल इनका (जम्बूकुमार) का होगा।

9.11 दूसरी वधू रूपश्री जम्बूकुमार से कहती है—अत्यधिक अनुपलब्ध सुखों की इच्छा करनेवाले के उपलब्ध सुखों का भी नाश हो जाता है। वह ठगा जाता है।

प्रत्युत्तर में कुमार कथा कहता है कि जो मूर्ख विषयसुखों में अन्धा होकर रहता है वह अवश्य ही विनाश को प्राप्त होता है। जिस प्रकार मांस खाने के लालच में गीदड़ को रात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बीत जाने का पता ही नहीं चला और सुबह कुत्तों ने उसे खा लिया । इस कडवक में वही कथा वर्णित है ।

10.11 नववधुओं की संसार-आसक्ति की कथाएं एवं उनके उत्तर में कुमार द्वारा संसार की नश्वरता, शरीर की असारता की कथाओं को विद्युच्चर नामक चोर सुनता रहता है । जम्बूकुमार की माता उसे देख लेती है । उससे यह पूछे जाने पर कि वह कौन है तथा यहाँ क्या करने आया था ? वह अपना परिचय बताता है और माता को आश्वस्त करता है कि अगर किसी प्रकार मैं अन्दर चला जाऊँ तो कुमार को विषय-सुखों की ओर जरूर अग्रसर कर दूंगा । यदि मैं असफल रहा तो प्रातः मैं स्वयं भी तपश्चरण/संन्यास ग्रहण कर लूंगा । माता उस चोर को कुमार के कक्ष में ले जाती है और कुमार से यह कहकर परिचय कराती है कि यह तुम्हारे मामा हैं ।

फिर मामा (विद्युच्चर) व भान्जे (जम्बू) का कथाओं के माध्यम से वार्तालाप होता है । विद्युच्चर के मुख से यह सुनकर कि तुम्हारे लिए राज्य-सुख ही श्रेष्ठ है, देव सुख के लिए मन में दमन श्रेष्ठ नहीं, स्वाधीन सुखों को छोड़नेवाले को कोई सुख नहीं मिलता ।

जम्बूकुमार मनुष्य-जीवन का महत्व आदि के बारे में एक कथा का दृष्टान्त देते हैं । प्रस्तुत कडवक में उसी का वर्णन है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ–10

सुदंसणचरिउ

2.10,11 प्रस्तुत काव्यांश मुनि नयनन्दिकृत 'सुदंसणचरिउ' से लिया गया है।

चम्पानगरी में ऋषभदास नाम के एक सेठ थे। उनके सुभग नाम का एक ग्वाला था। उस सुभग ग्वाले को एक बार वन में मुनिराज के दर्शन होते हैं। मुनिराज के द्वारा वह णमोकार मन्त्र का उपदेश प्राप्त करता है। वह निरन्तर उसका जाप करता है। सेठ ऋषभदास उसको मन्त्र का प्रभाव समझाते हैं और साथ में सप्त व्यसनों के दुष्परिणाम के बारे में भी बताते हैं।

ये सप्तव्यसन क्या है? इनके परिणाम कैसे होते हैं? यही प्रस्तुत काव्यांश में वर्णित है। सेठ ऋषभदेव गोप को समझाते हुए कहते हैं कि ये सप्त-व्यसन करोड़ों जन्मों तक भारी दुःखों को देनेवाले हैं। अतः हे पुत्र! तू मन को संयम में रख और इन व्यसनों से दूर रह।

8.7 प्रस्तुत कडवक सुदंसणचरिउ की आठवीं सन्धि से लिया गया है। महामुनि के उपदेशों के प्रभाव से ऋषभदास सेठ को संसार से विरक्ति होती है और वे अपने पुत्र को गृहस्थी का भार सौंप कर तपस्या के लिए चले जाते हैं। उनका पुत्र सुदर्शन व पुत्रवधू मनोरमा प्रसन्नतापूर्वक रहते हैं। वसन्तोत्सव में रानी अभया सुदर्शन को देखकर उस पर मुग्ध हो जाती है और सुदर्शन को अपने वश में करने की दृढ़ प्रतिज्ञा करती है। वह कहती है—या तो वह सुदर्शन को वश में करेगी अन्यथा मर जायेगी।

पंडिता (रानी की दासी) रानी को समझाती हुई कहती है कि आवेग में आकर शील का नाश नहीं करना चाहिए। प्रस्तुत काव्य में शील की प्रशंसाकर उसके कारण अमर हुई अनेक सतियों के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं और रानी को बार-बार समझाया है कि हर तरह से शील की रक्षा करनी ही चाहिए। शील ही सच्चा आभूषण है, शीलवान की सभी सराहना करते हैं।

8.9 पंडिता के बार-बार समझाने पर भी रानी अभया अपना हठ नहीं छोड़ती है और सुदर्शन की रट लगाये रहती है तो पंडिता सोचती है और कहती है—जो कुछ, जिस प्रकार, जिसके द्वारा जहाँ होने वाला है, वह उसी देहधारी के द्वारा, वहाँ पर घटित होकर ही रहेगा। होनहार अति बलवान होता है, वह टलता नहीं। इस कडवक में इसी तथ्य को अनेक उदाहरणों से स्पष्ट किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

8.32 इस काव्यांश में सम्यक् चारित्र की दुर्लभता का वर्णन किया गया है। कवि कहते हैं कि सम्यक् चारित्र के आगे सभी दुर्लभ वस्तुएं भी सुलभ समझो, यहाँ कवि ने सुदर्शन द्वारा स्वगत भाषण (अपने से बातचीत) का सुन्दर वर्णन किया है। सुदर्शन यही सोच रहा है कि जिनशासन के अनुसार अति पवित्र वस्तु जिसे मैं पहले कभी नहीं पा सका, उस सम्यक् चारित्र को कैसे नष्ट कर दूं ? यह तो पाताल के शेषनाग, कश्मीर के केसरपिण्ड, मानसरोवर में कमलखण्ड, खान में से हीरे की प्राप्ति से भी दुर्लभ है। अर्थात् ये सभी तो सम्भव हैं पर सम्यक् चारित्र अति दुर्लभ है और अगर वह मेरे पास है तो मैं किस प्रकार उसे नष्ट होने दूं ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ–11

सुदंसणचरिउ

3.1 प्रस्तुत काव्यांश मुनि नयनन्दी रचित सुदंसणचरिउ की तीसरी सन्धि से लिया गया है। इस काव्य में उस समय का वर्णन है जबकि सेठ ऋषभदास का ग्वाला (सुभग) णमोकार मन्त्र का प्रभाव जान निरन्तर उसी का स्मरण करता रहता है। एक बार गंगानदी में जलक्रीड़ा करता हुआ ठूँठ से आहत होकर णमोकार मन्त्र का स्मरण करता हुआ मृत्यु को प्राप्त होता है।

इधर सेठानी अर्हद्दासी एक रात में पाँच स्वप्न देखती है, उन्हीं का वर्णन प्रस्तुत काव्य में वर्णित है।

3.2 प्रातःकाल सेठानी अपने पति ऋषभदास (सेठ)के साथ जिन-मन्दिर में स्वप्न-फल पूछने जाती है। वहाँ मुनिराज उसे स्वप्न-फल को समझाते हुए कहते हैं कि तुम्हारे द्वारा स्वप्न में देखे गये दृश्यों से यह ज्ञात होता है कि तुम्हारे धैर्यवान, त्यागी व लक्ष्मीवान, गुणों का समूह, पापरूपी मल को नष्ट करनेवाला पुत्र होगा।

3.5 प्रस्तुत काव्यांश में सेठ ऋषभदास के घर पुत्र–जन्म होने के पश्चात् का वर्णन है कि किस प्रकार सुदर्शन के जन्मोत्सव को सेठ के साथ-साथ स्वयं प्रकृति भी हर्षोल्लास के साथ मनाती है। कवि कहता है—पुत्र के उत्पन्न होने से सम्पूर्ण परिवेश ही आनन्दित हो रहा था। उसी बीच छठे दिन माता पुत्र को लेकर उसके नामकरण के लिए जिन-मन्दिर गई।

3.6 सेठानी के मुख से यह सुनकर कि बन्धुजनों ने इसका नाम कुम्भ राशि में रखने को कहा है, महामुनि ने कहा कि पुत्री तेरे द्वारा स्वप्न में सुन्दर और उच्च सुदर्शन मेरु को देखा गया था इसलिए इसका नाम सुदर्शन ही रखना उचित है। प्रस्तुत काव्यांश में बढ़ते हुए बालक का आलंकारिक वर्णन दोधक छन्द में निबद्ध किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ-12

करकंडचरिउ

2.16,17,18 प्रस्तुत काव्यांश मुनि कनकामर रचित करकंडचरिउ से लिये गये हैं। अंगदेश का राजा धाडीवाहन रानी पद्मावती के साथ हाथी पर बैठकर सैर करने जाते हैं। दैवयोग से हाथी जंगल की ओर भागता है, राजा तो एक पेड़ को पकड़कर बच जाते हैं पर हाथी रानी को लेकर आगे निकल जाता है। हाथी एक जलाशय में प्रवेश करता है और रानी कूदकर वन में प्रवेश करती है। उसके प्रभाव से वन हरा-भरा हो जाता है। वनमाली उसे अपने घर बहन बनाकर ले जाता है। परन्तु उसकी पत्नी दोनों पर सन्देह करती है और रानी को श्मशान में छुड़वा देती है। श्मशान में रानी एक पुत्र को जन्म देती है। उस पुत्र को रानी के लाख मना करने पर भी एक मातंग (चाण्डाल) यह कहकर ले जाता है कि मैं एक विद्याधर हूँ और श्राप के कारण मातंग हो गया हूँ। श्राप देते समय मुनि ने यह भी कहा था कि जब दंतिपुर के श्मशान में करकंडु का जन्म हो तो उसका लालन-पालन करना, वह जब पुनः राज्य प्राप्त करेगा तो तुम विद्याधर हो जाओगे। इस तरह रानी को समझाकर यथोचित लालन-पालन की प्रतिज्ञा कर वह उस बालक को ले जाता है। वह उसे नाना प्रकार की विद्याएं सिखाता है तथा सत्संगति की शिक्षा देता है।

प्रस्तुत काव्यांश में विद्याधर उसे उच्च पुरुषों की संगति का फल एक कहानी के माध्यम से समझा रहा है। विद्याधर बताता है कि एक वणिक एक उच्च पुरुष की संगति कर किस तरह भूमण्डल का उपभोग कर सकता है, उसकी कीर्ति किस प्रकार फैलती है।

———

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठ-13

धण्णकुमारचरिउ

3.16 प्रस्तुत काव्यांश महाकवि रइधू द्वारा लिखित धण्णकुमारचरिउ की तीसरी सन्धि से लिया गया है। भोगावती अपने पुत्र अकृतपुण्य के साथ अपने भाई के यहाँ रहती है। अकृतपुण्य वहाँ गाय-बछड़े चराता है।

एक दिन अकृतपुण्य गाय–बछड़े चराते हुए घने जंगल में चला जाता है, थकान होने के कारण अपना वस्त्र बिछाकर पेड़ के नीचे सो जाता है। उसी समय तेज आँधी चलती है, बिजली चमकती है, जिससे घबराकर गाय–बछड़े अपने घर आ जाते हैं। उन गाय–बछड़ों को जंगल में न पाकर अकृतपुण्य भय के कारण जंगल में ही रह जाता है।

पुत्र को घर न आया जानकर माता भोगावती अत्यधिक दुःखी होती है और सभी को साथ लेकर पुत्र को ढूंढने जंगल की ओर जाती है। अकृतपुण्य मामा के साथ ग्रामवासियों को शस्त्र लिए हुए आते देखता है तो सोचता है कि गाय–बछड़ों के खो जाने के कारण ये सब मुझे मारने आए हैं, इसलिए वह और आगे भाग जाता है।

भय से भागते हुए अकृतपुण्य एक गुफा में पहुँच जाता है। वहाँ मुनि वीरसेन शास्त्र पढ़ रहे थे। अकृतपुण्य शुभगति और सुखों को देनेवाले उन वचनों को सुनता है, उन पर चिन्तन करता है कि उसी समय एक सिंह के आक्रमण से मारा जाता है। शुभ भावों से मरकर वह प्रथम स्वर्ग को प्राप्त करता है।

3 19 स्वर्ग के सुखों को देखकर वह विचार करने लगता है कि मेरा कौनसा पुण्य है जिससे मुझे यह सब प्राप्त हुआ। अकृतपुण्य स्वर्ग में अपने दुःखों को याद करता है उसी समय उधर उसकी माता व मामा उस गुफा के द्वार पर आते हैं और भयंकर दुःख देनेवाला दृश्य (अकृतपुण्य का क्षत–विक्षत शरीर) देखते हैं।

3.20 पुत्र के दसों दिशाओं में बिखरे अंगों को देखकर माता मूर्च्छित हो जाती है, नाना प्रकार से रुदन करती है और स्वयं भी मरने को तैयार हो जाती है। स्वर्ग से माता का विलाप एवं दुःख देखकर व गुफा में स्थित मुनिराज के चरणों में प्रणाम करने की भावना लेकर अकृतपुण्य माया से अपनी पुरानी देह का रूप धारण कर माता के सामने आकर उसको प्रणाम करता है।

3.21 अकृतपुण्य रोती हुई माता को अनेक प्रकार से समझाता है। संसार की असारता, जीवन की क्षणभंगुरता को समझाते हुए जिन-आगम का स्मरण करने को कहता है जिसके कारण स्वयं अकृतपुण्य ने प्रथम स्वर्ग में देवों द्वारा पूज्य 'सुर' का स्थान प्राप्त किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुद्धि पत्र

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	कडवक संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
7	5	22.8.6	(वह उस ओर)	कैकेयी(उस ओर)
10	1	24.3.7	दीसवन्तु	दोसवन्तु
31	17	83.5.9	स्थित है	स्थित रहती है
32	4	83.8.7	ण भीय	सीय ण भीय
35	9	16.4.1	[1–2]	[1]
35	11	16.4.2,3	[3–4]	[2–3]
35	13	16.4.4,5,6	[5–6–7]	[4–5–6]
35	19	16.4.7	[8]	[7]
35	21	16.4.8	[9]	[8]
35	23	16.4.9	[10]	[9]
35	27	16.7.1	[1–2]	[1]
37	1	16.7.2	[3]	[2]
37	3	16.7.3	[4]	[3]
37	4	16.7.4	[5]	[4]
37	6	16.7.5	[6]	[5]
37	7	16.7.6	[7]	[6]
37	9	16.7.7	[8]	[7]
37	10	16 7.8	[9]	[8]
37	12	16 7.9	[10]	[9]
37	14	16.7.10	[11]	[10]
37	20	16.8.1	[1–2]	[1]
37	22	16.8.2	[3]	[2]
37	24	16.8.3	[4]	[3]
37	26	16.8.4	[5]	[4]
37	28	16.8.5	[6]	[5]
37	29	16.8.6	[7]	[6]
39	1	16.8.7	[8]	[7]
39	3	16.8.8	[9]	[8]
39	5	16.8.9	[10]	[9]
39	6	16.8.10	[11]	[10]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	कडवक संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
57	11	2.10.7	[8]	[7]
58	12	2.11	5	13
60	17	8.32.3	करसीरएँ	कस्सीरएँ
64	5	3.1.9	रण	गउ
67	25	3.5.10	स्थित	स्थिर

नोट—पृष्ठ संख्या 37 पर कडवक संख्या 16.7.7 (शुद्ध की हुई) के हिन्दी अनुवाद को इस प्रकार पढ़ें—जो न जीर्ण होता है (न) क्षीण होता है तो (हम) (उसको) प्रणाम करते हैं। यदि (कोई अपनी) पीठ भंग नहीं करता तो (हम उसको) प्रणाम करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहायक पुस्तकें एवं कोश

1.	पउमचरिउ (भाग 1-5)	महाकवि स्वयंभू सम्पा.—डॉ. हरिवल्लभ भायाणी अनु.—डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन (भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली)
2.	महापुराण	महाकवि पुष्पदन्त सम्पा.—डॉ. पी.एल. वैद्य (भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली)
3.	जंबूसामिचरिउ	महाकवि वीर सम्पा.—डॉ. विमलप्रकाश जैन (भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली)
4.	सुदंसणचरिउ	मुनि नयनन्दि सम्पा—डॉ. हीरालाल जैन (प्राकृत, जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली, बिहार)
5.	करकंडचरिउ	मुनि कनकामर सम्पा.—डॉ. हीरालाल जैन (भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली)
6.	धण्णकुमारचरिउ (रइधू ग्रन्थावली, भाग-1)	महाकवि रइधू सम्पा.—डॉ. राजाराम जैन (जीवराज जैन ग्रन्थमाला, जैन संस्कृति संरक्षण संघ, शोलपुर-महाराष्ट्र)
7.	परमात्मप्रकाश	योगीन्दु (परमश्रुत प्रभावक मण्डल, अगास-गुजरात)
8.	पाहुडदोहा	मुनि रामसिंह सम्पा.—डॉ. हीरालाल जैन (अंबादास चवरे दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला कारंजा(बरार))

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

9. सावयधम्मदोहा — आचार्य देवसेन
सम्पा.—डॉ. हीरालाल जैन
(कारंजा जैन पब्लिकेशन सोसायटी, कारंजा, बरार)

10. हेमचन्द्र प्राकृत व्याकरण (भाग 1–2) — व्याख्याता श्री प्यारचन्दजी महाराज
(श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय, मेवाड़ी बाजार, ब्यावर)

11. प्राकृत भाषाओं का व्याकरण — डॉ. आर. पिशल
(बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना)

12. अभिनव प्राकृत व्याकरण — डॉ. नेमिचन्द शास्त्री
(तारा पब्लिकेशन, वाराणसी)

13. अपभ्रंश भाषा का अध्ययन — श्री वीरेन्द्र श्रीवास्तव
(एस. चाँद एण्ड कं. प्रा. लि., नई दिल्ली)

14. पाइय सद्द महण्णवो — पं. हरगोविन्ददास त्रिकमचन्द सेठ
(प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, वाराणसी)

15. अपभ्रंश-हिन्दी कोश (भाग 1–2) — डॉ. नरेशकुमार
(इण्डो–विजन प्रा. लि. 11A, 220, नेहरु नगर, गाजियाबाद)

16. वृहत् हिन्दी कोश — सम्पा—कालिकाप्रसाद आदि
(ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस)

17. संस्कृत-हिन्दी कोश — वामन शिवराम आप्टे
(मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली)

18. अपभ्रंश रचना सौरभ — डॉ. कमलचन्द सोगाणी
(अपभ्रंश साहित्य अकादमी, जयपुर)

19. Apabhramsa of Hemchandra : Dr. Kantilal Baldevram Vyas
(Prakrit Text Society, Ahmedabad)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org